



## Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC  
(CGPA 2.93)

Joshi, Beenaben J., 2010, *डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता*,  
thesis PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/164>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study,  
without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first  
obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any  
format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title,  
awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service  
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>  
repository@sauuni.ernet.in

# डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता



सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की  
उपाधि के लिए प्रस्तुत  
शोध-प्रबंध



➤ प्रस्तुतकर्ता ◀  
**प्रा. बीनाबहन जे. जोशी**  
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग  
श्री महिला आर्ट्स कॉलेज  
उना



➤ निर्देशक ◀  
**डॉ. बी. के. कलासवा**  
अध्यक्ष, हिन्दी भवन  
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय  
राजकोट

वर्ष : २०१०

## प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रा. बीनाबहन जे. जोशी ने सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट की पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए मेरे निरीक्षण और निर्देशन में “डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता” शीर्षक शोध-प्रबंध तैयार किया है। इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन-अनुशीलन एवं शोधपरक विश्लेषण – विवेचन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है। साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है।

राजकोट  
दिनांक :

निर्देशक

डॉ. बी. के. कलासवा

अध्यक्ष,  
हिन्दी भवन,  
सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,  
राजकोट

## विषय सूची

### प्राक्कथन

- ❖ विषय चयन की प्रक्रिया
- ❖ विषय का महत्त्व एवं विशेषता
- ❖ पूर्ववर्ती शोध कार्य
- ❖ प्रस्तुत शोध विषय की रूपरेखा

### प्रथम अध्याय :

डॉ. मनमोहन सहगल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- ❖ प्रस्तावना
- ❖ जन्म तथा शिक्षा
- ❖ प्रारम्भिक जीवन
- ❖ विवाह एवं पारिवारिक जीवन
- ❖ बहुआयामी व्यक्तित्व
- ❖ सशक्त रचनाकार
- ❖ मान-सम्मान
- ❖ सलाहकार के रूप में
- ❖ प्रेरक के रूप में
- ❖ निष्ठावान अध्यापक के रूप में
- ❖ निर्देशक के रूप में
- ❖ दार्शनिक चिन्तक के रूप में
- ❖ समीक्षक तथा आलोचक के रूप में
- ❖ संघर्षशील व्यक्तित्व

- ❖ आदर्शवादी व्यक्तित्व
- ❖ मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व
- ❖ सम्प्रदाय निरपेक्ष व्यक्तित्व
- ❖ पर्यवेक्षण शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व
- ❖ शोधपरक व्यक्तित्व
- ❖ कृतित्व परिचय
- ❖ 'काला सच' उपन्यास
- ❖ सहगल के उपन्यास 'काला सच' की सामान्य विशेषताएँ
  - ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन
  - तदयुगीन नारी की स्थिति का चित्रांकन
  - धार्मिक, परिवेश का चित्रांकन
  - सामाजिक कुरीतियों का चित्रण
  - हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति का चित्रण
  - राजनीतिक परिवेश का चित्रण
  - अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का वर्णन
  - नारी विमर्श का चित्रांकन
- ❖ 'काला सच' में कथ्य के विविध आयाम
  - 'काला सच' उपन्यास कथानक की दृष्टि से
  - ऐतिहासिक सत्य पर आधारित कथानक
  - मनोरंजन के साधनों का वर्णन
  - नारी के शोषण पर आधारित कथानक
  - पति पर एकाधिकार की अदम्य लालसा का चित्रण
  - नारी के दो रूपों का वर्णन
  - हिन्दुओं की आपसी शत्रुता का वर्णन
  - राजाओं की पारस्परिक फूट का वर्णन

- जाति-पाति एवं ऊँच-नीच का वर्णन
- भ्रष्ट राजनीति का चित्रण
- मानसिक कायरता वश प्रभु शरण का चित्रण
- भारतीय और मुस्लिम संस्कृति का चित्रण
- धर्म-परिवर्तन का प्रश्न
- राजसता की महत्वाकांक्षा का चित्रण
- जनता के विद्रोह का वर्णन
- नारी विमर्श पर आधारित कथानक
- ❖ 'काला सच' शिल्प विधान
- कथानक शिल्प
- चरित्र-चित्रण शिल्प
- देशकाल शिल्प
- कथोपकथन शिल्प
- भाषा शैली
- उद्देश्य शिल्प

## द्वितीय अध्याय

### समसामयिकता : स्वरूप एवं आयाम

- ❖ विषय प्रतिपादन
- ❖ समसामयिकता : व्युत्पत्ति, संज्ञा एवं अर्थविचार
- (१) 'समय' शब्द और अर्थ
- (२) 'सामयिक' एवं 'सामयिकता' शब्द और अर्थ  
विभिन्न हिन्दी कोशों के अनुसार  
हिन्दी-अंग्रेजी तथा अंग्रेजी-हिन्दी कोशों के अनुसार
- (३) निकटवर्ती संज्ञाएँ

- (४) समसामयिकता
- (५) समसामयिकता से तात्पर्य
- (६) समसामयिकता के समीपवर्ती सन्दर्भ
- समसामयिकता और आधुनिकता
  - समसामयिकता और युगबोध
  - समसमयिकता और समकालीनता
  - समसामयिकता और तात्कालिकता
  - समसामयिकता और नवीनता
  - समसामयिकता के विविध आयाम
    - (१) सामाजिक आयाम
    - (२) आर्थिक आयाम
    - (३) राजनीतिक आयाम
    - (४) सांस्कृतिक आयाम
- (७) समसामयिकता
- परिवर्तन के कारण

### तृतीय अध्याय

डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में सामाजिक परिवेश

- ❖ स्वातंत्र्योत्तर युगीन भारतीय समाज
- ❖ मध्यमवर्गीय जीवन और मानसिकता
- ❖ उच्चवर्गीय जीवन की मानसिकता
- ❖ निम्नवर्गीय जीवन की मानसिकता
- ❖ उपन्यासकार मनमोहन की सामाजिक संलग्नता

## चतुर्थ अध्याय

डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में आर्थिक परिवेश

- ❖ अर्थ की प्रधानता
- ❖ अर्थ, अभाव और अस्मिता
- ❖ पूँजीवादी वर्ग और श्रमिक वर्ग
- ❖ श्रेष्ठ सर्जक
- ❖ सामाजिक पक्ष
- ❖ सामाजिक सम्बन्ध
- ❖ सामाजिक समस्याएँ
- ❖ मध्यवर्गीय जीवन
- ❖ जातिवाद
- ❖ आर्थिक पक्ष
- आर्थिक असमानता
- आर्थिक अभाव
- आर्थिक शोषण
- राजनीतिक पक्ष
- पुलिस शासन-बर्बरता का नग्न नृत्य
- युद्धों की विभीषिका
- घर से बेघर होने की यंत्रणा
- साम्प्रदायिकता बनाम राजनीति-धार्मिक संकीर्णता
- सांस्कृतिक / धार्मिक पक्ष
- धार्मिक परिवेश
- धर्माडम्बरों तथा बाह्याचरणों का विरोध
- साम्प्रदायिक एकता
- धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता



- परम्परागत रूढ़ियों का विरोध  
आधुनिक संवेदना  
गांधीवादी उदार दृष्टिकोण  
डॉ. सहगल का दृष्टिकोण  
उपन्यासों के मूलकथ्य एवं लेखकीय अनुभूति
- निष्कर्ष

### पंचम अध्याय

डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश

- ❖ आजादी की लड़ाई और समूचा राष्ट्र
- ❖ अंग्रेजों की कुटिलनीति
- ❖ स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति
- ❖ नेहरू की गृहनीति
- ❖ पाकिस्तानी आक्रमण और भारत की राजनीति

### षष्ठ अध्याय

डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवेश

- ❖ संस्कृति से तात्पर्य
- ❖ सभ्यता की निकटवर्ती
- ❖ भारतीय वैदिक साहित्य में धर्म की व्याख्या
- ❖ धार्मिक मान्यताएँ
- ❖ नैतिकता का सामाजिक आदर्श

## सप्तम अध्याय

डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता एवं निष्कर्ष

- ❖ डॉ. सहगल वर्तमान युग के प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार
- ❖ डॉ. सहगल के उपन्यासों में मानवीय मूल्यों की विविधता
- ❖ डॉ. सहगल के उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द

## उपसंहार

## परिशिष्ट

- ❖ मूल ग्रन्थ / सहायक ग्रन्थ
- ❖ सहायक शोध-ग्रन्थ
- ❖ पत्र-पत्रिकाएँ / कोश / साक्षात्कार

## प्राक्कथन

हिन्दी उपन्यास ने अपनी लम्बी यात्रा तय करते हुए जीवन के प्रत्येक पहलू से अपने-आप को जोड़ा है इसीलिए आज वह मानव के जीवन को, उसकी विभिन्न समस्याओं को, उसके सामाजिक सरोकारों को और सृष्टि में उसके एक मात्र बौद्धिक प्राणी होने के प्रमाण को एक साथ प्रस्तुत कर सका है। यही कारण है कि उपन्यास साहित्य की समस्त विधाओं को पीछे छोड़ता हुआ, जीवन का महाकाव्य बन गया है।

उपन्यास का महाकाव्यात्मक रूप तब और अधिक उभर कर सामने आता है, जब वह व्यक्ति और समाज के न केवल बाह्यरूप को प्रस्तुत करता है अपितु मानव-मन की परतों के नीचे उतरते हुए मन के एक-एक भाव को टटोलते हुए, विभिन्न कोणों से उसकी तस्वीर प्रस्तुत करता चलता है।

उपन्यास ने अपने कथ्य को भी नई से नई अभिव्यक्ति देने की कोशिश की है। अपने ही देश की मिट्टी और अपने ही वतन के लोगों के सुख-दुःख को एक नयी अभिव्यक्ति प्रदान की है।

शिल्प और भाषा की दृष्टि से कहीं फंतासी, कहीं नया सौन्दर्य बोध, आधुनिक बोध, नये बिम्ब और प्रतीक विधानों ने उपन्यास को एक सशक्त और विकसित शाश्वत दृष्टि प्रदान की है।

उपन्यास की समीक्षा में केवल चुनिन्दा कृतियों का मूल्यांकन कर निष्कर्ष स्थापित किए गये हैं। आवश्यकता आज इस बात की है कि प्रत्येक विधा के सुनिश्चित मूल्यांकन के लिए हमें गहराई में जाकर विश्लेषण करना चाहिए। निश्चय ही इस प्रकार के मूल्यांकन में न जाने कितने ऐसे रचनाकार प्रकाश में आयेंगे जिनकी ओर अभी तक हिन्दी संसार समुचित

रूप से ध्यान नहीं दे सका है । विपुल परिमाण में ऐसे ही सार्थक रचना करने वाले कृती उपन्यास कार डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यास साहित्य का सम्यक मूल्यांकन करने की दिशा में प्रस्तुत शोध ग्रंथ हिन्दी जगत के सम्मुख एक विनम्र प्रयास के रूप में उपस्थित है ।

### ❖ विषय-चयन की प्रक्रिया :

डॉ. मनमोहन सहगल ने अबतक नौ उपन्यासों की रचना की है और सन् १९६५ से लेकर आजतक निरन्तर रचनारत रहे हैं । किसी भी रचनाकार के लिए पच्चीस वर्षों की कला यात्रा एक लम्बी यात्रा होती है और उस यात्रा की सार्थकता इस बात में है कि लेखक हर बार अपने को अपने पिछले वजूद को छोड़ता हुआ आगे बढे । अपनी बनायी हुयी लीक को छोड़ता चले । कहीं भी अपने को 'रिपीट' न करे समय संदर्भों से पूरी तरह जुड़ा हुआ जीवन के यथार्थ का अपनी दृष्टि से विश्लेषण करें । डॉ. मनमोहन सहगल ने रचनाकार के रूप में अपने आपको इस कसौटी पर पूरी तरह कसा है ।

मेरी उपन्यास के अध्ययन एवं अध्यापन में विशेष रुचि रही है । मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि जब भी शोध करूँगी तो उपन्यास साहित्य पर ही । उपन्यास पर शोध के विषय के लिए परम आदरणीय डॉ. उदयनारायण मिश्राजी से परामर्श किया तो उन्होंने हमारे उत्साह में वर्धन ही नहीं किया बल्कि प्रोत्साहित भी किया । उन्होंने मार्गदर्शक के रूप में हिन्दी भवन, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के सह अध्यापक डॉ. बी. के. कलासवा का नाम सूचित किया । डॉ. कलासवा साहब की मुलाकात के दौरान विषय-चयन के संदर्भ में मेरी अभिरुचि को जानना चाहा जैसा कि मैं कृत संकल्प थी कि मुझे उपन्यास साहित्य पर ही काम करना है । मैंने डॉ. कलासवा साहब से आग्रह किया कि कोई नया विषय

सूचित करें जिस पर अभी तक काम न हुआ हो । उन्होंने एक नये विषय से अवगत कराया ।

### ❖ विषय का महत्त्व एवं विशेषता :

डॉ. मनमोहन सहगल कि जिन्हे पंजाब का प्रेमचन्द कहा जाता है । विषय तय हुआ “डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता” ।

डॉ. सहगल के समग्र साहित्य में ही नहीं बल्कि उपन्यास साहित्य में अनेक संभावनाएँ विद्यमान है जिन पर शोध कार्य किया जा सकता है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को अध्ययन की सुविधा के लिए सात अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

### ❖ पूर्ववर्ती शोध कार्य :

मेरे पूर्व गुजरात में हिन्दी के किसी भी अध्यापक ने डॉ. मनमोहन सहगल पर शोधकार्य नहीं किया है । मेरे लिए शोध कार्य चुनौतीपूर्ण था, दिलमें प्रसन्नता थी कि बिल्कुल नया अछूता विषय, जिस पर अब तक कोई कार्य नहीं हुआ, उसे मैंने चुना ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सुप्रसिद्ध विचारक डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता को उद्घाटित करने के लिए कल्पना को कहाँ तक आधार बनाया है, इसकी खोज हेतु लिखा गया है । डॉ. सहगल की विराट प्रतिभा से तो हिन्दी साहित्य जगत परिचित है । उनकी औपन्यासिक कृतियाँ हिन्दी साहित्य जगत की अमूल्य निधि है, जो कि अविस्मरणीय है । डॉ. सहगल के सभी उपन्यास न केवल रचना विधान की दृष्टि से विशिष्ट है, अपितु जनसाधारण सृजन सामर्थ्य के भी परिचायक है ।

## ❖ प्रस्तुत शोध विषय की रूपरेखा :

### प्रथम अध्याय

#### डॉ. मनमोहन सहगलके व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित है। इस अध्याय में डॉ. सहगल के व्यक्तित्व के साथ साथ उनके कृतित्व का समीक्षात्मक परिचय देने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं जैसे संधर्षशील व्यक्तित्व, आदर्शवादी व्यक्तित्व, मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व, संप्रदाय निरपेक्ष व्यक्तित्व, पर्यवेक्षण शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व, शोध परक व्यक्तित्व आदि घटकों की परिचयात्मक चर्चा की गई है। जीवनवृत्त के अंतर्गत उनके जन्म शैशवावस्था पारिवारिक मान्यताएँ, शिक्षा-दीक्षा, व्यवसाय सृजन शीलता तथा गृहस्थ जीवन आदि पर विचार किया गया है।

कृतित्व के सम्बन्ध में डॉ. सहगल बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। वे एक लोकप्रिय अध्यापक और शोध निर्देशक है तथा स्वयं एक कर्मठ निष्ठावान शोधार्थी हैं। उनके दस आलोचनात्मक शोध ग्रंथ हैं। वे सफल अनुवादक और संपादक भी है। उनके अनुवाद एवं संपादन की कई पुस्तकें छप चुकी हैं। इन सब के साथसाथ उनका एक उपन्यासकार का रूप भी है जो उनके सर्जक के विविध रंगों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। डॉ. मनमोहन सहगल के अब तक चौदह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। ये उपन्यास है निम्नलिखित है।

- १) जिंदगी और जिंदगी.....(१९६५)
- २) जिंदगी और आदमी....(१९६६)
- ३) बदलती करवटें.....(१९६७)
- ४) कश्मीर की कसक ....(१९७३)
- ५) गुरु लाधा रे...(१९७५)

- ६) मानव छला गया...(१९७६)
- ७) एक और रक्तबीज ...(१९८५)
- ८) अन्नापासवान ...(१९८६)
- ९) नरमेध ...(१९८६)
- १०) घटता बढ़ता चाँद ...(१९९८)
- ११) अथ कॉलेज कथा ...(२०००)
- १२) समझौते से पहले ...(२००३)
- १३) काला सच ...(२००७)
- १४) सुर मिले मेरा तुम्हारा ...(२००८)

## द्वितीय अध्याय

### समसामयिकता : स्वरूप एवं आयाम

द्वितीय अध्याय में समसामयिकता के सैद्धांतिक स्वरूप पर विवेचन करना चाहूँगी। इस में मुख्य तीन बिंदुओं पर दृष्टि केन्द्रित कर के अपने विषय को ओर अधिक प्रमाणिक बनाने का प्रयास करूँगी।

### समसामयिकता : व्युत्पत्ति संज्ञा एवं अर्थ विचार

समसामयिकता के समीपवर्ती संदर्भ और समसामयिकता के विविध आयाम के अन्तर्गत विभिन्न कोशों एवं विद्वानों के विधानों के आधार पर समसामयिकता के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। समसामयिकता के समीपवर्ती संदर्भ में समसामयिकता के साथ व्यवहृत होनेवाली और भ्रान्ति पैदा करनेवाली संज्ञाओं आधुनिकता, युग बोध, समकालीनता, तत्कालिकता तथा नवीनता के बीच की सूक्ष्म भेद रेखा को अनावरित किया गया है। समसामयिकता के विविध आयाम के अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आयाम की निहित प्रकृति विषय एवं उनके मूल कार्य का परिचय आगामी अध्यायों में प्रस्तुत किया गया है, साथ ही साथ

समसामयिकता परिवर्तन के कारण तथा समसामयिकता और उपन्यास आदि पर चर्चा की गई है ।

### तृतीय अध्याय

#### डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में सामाजिक परिवेश

तृतीय अध्याय विवेच्य उपन्यासों के सामाजिक स्वरूप के अनुशीलन से सम्बन्धित है जिसमें समसामयिक सामाजिक परिस्थिति के साथ साथ आभिजात्य वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग, माता, पुत्र, पुत्री, सम्बन्ध भाई, बहन सम्बन्ध, प्रेमी प्रेमिका सम्बन्ध, पति-पत्नी सम्बन्ध, नारी समस्या, जाति प्रथा, छुआछूत तथा अन्धविश्वास आदि पहलुओं को छुआ गया है ।

### चतुर्थ अध्याय

#### डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में आर्थिक परिवेश

चतुर्थ अध्याय में आर्थिक परिवेश के अन्तर्गत समसामयिक आर्थिक परिस्थिति के निरूपण के साथ साथ डॉ. सहगल के उपन्यासों में आर्थिक विषमता के पहलुओं पर विचार किया गया है । अर्थ की प्रधानता, अर्थ अभाव और अस्मिता बेकारी की समस्या, आर्थिकोपार्जन हेतु साधना सुचिता का त्याग तथा धर की समस्याओं को दर्शाया गया है ।

### पंचम अध्याय

#### डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश

पंचम अध्याय के अन्तर्गत समसामयिक राजनैतिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए विवेच्य उपन्यासों में अंकित राजनैतिक परिवेश का विवेचन किया गया है । राजनीतिज्ञों की सत्तालिप्सा, दमन की राजनीति, दमन तंत्र के विरुद्ध प्रजा तंत्र सत्ता संरक्षण के षडयन्त्र, आश्वासन और छल प्रपंच



शोषण मूलक व्यवस्था हताशा एवम् विवशता युद्ध और राजनीति शिक्षा और राजनीति चापलूसी न्याय प्रणालिका की स्थिति को चित्रित किया गया है ।

## षष्ठ अध्याय

### डॉ. सहगल के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवेश

‘डॉ. सहगल के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवेश’ प्रस्तुत अध्याय में डॉ. सहगल के उपन्यासों में अंकित सांस्कृतिक परिवेश विषय पर विस्तृत चर्चा की गई है । इस अध्याय में सांस्कृतिक समसामयिकता, धर्म का स्वरूप नैतिकता परिवर्तन एवं पतन नियतिवादी दृष्टिकोण, शिक्षा सम्बन्धी दृष्टिकोण, कला विषयक दृष्टिकोण, आदि पर प्रकाश डाला गया है । शिक्षा सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण शिक्षा में आये बदलाव बेकारी की समस्या एवं नवीन विषयो पर शोध परक निष्कर्ष प्रस्तुत किए गये हैं ।

## सप्तम अध्याय

### डॉ. सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता

चूंकि यह इस शोध प्रबन्ध का शीर्षक है अतः विवेच्य उपन्यासों में समसामयिकता के मूलस्त्रोत तथा स्वरूप को क्रमशः विषय के संदर्भ में संवेदना और शिल्प के संदर्भ में विश्लेषित करने का विनम्र प्रयास किया गया है । सभी उपन्यासों को समसामयिकता की कसौटी पर देखे एवं परखे जाने का विनम्र प्रयास किया गया है ।

## उपसंहार

उपसंहार के अन्तर्गत उपर्युक्त विमर्श को निष्कर्षवत प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । जो विभिन्न साक्ष्यो विवेचनों और विश्लेषणो के आधार पर प्राप्त उपलब्धिओ के सार का प्रमाण है ।

### कृतज्ञता-ज्ञापन :

कोई भी कार्य ईश्वर की इच्छा और आशीर्वाद के बिना पूरा नहीं हो पाता है । मेरे इस शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे पग-पग पर ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है । इस शोध प्रबन्ध के लिए मैं अपने निर्देशक डॉ. बी. के. कलासवाजी की आभारी रहूँगी, उनके समय-समय पर मिलने वाले सुझाव, सहयोग और विचारों के साथ-साथ प्रेरणा भी निरंतर मिलती रही, जिसने मुझे प्रबन्ध लेखन की कठिनाइयों में डगमगाने नहीं दिया । इस के लिए मैं सदैव आभारी रहूँगी । डॉ. उदयनारायण मिश्रजी की भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ एवं ऋणी हूँ । जिन्होंने समय-समय पर मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहित किया ।

मेरे इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता में अपने पीरवार और आत्मीयजनों का भी पूर्ण सहयोग रहा है । इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मेरे पति श्री विजय नविनभाई जोशी ने कदम-कदम पर साथ दिया है । परम आदरणीय मेरे सास और ससुर का आभार मानना कैसे भूल सकती हूँ कि जिनका आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहा है । मेरे दोनों बच्चों जय एवं शिवम् की भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे कार्य में कभी तंग नहीं किया, कभी कोई शिकायत नहीं की ।

अन्त में मैं उन सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिनका इस शोध प्रबन्ध में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहयोग मिला है ।

विनित

स्थान :

दिनांक :

(बीनाबहन जे. जोशी)

## अनुक्रमणिका

### पृष्ठ क्रमांक

प्रथम अध्याय व्यक्तित्व एवं कृतित्व	१-११३
द्वितीय अध्याय समसामयिकता : स्वरूप एवं आयाम	११४-१५०
तृतीय अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में सामाजिक परिवेश	१५१-२२०
चतुर्थ अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में आर्थिक परिवेश	२२१-२५४
पंचम अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश	२५५-२८०
षष्ठ अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवेश	२८१-३०६
सप्तम अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता एवं निष्कर्ष	३०७-३१७
उपसंहार	३१८-३२९
परिशिष्ट	३३०-३३९



## प्रथम अध्याय व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- ❖ प्रस्तावना
- ❖ जन्म तथा शिक्षा
- ❖ प्रारम्भिक जीवन
- ❖ विवाह एवं पारिवारिक जीवन
- ❖ बहुआयामी व्यक्तित्व
- ❖ सशक्त रचनाकार
- ❖ मान-सम्मान
- ❖ सलाहकार के रूप में
- ❖ प्रेरक के रूप में
- ❖ निष्ठावान अध्यापक के रूप में
- ❖ निर्देशक के रूप में
- ❖ दार्शनिक चिन्तक के रूप में
- ❖ समीक्षक तथा आलोचक के रूप में
- ❖ संघर्षशील व्यक्तित्व
- ❖ आदर्शवादी व्यक्तित्व
- ❖ मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व

- ❖ सम्प्रदाय निरपेक्ष व्यक्तित्व

- ❖ पर्यवेक्षण शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व
- ❖ शोधपरक व्यक्तित्व
- ❖ कृतित्व परिचय
- ❖ 'काला सच' उपन्यास
- ❖ सहगल के उपन्यास 'काला सच' की सामान्य विशेषताएँ
  - ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन
  - तदयुगीन नारी की स्थिति का चित्रांकन
  - धार्मिक, परिवेश का चित्रांकन
  - सामाजिक कुरीतियों का चित्रण
  - हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति का चित्रण
  - राजनीतिक परिवेश का चित्रण
  - अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का वर्णन
  - नारी विमर्श का चित्रांकन
- ❖ 'काला सच' में कथ्य के विविध आयाम
  - 'काला सच' उपन्यास कथानक की दृष्टि से
  - ऐतिहासिक सत्य पर आधारित कथानक
  - मनोरंजन के साधनों का वर्णन
  - नारी के शोषण पर आधारित कथानक
  - पति पर एकाधिकार की अदम्य लालसा का चित्रण
  - नारी के दो रूपों का वर्णन
  - हिन्दुओं की आपसी शत्रुता का वर्णन

- राजाओं की पारस्परिक फूट का वर्णन
- जाति-पाति एवं ऊँच-नीच का वर्णन
- भ्रष्ट राजनीति का चित्रण
- मानसिक कायरता वश प्रभु शरण का चित्रण
- भारतीय और मुस्लिम संस्कृति का चित्रण
- धर्म-परिवर्तन का प्रश्न
- राजसता की महत्त्वाकांक्षा का चित्रण
- जनता के विद्रोह का वर्णन
- नारी विमर्श पर आधारित कथानक
- ❖ 'काला सच' शिल्प विधान
  - कथानक शिल्प
  - चरित्र-चित्रण शिल्प
  - देशकाल शिल्प
  - कथोपकथन शिल्प
  - भाषा शैली
  - उद्देश्य शिल्प

## प्रथम अध्याय व्यक्तित्व एवं कृतित्व

### ❖ प्रस्तावना :

उपन्यासकार मनमोहन सहगलजी विराट व्यक्तित्व के स्वामी है । विराट व्यक्तित्व बहु आयामी होता है । अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकट हुए बिना नहीं रहता है । कोई व्यक्तित्व बहु आयामी तब होता है, जब उसे बाल्यावस्था से लेकर तब तक संघर्ष करना पड़े, जब तक कि वह किसी व्यवसाय धन्धे पद अथवा अपने काम पर स्वयं को स्थापित न कर ले । स्वयं को स्थापित करने के लिए उसे समाज परिवार और स्वयं से जो संघर्ष करना पड़ता है, वह उसे न केवल संघर्षशील बना देता है अपितु संघर्ष करने की प्रक्रिया के सम्पर्क में आनेवाले लोग और बाधक परिस्थितियाँ उसे पैनी पर्यवेक्षण शक्ति से सम्पन्न कर देती है । लोगों के सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर मानव मूल्यों में विधटन राजनीतिक आपाधापी सामाजिक तनाव सामाजिक विद्वेषताएँ उसे यह सोचने पर विवश करती है कि वर्तमान दशा किन कारणों एवं परिस्थितियों का परिणाम है । अतः उपन्यासकार ने न केवल शोधपरक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि का पनपना स्वाभाविक होता है, अपितु सामाजिक सद्भाव की स्थापना के लिए आम आदमी की मानसिकता को पकड़ने की इच्छा का बलवती होना भी उतना ही स्वाभाविक है ।

लेखक के व्यक्तित्व का प्रकाशन प्रायः अविच्छिन्न रूप में होता है, पर कहीं कहीं उसके व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष आभास भी होने लगता है । यह सिद्धान्त उपन्यासकार पर विशेषरूप से चरितार्थ होता है ।

उपन्यासकार प्रायः अपने प्रथम उपन्यास में पात्रों एवं घटनाओं के नियोजन में अपेक्षित तटस्थता नहीं रख पाता फलतः अपने जीवनानुभवों को अनायास ही शब्दबद्ध करता जाता है ।

इस दृष्टि से सहगल भी अपवाद नहीं है । कोई उपन्यासकार जब अपनी प्रथम औपन्यासिक कृति को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करता है तो उसे अपने जीवन के अनुभवों घटनाओं मान्यताओं आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करने के अधिक अवसर मिल जाते हैं । सहगल का प्रथम उपन्यास जिन्दगी और जिन्दगी और इसकी श्रृंखला में जिन्दगी और आदमी आत्मकथात्मक शैली में प्रणीत उपन्यास है ।

### ❖ जन्म तथा शिक्षा :

डॉ. मनमोहन सहगल का जन्म १५ अप्रैल, १९३२ में जालन्धर (पंजाब) के 'सहगला' मुहल्ला में हुआ था । इनके पिता का नाम श्री प्यारेलाल था । वह एक सरकारी दफ्तर में क्लर्क थे । डॉ. सहगल की माता का नाम श्रीमती रामप्यारी था । वह एक धार्मिक विचारों वाली महिला थीं । डॉ. सहगल को बचपन में माता-पिता का भरपूर स्नेह मिला । इनके जन्म के कुछ महीनों के पश्चात् इनके माता-पिता सपरिवार लाहौर आ गये और पाकिस्तान का बंटवारा होने पर जालन्धर में अपने पुश्तैनी मकान में आ गये । उस समय देश में राजनैतिक अराजकाता की स्थिति व्याप्त थी । इनके माता-पिता से इन्हें कठिनाई के दिनों में संघर्ष करके आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली । सन् १९४८ में इनके पिता की मृत्यु हो गई और तब से डॉ. सहगल के जीवन का संघर्षकाल शुरू हो गया । तब इनकी आयु मात्र १५ वर्ष थी ।

पिता की मृत्यु के पश्चात् डॉ. सहगल के परिवार पर आर्थिक आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा । विपरीत परिस्थितियों में भी इन्होंने हिम्मत



नहीं हारी और अपने अध्ययन के कार्य को जारी रखा । इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मैट्रिक तक लाहौर के सनातन धर्म स्कूल में सम्पन्न हुई । डी. ए. वी. कॉलेज, जालन्धर से इन्होंने इण्टरमीडियट की परीक्षा पास की । सन् १९५३ में इन्होंने दर्शनशास्त्र में एम.ए. की परीक्षा दिल्ली कॉलेज-कैम्प से पास की । सन् १९५४ में पंजाब युनिवर्सिटी कॉलेज-कैम्पस से इन्होंने एम.ए. हिन्दी की । सन् १९५५-५६ में इन्होंने बी. टी. (Bachelor of Teaching) की परीक्षा पास की । हिन्दी में पीएच.डी. का शोध-प्रबंध सन् १९६२ में पूरा करने के पश्चात् सन् १९७० में इन्होंने डी.लिट्. जबलपुर युनिवर्सिटी से की ।

### ❖ प्रारम्भिक जीवन :

डॉ. सहगल ने सेवा कार्य का प्रारम्भ राजकीय महाविद्यालय, टांडा (जालन्धर) में प्राध्यापक की अस्थायी नौकरी से किया । परन्तु इनके मन में आगे बढ़ने की जो ज्वाला धधक रही थी, वह बुझी नहीं । दो वर्ष के अध्यापन के पश्चात् श्यामलदास महाविद्यालय, भावनगर (गुजरात) में प्राध्यापक के स्थायी पद पर इनकी नियुक्ति हो गई । इसी महाविद्यालय में महात्मा गांधी पढे थे । सन् १९६४ में इनकी नियुक्ति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में हो गई । कुछ समय पश्चात् इनका चयन पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में रीडर के पद पर हो गया । सन् १९७१-७६ तक ये प्रोफेसर के पद पर रहे । १६ वर्ष तक हिन्दी विभाग अध्यक्ष पद पर रहते हुए इन्होंने हिन्दी विभाग को नये आयाम दिए । यहीं से वह सेवा-निवृत्त हो गए । सन् १९६४ से १९६७ तक यु.जी.सी. (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग) के एक प्रोजेक्ट पर कार्य करने के पश्चात् डॉ. सहगल दो वर्षों से स्वतन्त्र लेखक के रूप में कार्य कर रहे हैं ।

## ❖ विवाह एवं पारिवारिक जीवन :

अक्टूबर १९५४ में डॉ. सहगल का विवाह विजयलक्ष्मी के साथ सम्पन्न हुआ। इनके तीन पुत्र एवं एक पुत्री है। सबसे कनिष्ठ पुत्र पीयूष अपनी पत्नी मोनिका व बेटे परम के साथ डॉ. सहगल के सान्निध्य में उन्हीं के साथ रहते हैं। परिवार में सुख व शान्ति का माहौल है। तनाव पारिवारिक जीवन का एक अभिन्न अंग है। पारिवारिक जीवन में कभी न कभी ऐसी परिस्थिति अवश्य आती है जब व्यक्ति तनावग्रस्त हो उठता है। परन्तु हमें ऐसी स्थिति में भी हौसला नहीं हारना चाहिए और न ही तनावयुक्त होना चाहिए। बल्कि उस स्थिति का मुकाबला कड़े संघर्ष के साथ करना चाहिए। डॉ. सहगल इस तथ्य को बखूबी निभाते हैं।

अपनी पत्नी के विषय में डॉ. सहगल के हृदय में अपार भावनाएँ तरंगायित होती है – “अगर पत्नी अधिक पढ़ी-लिखी होगी तो वह पति की कम सहयोगिनी हो सकती है और यदि पत्नी लेखक से कम पढ़ी-लिखी होगी तो वह घर को सम्पूर्ण जिम्मेदारियों को अपने ऊपर ले लेती है। ऐसे में लेखक अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त होकर सहज ही सृजनात्मक कार्य कर सकता है। मेरी पत्नी ने परिवार की सम्पूर्ण जिम्मेदारियों को अपने ऊपर ले लिया और मैंने पूर्ण रूप से मुक्त होकर अपनी रचनाओं पर ध्यान दिया। मेरी सम्पूर्ण रचनाएँ मेरी पत्नी को ही समर्पित हैं। यदि वह मेरी सभी जिम्मेदारियों से मुझे मुक्त रखने में मेरा साथ न देती तो शायद मैं अपनी इन रचनाओं को पूरा न कर पाता।”

सेवा निवृत्ति के बाद भी डॉ. सहगल की जीवनचर्या यथावत् चल रही है। वह ऐसा महसूस करते हैं मानों सारा बोझ उनके सिर से उतर गया हो। परिवार का स्नेह व आदर उनके प्रति पहले जैसा ही है। इनके प्रति परिवार के विचारों व व्यवहार में कोई भी परिवर्तन नहीं आया है। सेवा निवृत्ति के बाद वह स्वयं को स्वतन्त्र महसूस करते हैं। सुबह

जल्दी उठकर सैर के लिए निकल पड़ते हैं । फिर २-३ घन्टे बैठकर लिखते हैं । बाद में टी.वी. देखते हैं और अखबार, मैगजीन आदि पढ़ते हैं । सेवा निवृत्ति के बाद भी जीवन सुखमय व्यतीत हो रहा है ।

### ❖ बहुआयामी व्यक्तित्व :

परिवेश एवं परिस्थितियों से जूझते संस्कार कुछ विशिष्ट विचारों एवं उद्गारों की भित्ति पर व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और आभावों से जूझते उसी व्यक्तित्व की पीड़ा से कृतित्व का उदय होता है - जैसे किसी हिमखण्ड में संचित जल ताप पाकर बूंद-बूंद टपकता है और एक विशाल अगाध एवं शीतल सरोवर का निर्माण कर देता है । निश्चय ही कृतित्व के विशाल सागर की गहराई में प्रवेश करने के लिए गहराई के मापदण्ड के रूप में व्यक्तित्व के निर्माता जनक संस्कार एवं जननी परिस्थितियों के विद्युत की घनात्मक एवं ऋणात्मक शक्तियों के समान आवेग युक्त संगम से उद्भूत विचारों तथा भावों का सर्वेक्षण आवश्यक भी है और गहरे पैढने में सहायक भी हो सकता है ।

पंजाब में जन्मे और यहीं रहकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने वाली प्रतिभाओं में मनमोहन सहगल का अपना विशिष्ट स्थान है । पंजाब के मध्यवर्गीय जीवन और समाज की उपज मनमोहन की बाल्यवस्था एवं युवावस्था जीवन की समस्याओं को झेलते हुए बीती, उसी की यथार्थ अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में मिलती है । डॉ. सहगल विराट व्यक्तित्व के स्वामी हैं । कोई व्यक्तित्व विराट या बहुआयामी तब होता है, जब उसे बाल्यावस्था से लेकर तब तक संघर्ष करना पड़े जब तक कि वह किसी व्यवसाय, पद अथवा अपने काम पर स्वयं को स्थापित न कर ले । स्वयं को स्थापित करने के लिए समाज, परिवार और स्वयं से जो संघर्ष करना पड़ता है, वह उसे न केवल संघर्षशील बना देता है अपितु संघर्ष करने की

प्रक्रिया के अन्तर्गत आने वाले लोग और बाधक परिस्थितियाँ उसे पैनी पर्यवेक्षण शक्ति से सम्पन्न कर देती हैं। लोगों के सिद्धांत और व्यवहार में अन्तर, मानव-मूल्यों में विघटन, राजनीतिक आपाधापी, सामाजिक तनाव, विपदाएँ उसे सोचने पर विवश कर देती हैं कि वर्तमान दशा किन कारणों एवं परिस्थितियों का परिणाम है।

डॉ. सहगल के समग्र व्यक्तित्व को कुछेक शब्दों में समेटने का प्रयत्न उनके वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति अन्याय होगा, क्योंकि कुछेक शब्द उनके व्यक्तित्व के किसी एक पहलू के ज्ञापक हो सकते हैं, समग्र व्यक्तित्व के नहीं। डॉ. सहगल का व्यक्तित्व उदारता और विनयशीलता की प्रतिमूर्ति है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सदैव उदारता और विनम्रता का परिचय उन्होंने दिया है। वह एक कर्मठ जीव हैं। अध्ययन, चिन्तन-मनन, लेखन ही उनके जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है। उनके व्यक्तित्व पर 'कामायनी' का यह सन्देश पूर्णतः चरितार्थ होता है :

*“औरों को हंसते देखो मनु, हंसो और सुख पाओ।*

*अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ ॥”*

डॉ. सहगल को अपने जीवन में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। बाल्यावस्था में ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। उस समय घर में भूख एवं गरीबी थी और जीवन-संघर्षों से जूझने वाला अकेला मनमोहन। परन्तु उसने हौसला नहीं हारा। पहले जालन्धर रेलवे स्टेशन के बाहर बिना लाइसेंस के कुलीगिरी की। फिर अदालत के सामने चाय तथा छोटी-मोटी चीजें बेचने लगे। जब इससे भी काम न चला तो कपूरथला जाकर छोटा-मोटा काम करने लगे। ऐसे बहुत से लोग भाग्य के थपेड़ों की मार न सह पाने के कारण यूँ ही जिन्दगी का बोझ ढोते हुए मिट्टी हो जाते हैं। पर मनमोहन सहगल के मन में जो आग जल रही थी, वह उन्हें निरन्तर उज्ज्वल भविष्य की ओर उन्मुख कर रही थी। उसी

के परिणाम स्वरूप डॉ. सहगल एक श्रेष्ठ अध्यापक और रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए ।

“डॉ. चरणदास शास्त्री के अनुसार इनका व्यक्तित्व निम्न पंक्तियों के माध्यम से दर्शाया जा सकता है -

*‘कि तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा रजताद्रिणा वा, यत्राश्रिताश्वतरवस्तर  
वाल्वेव । मन्यामेह मल्यमेव कङ्कोलविम्बकुटजा अपि वंदनाः स्युः ॥’*

अर्थात् उस स्वर्णशैल या रजतगिरि से किसी को क्या प्रयोजन । जिनके आश्रित वृक्ष वृक्ष ही रह गए । हम तो उस मलय पर्वत की महत्ता को मान देते हैं, जिनके आश्रय मात्र से कङ्कोक, नीम या कुटज जैसे कड़वे वृक्ष भी चन्दन हो जाते हैं ।

डॉ. सहगल के वैविध्यपूर्ण महिमा व्यक्ति के सन्दर्भ में ये शब्द अक्षरशः सार्थक सिद्ध होते हैं । उनका व्यक्तिगत जीवन ही केवल मलयज सदृश सुवासित एवं शीतकारी नहीं, बल्कि उन्होंने अपने पीरवेश को भी उन्हीं गुणों से मण्डित कर रखा है । परिवार हो या मित्र मण्डली, विभाग हो या साहित्य स्त्रष्टा समाज, सर्वत्र वह व्यक्तित्व की अद्वितीय आभा एवं सुवास से सभी के लिए स्पृहणीय बन गए हैं ।”

### ❖ सशक्त रचनाकार :

डॉ. सहगल की प्रथम रचनात्मक कृति एक कहानी थी, जो दैनिक हिन्दी मिलाप में सन् १९५० में छपी थी, जिसका नाम था ‘प्रणय पथ पर’ । इनके पश्चात् कोई कहानी नहीं लिखी । डॉ. सहगल कहते हैं कि मेरी उपन्यास लेखन की परम्परा भी मालूम नहीं कहाँ और कैसे उद्भूत हुई, हाँ लिखना मैंने तभी शुरू किया, जब सभी अपेक्षित अंगों का सही सहयोग प्राप्त हुआ । मैं क्यों लिखता हूँ और कैसे लिखता हूँ ? क्यों का उत्तर तो यह है कि मनुष्य दुनिया को देखता है, अनेक बिम्ब ग्रहण करता है और

यदि पढ़ा-लिखा सूझवान हो तो उन बिम्बों के प्रति कुछ न कुछ प्रतिक्रिया भी करता है । यदि यह प्रतिक्रिया सक्रिय हो, तो इसे विद्रोह कहा जाता है और यदि प्रतिक्रिया सोच के स्तर तक की हो, तो चेतना कहलाती है । स्पष्ट है कि बाह्य अनुभूतियाँ जब आन्तरिक चेतना के साथ द्वन्द्वात्मक स्तर पर जूझने लगेंगी और उन्हें कल्पना का पुट तथा अभिव्यक्ति का बल मिलेगा तो रचना प्रक्रिया चल निकलेगी ।”

डॉ. सहगल यह मानते हैं कि जब लेखक अपनी रचना के साथ पूर्णतः जुड़ जाता है, उसके एक-दो शब्द को जीता है, ओढ़ता-बिछाता है, उसके नैतिक आध्यात्मिक और उपदेशात्मक धरातलों को सहर्ष शिरोधार्य करता है, तब वह और उसकी रचना जीवन धरातल पर ऐक्य प्राप्त कर लेते हैं । डॉ. सहगल अपने उपन्यासों के पात्रों को कठपुतली नहीं बनाते, बल्कि उनके श्वासों के साथ चलते हैं और उनका पीछा करते हुए केवल इतना ही देखते हैं कि कहाँ, किस परिस्थिति में सहजता के नाते वे क्या करते या सोचते हैं । डॉ. सहगल के उपन्यासों के कथानक उनके गिर्द के संसार से चयित है, किन्तु वे कथानक को ही नहीं स्थिति को भी पकड़ते हैं । उन पर सोचते, मनन करते और फिर उसे दिशा विशेष में चलने के लिए अपने सांचे में ढाल लेते हैं । धीरे-धीरे घटनाएँ जन्म लेती हैं, चयन क्षेत्र दैनिक जीवन की व्यापक अनुभूतियों की असीम तत्परता इसमें उनकी सहयोगिनी होती है और एक-एक सूत्र संजोकर वह श्रेष्ठ कनाथक का संयोजन कर रचना का भव्य भवन निर्मित करते हैं ।

### ❖ मान-सम्मान :

डॉ. मनमोहन सहगल बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । इसी प्रतिभा के कारण उन्हें अनेक बार सम्मानित किया गया है । इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर पंजाब सरकार ने सन् १९८३ में अपने सर्वोच्च सम्मान साहित्य

शिरोमणि से उन्हें सम्मानित किया । इसके पश्चात् यू.जी.सी. ने वर्ष १९८४ के लिए इन्हें राष्ट्रीय प्रवक्ता नियुक्त किया और इसी वर्ष पंजाब सरकार ने इनके सम्मान में इन पर पंजाब सौरभ विशेषांक निकाला । सन् १९९३ में उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें सौहार्द पुरस्कार देकर सम्मानित किया । इनकी कई आलोचनात्मक रचनाओं तथा उपन्यासों पर इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए हैं इस प्रकार डॉ. मनमोहन सहगल को अनेक बार सम्मानित किया गया है जो हमें इनकी प्रतिभा से अवगत कराते हैं ।

### ❖ सलाहकार के रूप में :

डॉ. सहगल का एक सलाहकार का रूप भी उनके व्यक्तित्व का एक विशिष्ट अंग है । उनके व्यक्तित्व में एक ऐसा सम्मोहन है जो कि व्यक्ति को उनके साथ बांध देता है । स्थान और कालगत दूरियाँ भी उनकी छवि को मानसपटल से मिटा नहीं पाती हैं । डॉ. सुधीन्द्र कुमार कहते हैं कि “उनको गुरु कहूँ, मित्र कहूँ या बड़ा भाई कहूँ । कुछ निर्णय नहीं कर पाता हूँ । मेरे सन्दर्भ में उनके तीनों रूप ही ग्राह्य हैं । उनकी सलाह गुरु की सलाह नहीं मित्र की सलाह होती है । मित्र की सलाह में कोई लागलपेट या छिपाव-दुराव नहीं होता, इसलिए सलाह देते डॉ. सहगल को तथा सलाह लेते समय मुझको कभी ऐसा नहीं लगा कि हम दोनों में आयु का पद का कोई अन्तर है ।”

### ❖ प्रेरक के रूप में :

महिन्द्रा कॉलेज, पटियाला में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत डॉ. राजकुमार मोहल कहते हैं कि “डॉ. सहगल से मेरा परिचय सन् १९७६ में हुआ । जब मेरी नियुक्ति पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला में हिन्दी विभाग में लिपिक के पद पर हुई । उस समय डॉ. सहगल विभागाध्यक्ष थे । उन्होंने ही मुझे एम.ए. करने की प्रेरणा दी ओर मुझे कार्यालय के समय के

बाद विभाग में ही पढ़ाना शुरू कर दिया । परिणामतः मुझे विश्वविद्यालय पदक प्राप्त हुआ । डॉ. सहगल ने ही मुझे पीएच.डी. के लिए पंजीकरण करवाने की प्रेरणा दी और मुझे शोध के लिए ऐसा विषय सुझाया जो आज तक सम्पन्न हिन्दी शोध कार्य के लिए अछूता रहा है । उन्हीं की प्रेरणा से ही आज मैं इस महाविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहा हूँ ।”

### ❖ निष्ठावान अध्यापक के रूप में :

डॉ. मनमोहन सहगल उच्च कोटि के सफल अध्यापक रहे हैं । वह अपने अध्यापकीय कार्य को एक ‘मिशन’ के रूप में लेते हैं । डॉ. सहगल अपनी निष्ठा कार्य पद्धति एवं सरल व्यवहार के कारण अध्यापकों तथा छात्रों के मध्य सामजस्य पैदा कर देते हैं । अध्यापक के रूप में वह एक सच्चे मित्र हैं । उसने बात करने पर कभी भी यह महसूस नहीं होता कि हम किसी विद्वान प्राध्यापक से बात कर रहे हैं । विद्यार्थी प्रथम भेंट में ही डॉ. सहगल की विद्वता, गम्भीरता, गवेषणात्मक दृष्टि, सूझबूझ, सरलता और सहृदयता के प्रति समर्पित हो जाता है, उनका अध्ययन व विद्वता सागर की तरह गम्भीर और गहन है ।

### ❖ निर्देशक के रूप में :

तमाम उम्र संघर्ष करने वाले डॉ. सहगल का सम्भवतः यह विश्वास है कि यदि किसी को अच्छा तैराक बनाना है तो उसे बहते पानी में छोड़ देना चाहिए । सिर के ऊपर पानी आते ही व्यक्ति अधिक सजगता, सतर्कता और विश्वास से हाथ-पैर मारकर तैरना सीख जाता है । इसमें जाखिम तो हैं किन्तु तपकर खरा सोना बनने की सम्भावना भी है । यही कारण है कि शोधार्थी को विषय देकर वे निश्चिन्त हो जाते हैं कि वह स्वयं अध्ययन, अनुशीलन करके जो निष्कर्ष निकालेगा, वह अधिक वैज्ञानिक और सही होंगे । वे धैर्य, संयम खोकर विद्यार्थी को हतोत्साहित नहीं करते हैं ।



शीघ्रता में अपने निष्कर्षों, दिशाओं को उस पर आरोपित भी नहीं करते हैं ।

### ❖ दार्शनिक चिन्तक के रूप में :

डॉ. सहगल एक अध्येता चिन्तक हैं । उनके चिन्तन का प्रमुख वैशिष्ट्य है – उनका समन्वयात्मक दृष्टिकोण । “डॉ. सहगल ने गुरु नानक देव जी के दार्शनिक मन्तव्यों की व्याख्या समन्वयावादी दृष्टिकोण के आधार पर की है । इनके दार्शनिक चिन्तन की अन्यतम विशेषता यह है कि वे भारतीय दर्शन के विभिन्न सिद्धांतों की जहाँ सम्भव हो सका है मनोविज्ञान के आधार पर नई और तर्कसंगत व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं । दार्शनिक चिन्तन विचार, संवेदना और अनुभूति पर आधारित होता है । डॉ. सहगल का दार्शनिक चिन्तन अनुभव की अग्नि में तपकर कुन्दन बन गया है तथा शास्त्रीय विवादों के घेरे से परे हैं ।”

### ❖ समीक्षक तथा आलोचक के रूप में :

“एक समीक्षक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दायित्व यह होता है कि वह निर्भीक होकर बिना किसी पूर्वाग्रह के वस्तुनिष्ठ दृष्टि से समीक्ष्य रचना का मूल्यांकन करे । डॉ. सहगल की समीक्षा का आधार यदि वैदिक वाङ्मय के शाश्वत मूल्यों का युगबोध है तो सर्जनात्मक साहित्य के सन्दर्भ में वे पूर्णतः आधुनिक युग चेतना के प्रतीक हैं । या यूँ कहना कि इस मनीषी साहित्य स्त्रष्टा ने युगीन समस्याओं को अपनी प्रतिभा से रूपायित करके उनका निदान शाश्वत मूल्यों में अन्वेषित करने का कुशल प्रयास किया है ।”

### ❖ संघर्षशील व्यक्तित्व :

उपन्यासकार उपन्यास के किसी एक पात्र के माध्यम से प्रायः अपनी मान्यताओं विचारधाराओं एवं अभिलाषाओं को व्यक्त करता है । उपन्यासकार

सहगलजी जिन्दगी और जिन्दगी के दीपक को अपना प्रतिनिधित्व करने देते हैं । दीपक के पिता तब स्वर्ग सिधार गये, जब उसने अभी स्कूल की शिक्षा समाप्त की थी । धनाभाव की बेड़ियों से जकड़े जाने पर भी दीपक अपनी शिक्षा जारी रखना चाहता है और अपने परिवार के पालन पोषण के लिए छोटे मोटे समझे जाने वाले काम करता है । एम.ए. करने के उद्देश्य से परिवार सहित दिल्ली चला जाता है । कैम्प कॉलेज की सान्ध्य कक्षा में प्रवेश लेता है । उसकी दिनचर्या दृष्टव्य है । प्रातःसात बजे घरसे निकलता एकेडमी में पढ़ाता, दिल्ली के लम्बे फाँसले तय करता हुआ, एक दो स्थानों पर ट्यूशन करने जाता और संध्या को कॉलेज पहुँच कर अपने थके बदन और सुस्त मगज में दर्शन की समस्याओं को बिठाने का प्रयत्न करता । रात लगभग दस बजे घर लौटता तो माँ गर्म करके भोजन परोस देती ।<sup>१</sup>

अतः स्पष्ट है कि दीपक को प्रातः सात बजे से लेकर रात दस बजे तक कुल पंद्रह घण्टे घर से बाहर आजीविका और शिक्षा के लिए भटकना पड़ता । आराम के नाम पर उसे दोपहर को कुछ समय मिलता पर किसी उजड़े हुए बाग में आराम के नाम पर उसे दोपहर कुछ समय मिलता । दोपहर का एक डेढ़ घण्टे का समय दीपक रोशन आरा गार्डन की किसी बेंच पर बैठ या लेट कर बिता लिया करता था ।<sup>२</sup>

दीपक संघर्षशील बना रहना चाहता है । वह ऐसा कोई काम भी नहीं करना चाहता जिससे उसके कैरियर बनाने के संघर्ष में बाधा उत्पन्न हो । यदि उसे एकेडेमी से निकाल दिया जाय तो वह न पढ़ाईजारी रख सकता है और न परिवार का पोषण । फलतः उसमें व्यावसायिक जागरूकता है, जो उसके संघर्ष को नोकीला बनाती है । इस संघर्ष को बनाये रखने के लिए वह एक छात्रा के प्रणय विज्ञापन के प्रथम प्रयास की उपेक्षा कर देता है ।

एक छात्रा, नाम है दीप्ति । उसने कुर्सी की पीठ पर एक हाथ रखा और दूसरा बाजू पर और पूछा मास्टर जी चोरी का गुड मीठा की अंग्रेजी क्या होती है । 'स्टोलनकिसिज आर स्वीट' बताने जा ही रहा था कि मोहक बन उठनेवाले उस वातावरण में मेरी व्यावसायिक बुद्धि ने छींक दिया ।<sup>३</sup>

दीपक स्वयं को अपने लक्ष्य के बारे में सचेत करता हुआ कहता है कि मुझे अपने उच्च लक्ष्यों को पाना है । भावुकता के प्रवाह में वह शायद आत्महत्या होगी । विश्वास के साथ कहता है मुझे किसी कॉलेज में प्रोफेसर बनना है । प्रोफेसर पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए उसे अपना शोषण करवाना पड़ता है ।<sup>४</sup>

वह इस शोषण के प्रति सावधान किन्तु विवश है । वह सोचता है, हम लोग कितने मजबूर हैं । हमें अपनी आत्मा को इन एकेडमी वालों के पास बेचना पड़ता है । एकेडमी के प्रिन्सिपल तथा हम अध्यापकों में मील मालिक व मजदूर के रिश्ते से कुछ भी कम अन्तर नहीं परन्तु हमारी मजबूरियाँ हैं कि हम इस कूर नीति का शिकार बनते चले जाते हैं ।<sup>५</sup>

एकेडमी वाले किसी भी दिन किसी बहाने अथवा बिनाबहाने के उसे नौकरी से निकाल सकते हैं ।

यह भय दीपक को सदा आतंकित करता है । अतः वह जितनी भी ट्यूशन मिलें स्वीकार करने का प्रयास करता है । रोशनधारा गार्डन से तीन मील दूर लालकुआँ बाजार में एक लड़की को ट्यूशन देता है ।<sup>६</sup>

दीपक को एक दिन में पुरानी साइकिल पर मीलों फासला तय करना पड़ता । साइकिल के बिना गुजारा नहीं था और किसी अन्य वाहन का उपयोग करना धनाभाव के कारण सम्भव न था । आँधी हो या तूफान हो, वर्षा हो, उसे तो संघर्ष करते जाना है । यथा दीपक को रीडिंग रोड के कैम्प कॉलेज से किंगजवे कैम्प के पास विजयनगर जाना था । पास में न

छाता था न बरसाती । साइकिल पर लगभग सात मील का फासला तै करना था । ऊधर तूफानी बरसात और भयंकर सर्दी थीं । सड़कों पर लगभग डेढ़ फुट पानी हिलोरें ले रहा था । ज्यों ही वह एम. एम. रोड पर पहुँचा तो पानी की गहराई बढ़ने लगी । तब लगभग दो फुट पानी सड़क पर था । पानी ने सड़क गड्ढों और सड़क को समतल कर दिया था ।

फलतः वह साइकिल सहित गढ़े में जा गिरा । उसके कान, नाक, मुँह में गन्दा पानी घुस गया । पन्द्रह मिनट मूर्छित रहा । और रात साढ़ेग्यारह बजे घर पहुँचा तो जुकाम और बुखार ने ऐसा दबोचा कि दो दिन तक उठने नहीं दिया ।<sup>९</sup>

दीपक को न केवल अपनी पढ़ाई के लिए कमाना है, अपितु अपनी माँ तथा बहन का उत्तरदायित्व भी संभालना है । वह आजीविका के लिए अनेक छोटे मोटे काम करता है, पर उसके मन में सदा यह विचार बना रहता है कि इनमें से मेरा कोई गंतव्य नहीं । वह लम्बे लम्बे फासलें साइकिल पर पार करता हुआ दिनभर काम धन्धे में लगा रहता और रात पढ़ाई का समय आता तो श्रान्ति और क्लान्ति अपनी किसी भी मजबूर स्थिति में मैने सर्पण का आश्रय नहीं लिया ।<sup>१०</sup>

दीपक अपनी मजबूर स्थिति का विश्लेषण करता है । प्रातःकी धुन्ध में छे मील साइकिल पर जाता । रात को थक कर लौटता तो सोने की इच्छा हो उठती । पढ़ने में मन न जमता ।

अतः परीक्षा के निकट आने की चिन्ता एवं नींद से भरी आँखों में खूब कश्मकश होता और न जाने कब पुस्तक लूढ़क जाती और मैं उठकर खाट पर खराटे लेने लगता ।<sup>११</sup>

मनमोहन सहगल ने दीपक को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने में सफलता प्राप्त की है, किन्तु दीपक का अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा

और आजीविका के क्षेत्र में किया गया संघर्ष इस तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि दीपक उपन्यासकार का प्रतिनिधित्व करता है। सहगल-जी की प्रारम्भिक प्रकाशित पुस्तकों के प्लेप पर शैक्षिक योग्यता के संदर्भ में एम. ए. दर्शन एवं हिन्दी का उल्लेख हुआ है। एम. ए. दर्शन विषय में कैम्प कॉलेज दिल्ली से किया गया। इसकी जानकारी उनके अनेक सहपाठियों एवं विद्यार्थियों को है।

अतः दीपक द्वारा किसी कॉलेज प्रोफेसर बनने के लिए किया गया संघर्ष काफी हद तक लेखक द्वारा किया गया संघर्ष ही समझा जा सकता है। इसलिए सहगलजी के व्यक्तित्व का प्रथम सर्व प्रमुखगुण संघर्ष प्रियता ही हो सकता है। दीपक एम. ए. उत्तीर्ण होने पर दीप्ति की माँ का कथन दीपक की संघर्ष प्रवृत्ति को रेखांकित करता है।

तुम्हारी सफलता कोई सामान्य सफलता नहीं है। उसके पीछे संघर्ष का पसीना बहाया है। तुम्हारे पास होने पर मुझे अत्यन्त हर्ष है।<sup>१०</sup>

### ❖ आदर्शवादी व्यक्तित्व :

दीपक ट्यूशन करता किसी न किसी एकेडमी में पढ़ाता हुआ और सान्ध्य कॉलेज में एम. ए. दर्शनशास्त्र से करता हुआ अपने परिवार का पालन करता है। जब एकेडमी की एक सोलह वर्षीय चंचल छात्रा दीप्ति ने उसकी कुर्सी पर अत्यन्त झुकते हुए चोरी का गुड मीठा है का अंगेजी रूपान्तर पूछा तो वह कुछ सकपका गया।

रात को दीप्ति की इच्छाओं एवं अदाओं का विश्लेषण करने लगा तो उसके अन्तर्मन ने कहा सावधान! वह तुम्हारी छात्रा है। उसके सम्बन्ध में ऐसी बात दिल में लाना अनुचित ही नहीं पाप है।<sup>११</sup>

अन्यत्र स्वयं से कहता है कि मैं आदर्श का पोषक हूँ फिर भला क्यों किसी गलत रास्ते पर चलूंगा।<sup>१२</sup>

मैं किसी से प्रेम नहीं कर सकता अध्यापक हूँ न ? समाज ने मुझे प्रेम करने का अधिकार नहीं दिया ।<sup>१३</sup>

जब दीपक के जीवन में दीप्ति का प्रवेश तेजी से होने लगा तो दीपक का आदर्शवादी मन घबरा गया और वह सोचने लगा यदि मेरे जीवन में दीप्ति का प्रवेश इसी प्रकार होता चला गया तो निश्चय ही एक दिन मेरे बाहरी संयम के बाँध टूट जाएँगे । उन सूत्रों को बनाये रखने के लिए ही मैं जया को शीघ्र ही पत्नी रूप में अपना लेना चाहता हूँ । प्रस्तुत परिस्थिति में मुझे दूसरी ओर विवाह की स्वीकृति इसीलिए देनी होगी कि किसी गलत मार्ग को अपनाकर अपने ही पतन का कारण न बन जाऊँ ।<sup>१४</sup>

दीपक अपनी शिष्या से वासनात्मक सम्बन्ध बनाना अपने आदर्शों से गिरना मानता है । दूसरी ओर दीपक का अभिन्न मित्र निर्मोही उसे आदर्शवादी मुलम्मा त्याग कर दीप्ति को स्वीकार करने के लिए जोर देता है । पर दीपक का आदर्श फूँकार उठता है । मैं दीप्ति से विवाह नहीं कर सकता क्योंकि वह मेरी शिष्या थी मैं अध्यापक था । मेरी कायरता किसी से यह सुनने को तैयार न थी कि कोई यह कहे शिष्या पर डोरे डाल कर मास्टर ने शादी बना ली ।<sup>१५</sup>

आदर्शवादी दृष्टि ने दीपक को अव्यवहारिक बना दिया । उसके पिछले आदर्श को देखकर उसके मित्र निर्मोही ने अनेक तर्क देते हुए दीप्ति के प्रेम को स्वीकारने को कहा था । पर दीपक न मानते हुए कहता है मेरे सामने चुनाव का प्रश्न ही कहाँ है ? केवल जया के घर से तो प्रस्ताव है, मेरे सम्मुख कहीं दीप्ति के घर से ऐसा प्रस्ताव होता तो निश्चय ही मैं दीप्ति के पक्ष में मत देता ।<sup>१६</sup>

पर जब दीप्ति की माँ ने स्पष्ट रूप से दीपक को दीप्ति से विवाह करने का प्रस्ताव स्वीकार करने को कहा तब भी दीपक स्वीकृति नहीं दे सका । दीप्ति उसपर प्राण न्यौछावर करती है । उधर दीप्ति की मम्मी

दीपक को पसन्द करती है । वह दीपक से साफ साफ शब्दों में दीप्ति के लिए अच्छा लड़का चाहिए की बात करती है ।

लड़का मैं तुम्हारे जैसा सुशील समझदार और पढ़ा लिखा चाहती हूँ । घर से भले ही अमीर न हो तुम्हारा ही क्या ख्याल है ? चाहो तो मैं तुम्हारी माँ से बात चीत करूँ ।<sup>१७</sup>

दीपक की माँ को जब पता चला कि दीप्ति की मम्मी दीपक से रिश्ता करने के लिए तैयार है तो उस ने दीपक से दीप्ति की मम्मी के प्रस्ताव के बारे में पूछा तो वह साफ इन्कार कर गया ।<sup>१८</sup>

दीप्ति को दीपक के आदर्शवाद में छिपी कायरता का पता चल गया तो स्कूल के उत्सव से लौटते हुए दीप्ति ने दीपक से स्पष्ट ही कह दिया “बनो नहीं अब अपनी कायरता को अपने तक ही सीमित रखो मैंने तुम्हारी मर्दानगी देख ली है ।”<sup>१९</sup>

धनाभाव दीपक को अपने आदर्श से गिरने के लिए विवश करता है । और थोड़ी सी रकम कमाने के लिए उसने एक फिल्म के टिकट सिनेमा होल के बाहर ब्लैक में बेचने का निश्चय किया पर टिकट खरीद लेने के बाद भी व्यावहारिक ज्ञान न होने के कारण बेच न सका ।

दीपक अपनी पत्नी जया द्वारा समर्पण करने से इन्कार करने पर काम अभुक्ति से पीड़ित होता है । दीपक नागपुर मिशन कॉलेज में दर्शन का अध्यापक नियुक्त था । उसके सहकर्मियों में से एक अन्तरंग मित्र किसी वेश्या या काल गर्ल से दोस्ती करवा देने का प्रस्ताव रखा पर दीपक मन से चाहता हुआ भी ऊपर से इन्कार कर देता है । वह सोचता है । यदि कोई मुझे वहाँ देख लेगा तो क्या कहेगा ? मैं प्रोफेसर हूँ मेरा कोई विद्यार्थी यह सब जान पायेगा तो मेरे लिए मौत से कम न होगा ।<sup>२०</sup>

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उपन्यासकार सहगल गुरु और शिष्या में आदर्शवादी सम्बन्ध बनाये रखने के पक्ष में है ।

उपन्यासकार अत्यन्त संवेदनशील प्राणी होता है । अतः अनेक बार परिस्थितियाँ उसे अपने सिद्धान्तों से विचलितकर देती है । और वह पतन के गर्त में गिरने की सोचता है । पर तभी उसका विवेक एक चाबुक मारकर उसके आदर्शवादी व्यक्तित्व को सचेतकर देता है और वह पतन से बच जाता है ।

### ❖ मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व :

सहगलजी ने अपने उपन्यासों में मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अनेक तत्त्वों का सफलता पूर्वक प्रयोग करके अपने मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व का परिचय दिया है । फ्रायड ने सपनों को मानव मन की बात समझने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है । दिन में जिन व्यक्तियों अथवा प्रसंगों की चर्चा हुयी हो ।

मानव की जो इच्छाएँ अधूरी रही हों । वे सपने के रूप में प्रायः रूप बदल कर प्रकट होती हैं ।

सहगलजी ने इस सिद्धान्त का विश्वसनीय ढंग से प्रयोग किया है । दीपक अपनी पत्नी ज्योति से शारीरिक एवं मानसिक तृप्ति नहीं पा सका । इसका उसे अत्यन्त रोष है और वह अनायास अपनी प्रेमिका दीप्ति को याद करने लगता है । उसका सानिध्य पाना चाहता है । वह अतृप्त एवं दुःखी होकर सो जाता है तो वह सपने में अपने कॉलेज की एक छात्रा क्रांति से मिलता है । वह उसे एक सीमा तक अपने शरीर से खेलने देती है । प्रकट है कि दीपक के अचेतन को दीपक की सुप्त अवस्था में अपने जौहर दिखाने का अवसर मिल गया ।<sup>२९</sup>

एक अन्य अवसर पर विवाह के कुछ मास पश्चात् जब दीपक की पत्नी ज्योति उसे पूर्ण आत्म समर्पण नहीं करती और दीपक झुंझलाकर सो जाता है । तो वह सपने में एक बुजुर्ग मित्र चाचा से बातचीत करता है ।



चाचा सुझाव देता है । यदि पत्नी समर्पण नहीं करती तो कोई दूसरा पात्र खोज लो ।

दीपक सकपकाया परन्तु वफादारी को एकदम इतनी बड़ी चोट पहुँचाने का मेरा साहस नहीं होता । जब पौ फटने पर दीपक जागा तब उसे सन्देह होने लगा कि मैंने सपना देखा ही नहीं । मेरी प्रवाह के दो विभिन्न भावों में द्वन्द्व चल रहा था ।

स्पष्ट है कि उपन्यास का पात्र दीपक मनोविज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में जब सोचता और बतियाता है तो निश्चय ही उपन्यासकार सहगलजी के मनोविज्ञान के ज्ञान को प्रकट करता है ।

जब पूर्ण उत्तेजित कर देने पर भी ज्योति अपने पति दीपक को कामेच्छा की पूर्ण तृप्ति करने नहीं देती तब सन्देह करने की मेरी बारी थी । जरूर ज्योति ऐसा व्यवहार करके किसी और के प्रति वफादार रहना चाहती है । यही कारण है कि वह पत्नी होने के नाते बाकी सब कुछ सह लेती है । परन्तु सीमा पर आकर उसकी सहिष्णुता टुट जाती है । तब दीपक की बुद्धि और भावना में मार्मिक द्वन्द्व अंकित किया गया है । बुद्धि स्वास्थ्य के लिए ही ज्योति ने सब टाल दिया भावना बोली स्वास्थ्य इच्छा तृप्ति के अभाव में नहीं बनता ।<sup>२२</sup>

अन्त में बुद्धि दीपक को इस निष्कर्ष पर पहुँचाती है । ज्योति के दिमाग में उपदेशको के ब्रह्मचर्य का जो भूत सवार है । वह स्वभावतः इच्छाओं के उद्दीप्त होने पर भी उसे पीछे खींचा करता है ।<sup>२३</sup>

जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के प्रति मन में विशेष कोमल भावनाएँ रखता है । किन्तु लोकाचार के कारण प्रकट करते समय इससे ठीक विपरीत भावनाओं की अभिव्यक्ति करे । तब उसमें मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होना अत्यन्त स्वाभाविक है ।

इस तथ्य को सहगल ने प्रामाणिक अभिव्यक्ति देकर अपने मनो वैज्ञानिक व्यक्तित्व की छाप पाठक पर छोड़ी है। कुछ उदाहरणों से इसकी पुष्टि की जा सकती है। दीप्ति की माँ ने दीपक से कहा तुम दीप्ति को इंडिया गेट की रोशनी दिखा लाओ। आज इसका भाई जीवित होता तो बिलकुल तुम्हारे ही बराबर होता। यह सुनकर दीपक बोला मैं भी तो इसका भाई ही हूँ। यह कहते समय वह भूल गया कि उसका अर्न्तमन प्रायः उसे प्रयसी के रूप में स्वीकारता है। दोनों बस में साथ बैठे यात्रा कर रहे हैं। दीपक का हृदय चाहता है कि उसे खींचकर सीने से लगा लूँ बुद्धि कहती है कि मैंने अभी थोड़ी देर पूर्व उसे बहन कहा है।<sup>२३</sup>

दीपक तीन दिन की बीमारी के बाद दीप्ति के घर गया। अकेली पाकर उसे बाँहों में भरकर चूम लेने के लिए उतावला हो गया पर उसने दीप्ति के गले में बाँहें डालने को ज्यों ही हाथ उठाए कि एक कोडा उसके लपलपाते पशु के मुँह पर लगा। कोडामारने वाला दीपक के मन का अध्यापक था।<sup>२४</sup>

दीपक दीप्ति की मम्मी के सामने दीप्ति से विवाह करने से इन्कार कर आया था पर निर्मोही के फटकारने के बाद उसका मानसिक द्वन्द्व क्या रूप धारण करता है। यह महत्वपूर्ण है। विभाग में जया व दीप्ति की धक्का पेल मची थी। कभी दीप्ति जया को धकेलकर बाहर कर देती कभी जया दीप्ति का मार्ग रोककर खड़ी हो जाती। अनपेक्षित सी खीचा तानी मची हुई थी। दुनियाँ क्या कहेगी? अपनी शिष्या से विवाह करना उचित नहीं। मेरे आदर्शों का मजाक उड़ाया करेंगे।<sup>२५</sup>

दीपक ने विवाह के बाद मिलन यामिनी के बाद पत्नी को ध्यान से देखा और उसकी भद्दी शक्ल और उभरे हुए दाँत देखकर उसे स्वयं पर गुस्सा आया। क्यों उसने दीप्ति को नहीं स्वीकारा उससे धोखा हुआ है।

वह तालकटोरा बाग में एकान्त में सोचने लगा मुझे धोखा दिया गया है । अब समझा ज्योति द्वारा मुह छिपाए रखने का भाव लज्जा नहीं कपट था । मेरे दोस्त जब देखेंगे तो क्या कहेंगे ? दीप्ति मुझे घनचक्कर समझेगी । सब हसेंगे मेरी पसन्द की खिल्ली उड़ायेंगे । मुझे लगा कि मेरे चारों ओर अट्टहास हो रहा है । निर्मोही खड़ा कह रहा है, चले थे लड़की पसन्द करने इससे तो गधी से शादी कर ली होती मैं नहीं झुकूँगा । मेरे साथ छल किया गया है । मैं बदला लूँगा ।<sup>२६</sup>

वह देर तक पत्नी को त्यागने, अपनाने और सुधारने के लिए तर्क करता रहा । जीवन संघर्ष से हारे थके धनाभाव के कारण दिन भर पिसने वाले धन और समय दोनों के अभाव में बिना मनोरंजन के पलने वाले युवक को थोड़ी देर किसी लड़की से हँसकर बात कर लेने मात्र सेही एक अद्वितीय संतुष्टि मिलती है । वह अपनी विवशताओं के कारण प्रणय के खेल से बचना चाहता है । पर लड़की का आकर्षण उसके मन में तूफान मचाये हुए हैं ।<sup>२७</sup>

मनोविज्ञान में एकोन्माद की स्थिति का अध्ययन पात्र के अचेतन के अध्ययन के लिए उपयोगी माना गया है । दीपक की हार्दिक इच्छा है कि वह दीप्ति से शारीरिक सुख प्राप्त करें ।

दूसरी ओर दीप्ति कभी अप्रत्यक्ष रूप से कभी प्रत्यक्ष कियाओं से उसे निमन्त्रण देती है पर दीपक उसे एक बार बहन कह चुका है भले ही बहन कह कर सीधा सम्बोधन कभी नहीं किया । साथ ही वह स्वयं को अध्यापक समझता है । इसलिए उसके स्पर्श सुख से वंचित रहता है । स्थिति से पलायन करता है ।

रात के एकान्त में दीप्ति के चित्र को चूम कर अपनी विवशता एवं प्रेम प्रकट करता है । जलती आग के सामने घी पिघलता है पिघलकर बह जाता है और मैं हूँ कि तुम्हारे सामने पिघलता तो हूँ परन्तु बहना रोकने

के लिए अपने मानसिक उद्भावों को किस सख्ती से कुचलना पड़ता है । मुझे यह तुम नहीं जानती दीप्ति उसे मालूम नहीं कितनी देर दीप्ति का चित्र सामने रखे बैठा रहा ।<sup>२८</sup>

किसी अत्यन्त सुखद और दुःखद अवसर की उपस्थिति पर परिवार के उस व्यक्ति की प्रायःयाद आती है जो असामाजिक मृत्यु के कारण उस सुखद अवसर को देखने की इच्छा से वंचित रहा हो । इस मनोवैज्ञानिक सत्य के व्यावहारिक रूप से पाठक तब साक्षात्कार करता है । जब वह दीपक को ऐसी स्थिति में देखता है । जब दीपक का एम. ए. का परिणाम निकला और वह अच्छे अंकों में उत्तीर्ण हो गया ।

सारे घर वालों तथा मित्रों ने उसे बधाई दी उसके बाद तभी न जाने किस भावावेश में मैं फूट फूट कर रो पड़ा । आँखों से आँसुओं की अविरलधारा वह निकली मुझे मेरे स्वर्गीय पिता की याद हो आई थी । आज वे होते तो कितने सुखी होते ।<sup>२९</sup>

दीपक को ज्योति के असामान्य व्यवहारों से उसमे अपराध कुंठा:यौन कुंठा:लाघव कुंठा आदि ग्रन्थियों का आभास हुआ और उसने मनोविश्लेषण से उसका उपचार करवाया ।

मनोविश्लेषकों के सब उपचार उसके भीतर ही लाघव कुंठा:, अपराध कुंठा:, यौन कुंठा: आदि को दूर करने की कोशिश में स्वयं दूर हट गये थे ।<sup>३०</sup>

मनोविश्लेषण सिद्धान्त के ज्ञान के कारण ही लेखक दीप्ति की मानसिक अव्यवस्था को पारिभाषिक शब्दावली में व्यक्त कर सका । दीप्ति के व्यवहार को देखकर कोई भी मनोविश्लेषण शास्त्री उसके रोग को इन्हीं संज्ञाओं से अभिहित करता । इतना ही नहीं उपन्यासकार चेतन और अचेतन मन के कार्य क्षेत्र एवं कार्यविधि से परिचित है । अतः दीपक के माध्यम से अचेतन की व्याख्या करता है । सचेत हुआ अचेतन पुरानी

स्मृतियों आप बीती जगबीती घटनाओं दीप्ति के साथ बिताए कतिपय मधुर क्षणों आदर्श और यथार्थ के अनन्त संघर्ष की कथाओं तथा अपनी असफल गृहस्थी का लेखा जोखा करता रहा ।<sup>३१</sup>

मानसिक विश्लेषण के द्वारा दीपक की जो मानसिक स्थिति प्रकट होती है । वह भी लेखक की मनोविज्ञान की सूक्ष्म पकड़ को उजागर करती है । यथा दीपक मानसिक विश्लेषण करता हुआ डायरी में लिखता है । झूठे आदर्शों और ढोंगी व्यवहारों के कारण मम्मी के सम्मुख मैंने भले ही दीप्ती को बहन कहा हो किन्तु मेरे अर्न्तमन ने सदैव उसे प्रिया के रूप में ही देखा और अपनाया है । उसके दिल में भी तो अभी मेरे लिए जगह है । ऐसा न होता तो अपना दर्द मेरी छाती में मुँह छिपाकर क्यों धो लेती काश वह भूल मैंने न की होती ।

भावना और बुद्धि का द्वन्द्व निरूपण कितना जीवन्त है ! मन कहता है छोड़ो भी । ये सब ढकोसले और ढोंग है । वह स्त्री है और मैं पुरुष हूँ । यही सत्य है । शेष कुछ नहीं बुद्धि ने विश्लेषण किया समाज स्त्री पुरुष के स्त्रीत्व और पुरुषत्व से ही बंधा हुआ नहीं है । नीति-अनीति, औचित्य-अनौचित्य, घरे और आवरण, सबका महत्त्व है समाज में । इस प्रकार सहगल मनोविज्ञान सम्मत मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुरूप सिद्धान्तों की पाष्ठाधिक शब्दावली का उपयुक्त उपयोग करते हुए अपने मनोविज्ञान के सूक्ष्म ज्ञान का परिचय देते हुए अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप छोड़ते हैं ।<sup>३२</sup>

## ❖ सम्प्रदाय निरपेक्ष व्यक्तित्व :

सहगलजी के अनेक उपन्यासों में इस विचार धारा को अभिव्यक्ति मिली है कि समाज के स्वस्थ विकास के लिए जाति-पाँति के बन्धनों को कम करना होगा, वर्ग भेद को मिटाना होगा, और विभिन्न सम्प्रदायों में सद्भाव स्थापित करना होगा । इसके लिए व्यावहारिक रूप यह है कि हमारा युवा वर्ग उँच-नीच के भेदभाव को मिटा कर अपनी पसन्द के जीवन साथी का चयन कर लें और परिणय बन्धन में बंध जाए ।

राँची में तथा कथित निम्न जाति की रानी और गाँव के जमींदार के बेटे सुधेश का अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न करवा कर लेखक ने समाज को अप्रत्यक्ष रूप से दिशा निर्देश देते हुए अपने साम्प्रदायिक सद्भाव को प्रकट किया है ।<sup>३३(अ)</sup>

‘गुरुलाधारे’ उपन्यास में अनेक ऐसे प्रसंगों का वर्णन उपलब्ध है, जो साम्प्रदायिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता के उदात्त गुणों को रेखांकित करते हैं । पीर करीमबख्श और भाई गुरुदत्ता का परस्पर विश्वास स्नेह सेवाभाव को ध्वनित करते हैं । लाहौर के काजी रूस्तमखाँ की पुत्री बीबी कौला थी वह मियाँ पीर के उपदेशों से इतनी प्रभावित थी कि पिता की इच्छा के विरुद्ध वह हजरत की खानकाह में ही समय व्यतीत करती थी । हजरतमियाँ पीर का गुरु हरगोविन्द से गहरा प्रेम था । दूसरी ओर काजी रूस्तमखाँ गुरु हरगोविन्द को अपना शत्रु समझता था । अपने पिता की शत्रुता के बावजूद बीबीकौला पवित्र जीवनयापन के लिए गुरु हरगोविन्द से इतनी प्रभावित थी कि उन्हीं के संरक्षण में अमृतसर में रहने लगी ।

मुसलिम महिला बीबी कौला और सिक्ख संतो में परस्पर आध्यात्मिक आकर्षण और आदरभाव साम्प्रदायिक सद्भाव का उत्कृष्ट निर्देशन है ।<sup>३३(ब)</sup>

सिक्ख इतिहास में किसी सिक्ख महिला को भी इतना आदरपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं । जितना कि मुसलिम बीबी कौला को प्राप्त है । कौला के शरीर

त्यागने पर गुरु हरगोविन्द ने उसका अमर स्मारक हरि मन्दिर के सरोवर के निकट कौला के नाम पर एक अन्य सरोवर बनवाया जिसे आज कल कौलसर कहते हैं। सूफी पीर करीमबक्श ने गुरु तेगबहादुर के एक भक्त भाई गुरु दित्ता को शरण देकर अत्यन्त आदर से उनकी सेवा करने का दायित्व अपने ऊपर लिया था। पीर को बादशाह औरंगजेब के कोप की भी परवाह नहीं थी।

जब औरंगजेब के खुफिया विभाग ने पीर के विरुद्ध बादशाह के कान भरे तो पीर को पकड़ लाने का हुक्म दिया गया। यह जानकर भाई गुरु दित्ता स्वयं ही वहाँ से चला जाना चाहता था। पर पीर करीम बक्श ने जाने नहीं दिया और कहा मिहरवान आप हमें इस आब ए हयात से महरूम न करें मेरी यह इल्तिजा है।<sup>३४</sup>

पीर करीमबक्श अपने शिष्यों में उपदेश देते मजहब लड़ने के लिए नहीं मिल बैठकर खुदा की जान पहचान पाने के लिए हैं। इतिहास-प्रसिद्ध पुरुषों, धार्मिक नेताओं और युग पुरुषों के जीवन की प्रेरक घटनाओं का उल्लेख करते हुए साम्प्रदायिक सद्भाव को उजागर करने में विश्वास रखने वाले उपन्यासकार का व्यक्तित्व निश्चित रूप से सम्प्रदाय निरपेक्ष व्यक्तित्व है।

### ❖ पर्यवेक्षण शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व :

व्यक्ति का व्यक्ति से, व्यक्ति का परिवार से, एक वर्ग का अन्य वर्गों से, होने वाले सम्बन्धों, टकराहटों आदि को प्रायः लेखक देखता परखता है और उन स्थितियों तथा उनसे उत्पन्न परिणामों पर विचार करता है। जिस लेखक में यह पर्यवेक्षण शक्ति जितनी गहरी एवं सूक्ष्म होगी उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक स्थितियों की समझ तथा पकड़ उतनी ही विश्वसनीय होगी।

इस दृष्टि से उपन्यासकार सहगलजी का व्यक्तित्व अत्यन्त सम्पन्न है । पंजाब से गुजरात प्रान्त के सौराष्ट्र प्रदेश में पहुँचने वाले दीपक को दोनों प्रान्तों के रीति रिवाजों, रहनसहन, खानपान और युवतियों के आचरण में गहरा अन्तर दिखाई दिया ।

सौराष्ट्र का सबसे प्रगतिशील नगर राजकोट है । आधुनिक फैशन तथा गुजराती रहन सहन का सुन्दर मिश्रण वहाँ देखने को मिलता है । लड़कियों में उत्तर भारत की लड़कियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता जागरूकता और प्रणय लालसा मौजूद है । शरारत उनकी नस नस में है तथा स्वनिर्वाचित वर पर वे घर में राज्य करती हैं ।

सौराष्ट्र में शारीरिक श्रम का कार्य पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक करती हैं । रेलवे स्टेशन पर तो मैं स्त्री कुली देख चुका था किन्तु विस्मय तो मुझे तब हुआ जब मैंने दो स्त्रियों को पीठ पर भारी बोरियाँ उठा उठा कर ट्रक में लादते देखा । <sup>३५(अ)</sup>

दीपक जिस मकान में किरायेदार के रूप में रहता है । उस मकान मालिक की लड़की ने जो लड़का अपने वर के रूप में पसंद किया है । वह हर छुट्टी के दिन घर आता है और सारा दिन लड़की के साथ एकान्त में स्वतंत्र विचरण करता है । दीपक देखता है अजीब प्रदेश है । भारती अपने भावी पति के साथ द्वार बन्द कर सारा दिन सोती है । माँ बाप नहीं टोकता । <sup>३५(ब)</sup>

दीपक के प्रति स्थानीय लड़की एवं शिष्या आकृष्ट है । यह तथ्य दीपक की मकान मालकिन पद्माबेन जानकर खुश है । अतः दीपक को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है । पर दीपक सरोज के माता पिता के दृष्टिकोण के प्रति सशंक्ति है । तब पद्माबेन कहती है माँ बाप का क्या मतलब ? यहाँ यह सब नहीं है । लड़के लड़की की पसन्द प्रमुख वस्तु है । मैं राजी कर लूँगी सरोज के माँ बाप को । <sup>३६</sup>



उत्तर भारत विशेषरूप से पंजाब में युवती को न ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त है और न ही कोई अर्धेड महिला किसी युवक युवती के प्रणय सम्बन्धों को पनपते देखकर प्रसन्न होती है और न ही उनके प्रणय सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने में सहायक होना चाहती है ।

दीपक का दोनों प्रान्तों की स्थितियों में इस दृष्टि से अन्तर को पहचानना लेखक की विलक्षण शक्ति का ठोस प्रमाण है ।

### ❖ शोधपरक व्यक्तित्व :

उपन्यासकार सहगलजी की शोधपरक दृष्टि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को रूपायित करती है । उन्होंने गुरु लाधा रे, उपन्यास की रचना करने के लिए गुरु तेगबहादुर के परिवर्ती जीवनकाल तथा औरंगजेब के शासनकाल की धार्मिक असहिष्णुता की पराकाष्ठा के काल से सम्बद्ध कितने ही ऐतिहासिक एवं धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन मनन के उपरान्त अपने लिए उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री जुटाई है ।

इसी प्रकार कश्मीर की कसक, उपन्यास में सन् १९६५ ई. के पाकिस्तानी आक्रमण तथा उस आक्रमण से उत्पन्न स्थितियों एवं कश्मीर सरकार द्वारा पोषित संकीर्ण साम्प्रदायिक नीतियों के विरूद्ध अल्पसंख्यक हिन्दुओं का सर्वोच्च न्यायलय के द्वार खटखटाना न्यायलय द्वारा किए गए फैसले को न मानने की हठधर्मिता दिखाने आदि के पीछे छुपे हुए कारणों की छानबीन करने के लिए किया गया श्रम उनके शोध परक व्यक्तित्व को प्रमाणित करता है । लेखक को सर्वाधिक शोधकार्य अन्ना पासवान और मानव छला गया उपन्यासों के लेखन के लिए करना पड़ा है । अन्ना पासवान का कथानक सत्रहवीं शती से सम्बद्ध है । उस समय भारत की केन्द्रीय शक्ति सम्राट शाहजहाँ के रूप में विद्यमान थीं । शाहजहाँ युद्ध में सैन्य संचालन के लिए स्वयं न जाकर अपने दो अत्यन्त विश्वस्त राजपूत

महाराजा ओर जोधपुर के महाराज गजसिंह और जयपुर के महाराज जयसिंह को भेजा करता था ।

शासन पर आरूढ़ होने से पूर्व शाहजहाँ का नाम सहजादा खुर्रम था । खुर्रम ने अपने पिता के प्रति विद्रोह किया तब जहांगीर की ओर से अन्य सेनापतियों के साथ महाराज जयसिंह ने भी युद्ध में भाग लिया और खुर्रम को परास्त किया । यह घटना इतिहास सम्मत है । इसी प्रकार खुर्रम के साथ दूसरा निर्णायक युद्ध बनारस के पास हुआ ।

वहाँ खुर्रम अपने भाई परवेज और महाराज जयसिंह की सेनाओं को परास्त करके विजय के अहंकार में महाराज गजसिंह को ललकारने की धृष्टता कर बैठा । अतः बुरी तरह पराजित हुआ । यह सम्पूर्ण घटना इतिहास अनुमोदित है । महाराज गजसिंहने जालौर दुर्ग को जीतने के बाद दक्षिण के मलिक अम्बर को परास्त किया । इस विजय का महत्त्व इसी से आँका जा सकता है कि इस विजय की खुशी में शाहजहाँ ने जोधपुर राज्य की पताका में लाल रंग की पट्टी डालने की अनुमति सहर्ष प्रदान की ।

ईरानी कलाकारों द्वारा निर्मित अजदहापैकर, मुगल शासन की ओर से जोधपुर राज्य को पुरस्कार रूप में दिया गया सम्मान चिन्ह है । जो अब भी जोधपुर में सुरक्षित है । मीणा जाति की अनारस बाई महाराज गजसिंह की प्रेयसी एवं रानी बनी और अन्ना पासवान की पदवी से सम्मानित की गई । अनारन बाई के मोती जड़े जूते आज भी जोधपुर दुर्ग के भीतर संग्रहालय में रखे हुए हैं । उपन्यासकार ने जोधपुर दुर्ग तथा संग्रहालय का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन किया और ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन किया ताकि अन्ना पासवान नामक ऐतिहासिक रोमाँस उपन्यास प्रणीत किया जा सके ।

‘मानव छला गया’ उपन्यास के लेखन के लिए उपन्यासकार ने स्कन्द पुराण तथा बृहन्नारदीय पुराण का अध्ययन किया । इतना ही नहीं सरस्वती नदी की वैदिक कथाएँ पढ़ने के लिए प्राचीन संस्कृत साहित्य का गहरा

अध्ययन किया। वृहन्नरदीय पुराण के सूक्ष्म अध्ययन से लेखक ने सरस्वती नदी के यात्रा पथ की सुदृढ़ आधार पर कल्पना की और पर्वतराज हिमालय की शिवालिक पर्वत श्रृंखला से पुण्य नदी सरस्वती की धारा का अम्बाला जिले के उत्तर पूर्व में अविरत होने का विवरण प्रस्तुत किया। प्राचीन भूगोल पर दृष्टि पात करें तो यह स्थान करनाल हिसार रोड पर स्थित सधौरा नामक कस्बे के पास है। वर्तमान थानेसर के पास स्थित मार्कण्डेय आश्रम के पास ही यह नदी बहती है। उर्पयुक्त पुराण की गाथा को उपजीव्य बनाया गया है। जो शोधपरक दृष्टि के कारण ही सम्भव हुआ है।

कुल मिलाकर प्रोफेसर डॉ. सहगलजी के उपन्यासों से ऐसा संघर्षशील व्यक्तित्व झाँकता प्रतीत होता है जो स्वनिर्मित जीवन की पीठिका में छुपे हुए संघर्ष के शतशः आयामों को उद्घाटित करता है। जो अपने कैरियर बनाने की लालसा को पालकर घोखे की नींव पर अपनी सफलता का प्रासाद खड़ा नहीं करना चाहता। जो प्रणयशील एवं संवेदनशील होता हुआ भी आदर्श के अत्यन्त झीने आवरण को विदीर्ण नहीं होने देता। युवकोचित दुर्बलताओं से ऊपर उठने के लिए स्वयं से संघर्षरत रहता है। जो मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से स्व और पर की सहज प्रतिक्रियाओं एवं मनोविकारों की तटस्थता से चीर-फाड़ करता है। जो अपनी पैनी पर्यवेक्षण शक्ति से प्रादेशिक परिवेशगत। रीति रिवाजगत भिन्नता को समझता है।

जो साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र भिन्नता में एकता की पुर्नस्थापना का प्रयास करता है और जो इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्राचीन ऐतिहासिक एवं धार्मिक ग्रन्थों का अवगाहन और स्थानों संग्रहालयों का सूक्ष्म अध्ययन करते हैं। अतः मनमोहन सहगल के उपन्यासों में से उनका बहुरंगी एवं बहु आयामी व्यक्तित्व उभरता है।

डॉ. मनमोहन सहगलजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं । वे एक लोकप्रिय अध्यापक और शोध निर्देशक हैं तथा स्वयं एक कर्मठ निष्ठावान् शोधार्थी भी हैं । उनके दस आलोचनात्मक शोध ग्रन्थ हैं । वे एक सफल अनुवादक और सम्पादक भी हैं ।

उनके अनुवाद एवं सम्पादन की बीस पुस्तकें छप चुकी हैं । उन्होंने श्री गुरु ग्रन्थ साहब की हिन्दी टीका तथा गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य को उपलब्ध करा कर जो ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया है । वही उनके जीवन की कृतकार्य करने में सक्षम हैं ।

हिन्दी में जिन्होंने ऐसा शोध कार्य किया है । वे अमर हो गए हैं । इन सबके साथ उनका एक उपन्यासकार रूप भी है । जो उनके सर्जक के विविध रंगों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है । यह एक जिज्ञासा एवं शोध का विषय हो सकता है कि शोधक कैसे उपन्यासकार बन जाता है और कैसे जीवन के सत्य को रसपूर्ण बना देता है ? डॉ. सहगलजी के सर्जक के इस पक्ष ने उनकी उपन्यास सृष्टि को शोधपूर्ण बनाया है और शोध एवं आलोचना को रसपूर्ण बनाया है । यह एक ऐसा पक्ष है । जो हिन्दी में बहुत कम मिलता है । इसलिए मैं डॉ. सहगलजी की सृजन प्रक्रिया पर गम्भीरता पूर्वक शोध कार्य करना चाहती हूँ ।

### ❖ कृतित्व परिचय :

डॉ. सहगल हिन्दी जगत में शोधक और समीक्षक के रूप में अधिक परिचित हैं किन्तु उतना ही श्रेष्ठ रूप में एक उपन्यास सर्जक का भी है । गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों दृष्टियों से उनका उपन्यासकार रूप हिन्दी साहित्य में एक विशेष स्थान का अधिकारी है । सन् १९६५ में रचित अपने प्रथम उपन्यास 'जिन्दगी और जिन्दगी' से लेकर 'नरमेध' तक अपनी औपन्यासिक यात्रा पूरी की है । डॉ. सहगल के उपन्यासों का कथा-फलक

इतना विस्तृत और सार्वभौमिक है कि उसमें अतीत और वर्तमान के झरोखों के माध्यम से स्वतन्त्र भारत की सभी प्रमुख सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं का स्वतः समाहार हो गया है ।

अब तक डॉ. मनमोहन सहगल के नौ उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं – ‘जिन्दगी और जिन्दगी’, जिन्दगी और आदमी’, ‘बदलती करवटें’, ‘कश्मीर की कसक’, ‘गुरु लाधा रे’, ‘मानव छला गया’, ‘एक और रक्तबीज’, ‘अन्ना पासवान’ एवं ‘नरमेध’ । डॉ. सहगल के उपन्यासों के सम्बन्ध में डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त का कहना है कि “उन्होंने हर उस क्षण को रूपायित करने का प्रयत्न किया है जिसे या तो लेखक ने स्वयं भोगा है अथवा जिसके विशिष्ट अस्तित्व सूत्र की कल्पना उन्होंने पात्रों में की है । इस प्रकार से सभी उपन्यास क्षण-क्षण से निर्मित होते उस मानवीय सत्य और विकासशील इतिहास के उद्घोषक हैं, जिसकी संकल्पना प्रत्येक लेखक की निजी आंकलन क्षमता पर निर्भर करती है ।”

डॉ. मनमोहन सहगल द्वारा लिखित ‘जिन्दगी और जिन्दगी’ (१९६५) नामक उपन्यास उनका प्रथम उपन्यास है जो दो खण्डों में विभाजित है । लेखक का यह प्रथम उपन्यास एक तरुण की भोगी हुई जिन्दगी का खुला दस्तावेज है, जिसमें साहित्य, मनोविज्ञान और काम-भावना का सुष्ठु समन्वय है । इसमें कहीं अन्तर्द्वन्द्व और बहिर्द्वन्द्व की झिलमिलाहट हैं तो कहीं आदर्शवाद और यथार्थवाद की टकराहट । पूरे उपन्यास को पढ़ने पर यह लगता है कि यह उपन्यास एक नवयुवक के मनोभावों की सच्ची कहानी है । उपन्यास का कथानक अत्यन्त सपाट है । इस उपन्यास का वस्तु सत्य यह है कि समाज में ऐसे लोगों की दुर्दशा है जो बाहर से आदर्शवादी होते हैं और भीतर से उत्कंट वासना की आग में जलते हैं ।

दूसरा उपन्यास ‘जिन्दगी और आदमी’ (१९६७) उनके आरम्भिक उपन्यास की कड़ी के रूप में देखा जा सकता है । उपन्यास का कथानक

एक कॉलेज के प्राध्यापक की रुमानी जिन्दगी और यथार्थवाद के बीच घटित होने वाले संघर्ष से आरम्भ हुता हुआ नागपुर, दिल्ली तथा गुजरात के राजकोट नगर के इर्द-गिर्द घूमता हुआ दिखाई देता है । यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है । इस उपन्यास में कामुकता का परिवेश एवं नारी से मात खाया नायक आदमकद होने की अपेक्षा झुक गया है ।

‘कश्मीर की कसक’ (१९७४) भारत विभाजन की समस्या, मुस्लिम सभ्यता, जातीयता, राजनीतिक षडयन्त्र, आरक्षण समस्या आदि को लेकर लिखा गया है । इसमें लेखक को दृष्टिकोण सामाजिक की अपेक्षा राजनीतिक आयाम का हो गया है । उपन्यासकार ने कश्मीर समस्या की दुखती रगों को पहचानकर उन पर वैचारिक धरातल पर चर्चा की है ।

‘बदलती करवटें’ (१९६७) पंजाब और हरियाणा को लेकर जातीयता, साम्प्रदायिक भेदभाव, अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक, राजनीति के षडयन्त्रों को उद्घाटित करता है । इसमें उपन्यासकार ने वैवाहिक समस्या को एक राष्ट्रीयता के बिन्दु पर सोचने की प्रेरणा दी है । अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को आधार बनाकर यह उपन्यास रचा गया है और उसी के परिप्रेक्ष्य में पंजाब हरियाणा के बंटवारे की राजनीति का विवेचन किया है ।

‘गुरु लाधा रे’ (१९७५) गुरु तेग बहादुर की शहीदी को लेकर लिखा गया उपन्यास है । उपन्यास में औरंगजेब के पक्ष के पात्र विवश और कठोर दोनों तरह के हैं और गुरु जी के पात्र नियतिवादी हैं जो अत्याचार सहते हैं और प्रतिकार नहीं करते । सारा उपन्यास अत्याचार और उसके विरोध की दो धाराओं में बहता है । उपन्यास यद्यपि ऐतिहासिक घटना पर आधारित है तथापि कल्पना से इसे करुणासिक्त आदर्श से संचालित किया गया है ।

‘मानव छला गया’ (१६७६) उपन्यास कल्पनात्मक है। परन्तु कल्पना बड़ी मधुर है। धरती के साधनामय लोगों को देवों ने छला है। ईर्ष्या के प्रतीक औरव और विवेक की प्रतीक सरस्वती को विष्णु भगवान ने देवलोक के भोग-विलास को अक्षुण्ण बनाए रखने के कारण धरती पर भेज दिया है। वैज्ञानिक विधियों से देवों ने उत्पादन बढ़ाकर श्रमिकों एवं पूँजीपतियों में संघर्ष करवा दिया। इस तरह देवता सुखोपभोग में लिप्त रहे और धरती के लोग ईर्ष्या, द्वेष, पाप-पुण्य और संघर्ष में धकेले गए। स्वार्थी देवों ने निष्पाप मानवों को छल लिया। पूरे उपन्यास में एक प्रश्न उठता है कि क्या मानव लोक सरस्वती के बिना जी सकता है। बौद्धिकता के बिना मानव मूल्यों की महत्ता क्या है? इस उपन्यास की संस्कृत निष्ठ शैली कथानक के अनुकूल है।

‘एक और रक्तबीज’ (१६८४) बिहार राज्य की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों को विश्लेषित करती है किन्तु पूरे देश का यही युग सत्य है। सरकारी नौकरियाँ बिकने लगी हैं। लोक-सेवा आयोग में भाई-मतीजावाद प्रमुख हो गया स्पष्ट होने लगता है। इसके साथ ही विश्वविद्यालय की राजनीति, जातीयता और साम्प्रदायिकता का यथार्थ चित्रण किया गया है। विश्वविद्यालय की राजनीति का जन-जीवन, सभाओं का आयोजन, राजनीतिक दलों का सहयोग, विपक्षी दलों को मात देने वाली नीतियाँ, विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रति लापरवाही, रैली, नारे, पोस्टरबाजी का यथार्थ अंकन हुआ है।

‘अन्ना पासवान’ (१६८६) लेखक का एक नवीनतम प्रयोग है जिसे ऐतिहासिक रोमांस उपन्यासों की श्रृंखला में रखा जा सकता है। इसमें जोधपुर के राजा गजसिंह तथा उसकी प्रेमिका अनारन बाई की प्रेम कथा को तथा नागौर के नवाग खिजखां को आधार बनाया गया है। उपन्यास का

कथ्य सामन्तीय यथार्थ-बोध पर आधारित है तथा इतिहास एवं कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण है ।

‘नरमेध’ (१९६२) उपन्यास कश्मीर समस्या पर आधारित है । कश्मीरी विस्थापितों का दर्द, अपनी मिट्टी, परिजनों का विद्रोह, अपने या पराए मुल्क के बशिंदों के प्रति अलगाव का भाव – सबका चित्रण नरमेध में किया गया है । चार खण्डों वाली इस औपन्यासिक कृति के ‘चण्डीगढ खण्ड’ में इस आधुनिक नगर में कश्मीरी विस्थापितों की मुश्किलों के बयान के अलावा नरेन्द्र-प्रवीण के प्यार और घाटों में अल्पसंख्यकों पर अलगाववादियों के अत्याचार को फ्लैश बैक में दिखाया गया है । ‘इस्लामाबाद खण्ड’ में उस मुल्क के सियासतदानों और खूफिया एजेंसियों के लोगों की करतूतों का जिक्र है । ‘श्रीनगर खण्ड’ में उन हालात व वारदातों का उल्लेख है जिसमें घाटी के निवासियों के आपसी भाईचारे को खत्म कर दिया गया है ) ‘दिल्ली खण्ड’ में दिखाया गया है कि कितनी उम्मीदें लिए कश्मीरी विस्थापित प्रधानमन्त्री से मिलने जाते हैं और किस तरह उनके विश्वास धूल में मिला दिए जाते हैं ।

डॉ. मनमोहन सहगलजी के अब तक निम्नलिखित उपन्यास एवं अन्य रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं । जो इस प्रकार है ।

- (१) जिन्दगी और जिन्दगी (१९६५)
- (२) जिन्दगी और आदमी (१९६६)
- (३) बदलती करवटें (१९६७)
- (४) कश्मीर की कसक (१९७३)
- (५) गुरु लाधा रे (१९७५)
- (६) मानव छला गया (१९७९)
- (७) एक और रक्तबीज (१९८५)
- (८) अन्नापासवान (१९८६)



- (९) नरमेध
- (१०) घटता बढ़ता चाँद
- (११) अथ कॉलेज कथा (२००२)
- (१२) समझौते से पहले (२००३)
- (१३) हिन्दी राम काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन (२००२)
- (१४) मनमोहन सहगल रचनावली भाग १ (२००४)
- (१५) मनमोहन सहगल रचनावली भाग २ (२००४)
- (१६) मनमोहन सहगल रचनावली भाग ३ (२००४)
- (१७) कालासच (२००६)

लेखक ने अपनी सृजन प्रक्रिया के सम्बन्ध में 'मैं और मेरी रचना', शीर्षक लेख तथा प्रोफेसर कृष्णकुमार बंडियाल के इन्टरव्यूव डॉ. सहगलजी अंतरंग साहित्यिक परिचय में विस्तार से कुछ बातें कही हैं कि वह प्रेरणा कहाँ से प्राप्त करती है । कथा कैसे रची जाती है । पात्र कैसे रूप लेते हैं और निर्धारित रूप को भंगकर कैसे स्वतंत्र बन जाते हैं । शिल्प के नये प्रयोग किस प्रकार किए हैं और किस प्रकार पात्रानुकूल भाषा की सृष्टि करते चलते हैं । लेखक के ये विचार उसके रचना कर्म को समझने में सहायक होते हैं । किन्तु रचना से गुजर कर हम लेखक के ऐसे विचारों की परीक्षा कर सकते हैं । बल्कि उसके सम्पूर्ण रचना बिम्ब का मूल्यांकन कर सकते हैं ।

“जिन्दगी और जिन्दगी” लेखक की पहली कृति होने पर भी उसमें यथार्थ जीवन का सफल अंकन हुआ है । कथा दो खण्डों में विभक्त है । पहले खण्ड दीपक की प्रतिकूल परिस्थितियों में एम. ए. उत्तीर्ण करने की कथा है । लेकिन साथ में युवा दीपक की शिष्या दीप्तिसे प्रेम कथा भी है । जिसे बड़ी कुशलता एवं सावधानी से बुना गया है । दूसरे खंड में दीपक के जीवन में स्थिर होने, नौकरी लगने तथा विवाह आदि की कथा

है । लेखक के शिल्प की विशेषता यह है कि उसने निम्न मध्यम परिवार के नवयुवक उसके आदर्श एवं जीवन के यथार्थ के द्वन्द्व एवं तनाव को अत्यन्त यथार्थपूर्ण घटनाओं तथा अन्तःसंघर्ष से प्रस्तुत कर दिया है ।

इस उपन्यास की अगली कड़ी के रूप में *“जिन्दगी और आदमी”* उपन्यास का प्रकाशन हुआ । इस उपन्यास की विशिष्टता यह है कि पहले उपन्यास के पात्र ही इसके पात्र हैं और वे अपनी भावी जिन्दगी इसमें जीते हैं । दीपक, ज्योति, दीप्ति, उसका पति आदि के तनावों के बीच दीपक के राजकोट में अध्यापक बनने से कथा का विकास होता है और गुजराती समाज के अंतरंग जीवन का उद्घाटन होता है । दीपक और सरोज का प्रेम, पद्मावेन और भारती कॉलेज का उत्सव आदि के माध्यम से कथा नये आयामों का स्पर्श करती है । परन्तु दीपक की कथा का अन्त हताशा में ही होता है और पाठक उसके प्रति संवेदनशील हो उठता है ।

डॉ. सहगलजी का तीसरा उपन्यास *“बदलती करवटे”* शैली की दृष्टि से अधिक परिपक्व है । इसलिए वह अधिक प्रभावित ही नहीं करता बल्कि उसकी प्रासंगिकता आज भी बनी है । लेखक इस उपन्यास में कर्मचन्द महिन्दर तथा इन्दर रानी की कथाओं से हिन्दु सिक्ख एकता तथा भाषा के आधार पर पंजाब हरियाणा अलग अलग राज्य बनने के प्रश्न को केन्द्र में रखता है । जो वर्तमान परिवेशमें और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है । उपन्यासकार ने इस उपन्यास के द्वारा हिन्दु सिक्ख में एकता एवं प्रेम सौहार्द की स्थापना करते हुए इसे नष्ट करने वाली शक्तियों को निरावृत्त किया है और उनकी कटु आलोचना की है ।

लेखक की राष्ट्रीय चेतना *“कश्मीर की कसक”*, में नये संदर्भों तथा नये आयामों के साथ सशक्त रूप में अभिव्यक्ति हुई है । यह उपन्यास आक्रमण, जम्बू, श्रीनगर, पुनर्वास, तथा उपसंहार शीर्षक से पाँच अध्यायों में विभक्त है और कश्मीर समस्या को उसके राष्ट्रीय एवं मानवीय पक्षों के

साथ जीवन्तता तथा प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने में सफल हुआ है । यह उपन्यास सितम्बर १९६५ में भारत पर हुए पाक आक्रमण की पृष्ठभूमि से आरम्भ होता है । परन्तु यह १९४७ से १९७० तक के जम्मू के जनजीवन का प्रामाणिक दस्तावेज बन गया है । लेखक ने चरणदास, प्रेमो, चंदशेखर, रचनी, कैप्टिन, रजनीश, महमूद आदि पात्रों से पाक आक्रमण के परिणाम स्वरूप हिन्दु परिवारों के बरबाद होने, हिन्दु मुस्लिम समस्या, शासकों की मुस्लिम भक्ति नीति तथा हिन्दुओं से भेदभाव, शरणार्थी जीवन एवं पुनर्वास ।

हिन्दु स्त्रियों पर बलात्कार एवं अत्याचार आदि को बड़े मार्मिक रूप में उद्घाटित किया है । लेखक की खुशी यह है कि उसने अपनी तटस्थता तथा मानवीय दृष्टिकोण को छूटने नहीं दिया है ।

और सभी स्थितियों की वास्तविकता के साथ चित्रित किया है । शिल्प की दृष्टि से कथा की बुनावट यथार्थ एवं मनोविज्ञान पर टिकी है । संयोग और नाटकीयता का भी यत्रतत्र उपयोग हुआ है । समग्रतः कश्मीर की कसक उपन्यास मानवीय त्रासदी को जीवन्त और पाठक को उद्बिग्न बनाता है । जिसके कारण सदैव पठनीय बना रहेगा ।

“गुरु लाधा रे” उपन्यास इसके बाद प्रकाशित हुआ जो डॉ. सहगलजी के मध्यकालीन साहित्य के विशेषज्ञ होने तथा उनके साम्प्रदायिक सद्भाव का मूर्तिमान रूप है । इस उपन्यास में गुरु तेगबहादुर के जीवन उनके क्रिया कलापों, विचारों सिद्धान्तों आदि को औपन्यासिक रूप में, पूरी ऐतिहासिकता के साथ जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है । इतिहास की कथा को जितना आसान है । उतना ही कठिन भी है । उपन्यासकार ने उस कठिनाई पर विजय पाई है और इतिहास की घटनाओं, वातावरण आदि को शब्दों में जीवित कर दिया है । इसका यह अर्थ नहीं है कि लेखक ने

कल्पना का प्रयोग नहीं किया है । किन्तु कल्पना इतिहास की अनुगामिनी है । इतिहास को पुष्ट करती है ।

उपन्यास में गुरु के बलिदान की कथा भाई गुरु दित्ता के द्वारा प्रस्तुत की जाती है । लेकिन यह रचनाकार के शिल्प का वैशिष्ट्य है कि कथा में रोचकता, उत्सुकता तथा प्रभविष्णुता निरन्तर विद्यमान रहती है । गुरु लाधा रे, गुरु तेगबहादुर के बलिदान का जीवन्त इतिहास है । जो उनके चरित्र की पवित्रता एवं शुभता को प्रस्तुत करने के साथ औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता कूरता एवं अत्याचार को भी वास्तविकता के साथ उद्घाटित करता है ।

यह उपन्यास भविष्य में भी पाठकों बीच प्रिय बना रहेगा और उन्हें सद्विचारों के लिए प्रेरित करता रहेगा है ।

“मानव छला गया”, डॉ. सहगलजी का “गुरु लाधा रे” के बाद प्रकाशित हुआ । इसमें लेखक इतिहास को लाँघकर पुराणों तक पहुँचता है और स्कन्द पुराण के पौराणिक आख्यान की कथा को उपन्यास का आधार बनाता है । उपन्यास में काव्य, नाटक आदि की तुलना में मिथक कथाओं का प्रयोग बहुत कम हुआ है । क्योंकि उपन्यास सामयिक यथार्थ के प्रति संवेदनशील होता है तथा मिथक की वर्तमान संगति को खोजना भी आवश्यक होता है ।

लेकिन डॉ. सहगलजी ने इन बाधाओं को जीत कर उपन्यास को मानव की मूलभूत समस्याओं से सम्बद्ध कर दिया है । इसी कारण उपन्यास का जन्म लेखक के चिन्तन से होता है । उपन्यास के आरम्भ में कल्पना शीर्षक के अन्तर्गत लेखक उन विचारों की झलक मिल जाती है । जिन्होंने इस उपन्यास को जन्म दिया है ।

उपन्यासकार का विचार है कि देवताओं ने सरस्वती के रूप में बुद्धि, तर्कपूर्ण उलझनें, ईर्ष्या, द्वेष, पाप और मोह को अग्नि मानवलोक को

देकर मनुष्य के सरल साधनामय जीवन को जटिल और विषाक्त बना दिया और स्वयं इनसे मुक्त होकर निर्द्वन्द्व विलास में लीन हो गए । यही बीजभाव उपन्यास की रचना करता है । लेखक पुराण से कथा चुनता है और पौराणिक जीवन को साकार करता हुआ, मनुष्य की शाश्वत समस्याओं की जटिलता का रहस्य खोलता है ।

लेखक का विचार है कि देवलोक की लक्ष्मी आश्रित जैसी अवस्था, तर्क की उलझनों तथा आपसी ईर्ष्या द्वेष से मानव सदा छला जाता रहा है । उपन्यास पौराणिक एवं कथारस से परिपूर्ण और लेखक ने देवलोक तथा मनुष्य लोक दोनों की कथाओं को इतना रसपूर्ण बना दिया कि पाठक वर्तमान को भूलकर कथाकाल में जीने लगता है ।

लेखक की यह भी विशेषता है कि उसने मानव मन की उलझनों, द्वन्द्वों तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं के सूत्र पुरा कथाओं में तलाश करने का सफल प्रयत्न किया है । सरस्वती, औरव, मार्कण्डेय, पूतकर्म, अपर्णा, सुबन्धु, सुमुखी आदि पात्रों ने पुराण और आधुनिक मनुष्य को संयुक्त कर दिया है और इस प्रकार उपन्यास अतीत के साथ वर्तमान तथा भविष्य के मानव मन को अभिव्यक्त करते हुए अर्थवाद बना देता है ।

“एक और रक्त बीज”, उपन्यास में डॉ. सहगलजी ने आज की एक महत्त्वपूर्ण समस्या आरक्षण नीति को केन्द्र में रखकर लिखा गया है । अभी कुछ वर्षों से महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार आदि प्रान्तों में शिक्षा एवं रोजगार में सरकार की आरक्षण नीति को लेकर युवक बराबर आन्दोलन करते आ रहे हैं । इस आन्दोलन से छात्र समुदाय दो वर्गों में बट गया है सवर्ण जातियों के छात्र एवं युवक जो जाति, धर्म आदि के आधार पर शिक्षा जगत में आरक्षण के विरुद्ध हैं और आर्थिक स्थिति को आरक्षण का आधार बनाना चाहते हैं । दूसरा वर्ग उन जातियों का है जिन्हें नीति से सुविधाएँ प्राप्त हो रहीं हैं । डॉ. सहगलजी ने इसी विवादास्पद, किन्तु देश समाज की

दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, समस्या को केन्द्र में रखकर इस उपन्यास को लिखने का साहस किया है। साहस इसलिए कि यह एक ऐसा प्रश्न है जिसके सामने आमने समाज दो टुकड़ों में बँट गया है और हिंसक मुठभेड़ों की सम्भावनाएँ ही नहीं जन्मीं हैं, बल्कि रक्त पात की घटनाएँ हो चुकीं हैं। ऐसी स्थिति में रचनाकार के लिए जिस संतुलन, विवेक पूर्ण चित्रण एवं समाधान के लिए अपनी जो दृष्टि बनानी पड़ती है। वह अत्यन्त कठिन साधना से ही हो पाता है। असल में लेखक सम्पूर्ण समाज का होता है। वह समाज के लिए प्रतिबद्ध होता है। किन्तु किसी एक वर्ग, जाति या धर्म के प्रति उसकी प्रतिबद्धता न केवल खतरनाक होती है। अपितु उसे लेखक के धर्म से भी च्युत कर देती है। डॉ. सहगलजी निश्चय ही पूरी ईमानदारी के साथ लेखकीय तटस्थता एवं संतुलित विवेक को कायम रख सके हैं और सभी पात्रों को उनकी स्थिति कर्म आदि के अनुरूप उनकी सहानुभूति सद्भाव प्राप्त हो सका है। उपन्यास की कथा राँची विश्वविद्यालय के छात्रों तथा आसपास के इलाके से राँची पढ़ने आने वाले विद्यार्थियों तथा उनके परिवारों की है।

कथा का प्रारम्भ कथावाचक के राँची विश्वविद्यालय में पीएच.डी. की मौखिक परीक्षा लेने आने से होता है। आरक्षण विरोधी छात्र प्रशासकीय कार्यालय में आग लगा देते हैं और शाम को कथावाचक (प्रोफेसर जो शायद लेखक स्वयं है, लेकिन जो धीरे धीरे कथा मंच से अदृश्य हो जाता है और कथा तृतीय पुरुष, पद्धति से प्रस्तुत की जाती है)। तथा अन्य अध्यापकों की अंतरंगगोष्ठी में इस विवादास्पद आरक्षण नीति पर विचार विमर्श होता है। इस बीच प्रोफेसर मिश्र के कुछ प्रिय छात्र गिरफ्तार हो जाते हैं और वे कथा वाचक को साथ ले जाकर वकील के पास जाते हैं। जिससे प्रातः छात्रों को जमानत पर छुड़वाया जा सके तथा बाद में कोतवाली जाते हैं। जिससे हिरासत में लिए छात्रों को कोई कष्ट न हो।

प्रो. मिश्रजी कथावाचक को तर्क देते हैं कि जातिगत आरक्षण कुंठाका कारण बनता है। आरक्षण आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को मिलना चाहिए तथा वह भी केवल नियुक्ति में, उन्नति में नहीं। वहाँ योग्यता एवं कार्य दक्षता को ही महत्त्व दिया जाना चाहिए।

उपन्यासकार कथा का विस्तार करता है। नये पात्रों का प्रादुर्भाव होता है तथा उनसे सम्बन्धित प्रसंग तथा घटनाएँ जन्म लेती है। राँची के पड़ोस के गाँव का एक छात्र चतुर्भुज है। जो निर्धन ब्राह्मण परिवार में पैदा हुआ है। परन्तु ब्राह्मण होने से अभिशप्त है। दूसरा छात्र किरण है। जो आरक्षण पाने वाले हेडमास्टर पिता का पुत्र है।

तीसरा छात्र सुधेश है। जो गाँव के भूतपूर्व जमीनदार चौधरी का पुत्र है। एक छात्रा रानी है, जो कोरी टोले के बी.डी.ओ. की बेटी है। इन चार पात्रों से कथा आगे बढ़ती है। ये चारों एक ही स्कूल तथा बाद में एक ही कॉलेज में पढ़ते हैं। सुधेश और चतुर्भुज सवर्ण हैं तथा किरण एवं रानी हरिजन कोरी टोले के चतुर्भुज तथा सुधेश रानी के निकट आना चाहते हैं। वह उनके आकर्षण का केन्द्र है, चतुर्भुज ब्राह्मण है, किन्तु निर्धनता उसे पीड़ित करती है और वह परम्परागत पुरोहित का काम छोड़कर अन्य कार्य करना चाहता है। इस कारण मार्क्स के विचारों का समर्थक एवं व्यवस्था विरोधी है। इसी बीच कॉलेज में चुनाव होते हैं और किरण सुधेश मारपीट में घायल होते हैं। परन्तु इनकी चारों की टोली जीतकर आती है।

उपन्यासकार ने इस घटना का कथा के विकास के लिए बड़ी रोचकता तथा वैज्ञानिकताका उपयोग किया है। घायल सुधेश की रानी सेवा करती है और जाति भेद होने पर भी दोनों निकट आते हैं। सुधेश फिर रक्षा करता है और दोनों प्रेम सूत्र में बंध जाते हैं। लेकिन रानी में द्वन्द्व उभरता है कि क्या जातीय बन्धन के कारण सुधेश उसकी प्रेमाँजलि ठुकरा

देगा ? कथा का यह प्रसंग उत्सुकता, तनाव, रोचकता को उत्पन्न करता है तथा जातिगत द्वन्द्व की संभावनाएँ पैदा होने पर द्वार खुलता है और कथा मंच का विस्तार होता है । राज्यपाल प्रकट में छात्रों को आश्वासन देते हैं किन्तु शिक्षामंत्री को आन्दोलन सख्ती से दबाने का निर्देश देते हैं । तभी भारतीय क्रान्तिकारी परिषद का महा सचिव सुधेश से मिलता है और अराजकता उत्पन्न करके जन सहयोग प्राप्त करने का प्रस्ताव करता है ।

इस पर छात्र बँट जाते हैं और सत्येन्द्र बाहरी हस्ताक्षेप का विरोध करते हुए गाँव गाँव में प्रचार करता है । इसके उपरांत मित्रवर का प्रसंग आता है और वह चतुर्भुज एवं सुधेश को क्रान्तिकारी परिषद से दूर रहने नौजवान सभा को निकट लाने का तथा गाँव गाँव जाकर यह प्रचार करने का परामर्श देता है कि आरक्षण जाति से न होकर जरूरतमंदी के आधार पर हो । इस प्रकार लेखक कथा का विस्तार करता है । नये पात्रों को प्रविष्ट करते हुए समस्या को विभिन्न दिशाओं में फैलाता चलता है ।

कथाकार अब क्रान्तिकारी परिषद की सामाजिक गतिविधियों, क्रियाकलापों को निरावृत्त करता है कि कैसे यह यौन-तृप्ति एवं नशेबाजी का अड्डा बना हुआ है । कुमार देव इसे जनजागृति का मंच बनाना चाहता है और आन्दोलन तेज होता है । छात्र गिरफ्तार होते हैं और उधर पटना में भी आन्दोलन भड़क उठता है । कुमारदेव एक की रेली में प्रकट होता है और आरक्षण नीति का विरोध करता है । गोली चलती है । कफर्यू लगता है और मुख्यमंत्री की कार से एक युवती घायल होती है । इससे और आग भड़कती है और आगजनी थानेपर भीड़ का आक्रमण, गिरफ्तारियाँ, मौत जैसी अनेक घटनाएँ होती हैं । किन्तु कुमारदेव फरार हो जाता है । लेकिन भेदिए उसे गिरफ्तार करा देते हैं । इस प्रकार कथा तेजी से विकसित होती है और आन्दोलन हिंसक रूप ले लेता है । यह ऐसा यथार्थ है जिसे कथाकार ने बड़ी जीवन्तता से उद्घाटित किया है ।



कथाकार अब दृश्य परिवर्तन करता है । नगर से कथा गाँव की ओर उन्मुख होती है और नये प्रसंग, नयी घटनाएँ घटित होती हैं । सत्येन्द्र जमानत पर छूटकर गाँव पहुँचता है और वह अपने मित्रों के साथ सुधेश की जवान बहिन सरला के साथ सामूहिक बलात्कार कर उसकी हत्या कर देते हैं । सुधेश, चतुर्भुज, किरण भी गाँव पहुँचे हैं और सत्येन्द्र गुट के लोगों की पिटाई करते हैं । गाँव के खेतिहर और जमीनदार में ठन जाती है । किन्तु गोपाल का पिता मुखिया सभी चौधरी के साथ हैं । क्योंकि गाँव की बेटी से बलात्कार असहनीय है । इसके उपरांत अमर सिंह पर लठैतों के आक्रमण । मुखिया के बेटे की पिटाई और मुखिया का फायर करना सत्येन्द्रको सजा हो जाती है । जो गाँव के जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती है ।

नगर की कथा चरम विकास के बाद अब उतार पर आती है । सुधेश और चतुर्भुज अपने संरक्षक मित्र वर्ग से परामर्श कर के आन्दोलन वापस लेते हैं और राजनीतिज्ञों से स्वयं अलग रखने की घोषणा करते हैं । विश्वविद्यालय खुल जाते हैं और छात्र दल विचार विमर्श करके माँगपत्र कुलपति को देते हैं । सभी का मत है कि आरक्षण आर्थिक अभाव पर हो, जातिगत नहीं । हरिजन टोला और कोरी टोला किरण के विचारों से असहमत हैं और उसका पिता बी.डी.ओ. भी, बी.डी.ओ. हेडमास्टर से मिलता है और रानी का किरण से विवाह का प्रस्ताव करता है । उसका विचार है कि विवाह जाति बिरादरी में ही होना चाहिए ।

हेडमास्टर रानी के विचारों का है कि मनुष्य को मनुष्य पहले होना है, जातिवर्ग ऊँच नीच तो बाद की चीज है ।

कथा अब तनाव संघर्ष के उपरांत समाधान की ओर बढ़ती है । उपाधि समारोह में डॉ. करसनजी अपने दीक्षान्त भाषण में मनुष्य बनने, युवा शक्ति को राजनीति से दूर रहने तथा आस्थावादी बनने का सत्परामर्श देते

हैं और हेडमास्टर वहाँ आकर रानी और सुधेश का विवाह करा देता है । रानी का विवाह उसके पिता की जानकारी के बिना करवा देना कुछ अस्वाभाविक सा लगता है । लेकिन सुधेश के पिता को बताने पर हरिजन लड़की से शादी करने पर चक्कर आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक लगता है । यह विवाह अत्यन्त रंग लाता है और सुधेश के पिटने रानी को घर में बन्द करने, पुलिस द्वारा उसे मुक्त कराने आदि की घटनाएँ सामने आती हैं । लेखक गाँव के रंग मंचपर कुछ और भी घटनाओं को प्रस्तुत करता है । फसल काटने के प्रसंग में ग्रामीण और शहरी मजदूरों में झगड़ा, झोपड़ियों का जलना, चौधरी द्वारा सहायता आदि प्रसंग कुछ अनावश्यक से हैं, क्योंकि मुख्य कथा के विकास में इनका योगदान नगण्य ही है ।

लेखक अब पुना, पटना शहर की कथा को उठाता है । सुधेश, रानी, चतुर्भुज आदि युवा चेतना की दिशा देने के लिए विचार करते हैं । सुधेश भाषण देता है और शिक्षा को राजनीति से मुक्त करने तथा आरक्षण आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को देने की माँग रखता है । इसके उपरांत कथाकार ने कुछ संयोगपूर्ण घटनाएँ दी हैं । हर मंदिर साहब में सुधेश को सरला मिलती है । जो सिक्ख माँ बाप की बेटी बनी हुई है । चतुर्भुज सरला से विवाह करता है । लेकिन सरला का मिलना अलग रंग लाता है । सत्येन्द्र के परिवार वाले मुँह खोलने पर सरला को धमकी देते हैं, किन्तु कुमारदेव तो सुधेश की हत्या ही करा देता है । कथा का यह दुःखद अन्त है । परन्तु प्रेरणादायक भी । क्योंकि उसकी हत्या से ऐसा रक्तबीज पैदा होता है । जो बिहार में लाखों उत्तराधिकारी उत्पन्न करता है ।

सुधेश के साथी उसके मार्ग पर चलने का संकल्प लेते हैं और भेदभाव रहित तथा भ्रष्टाचार विहीन शिक्षा व्यवस्था बनाते हुए, नवीन जीवन शक्ति को उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा लेते हैं । रानी सुधेश की संतान को भावी नेतृत्व के लिए तैयार करने में लग जाती है । इस कथा प्रसंग एवं

उसकी घटनावली से स्पष्ट है कि रक्तबीज अपने समय का सत्य है । जो यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक घटनाओं से प्रस्तुत किया गया है । यह कथाकार का वैशिष्ट्य है कि उसने आरक्षण जैसी ज्वलन्त समस्या को उठाया है और जीवन्तता एवं सार्थकता के साथ उसे औपन्यासिक कलेवर प्रदान किया है । उपन्यास का कथा विन्यास स्वाभाविक, रोचक एवं आकर्षक है तथा पाठक अन्त तक उत्सुकता से पढ़ता रहता है । इसमें पाठक को बाँधे रखने की शक्ति ही नहीं है । बल्कि वह उसे समस्या के प्रति सोचने समझने को विवश भी करती है ।

लेखक देशप्रेम, राष्ट्रीय चेतना तथा भारतीय मनोभावनाओं की समस्या को राष्ट्रीय संदर्भ में देखने का अवसर देती है तथा राजनीतिज्ञों, राजनेताओं के स्वार्थ को उजागर करती है । यह समाज और देश के विकास एवं-कल्याण के लिए आवश्यक है कि आरक्षण नीति को शुद्ध राजनीतिक स्वार्थों से मुक्त किया जाय और उसका लाभ निर्धन व्यक्तियों को दिया जाय । यह नीति राष्ट्र के हित में है और यह भी देश हित में है कि युवा शक्ति स्वतंत्र चेतना बने और स्वयंको राजनेताओं के चंगुल से मुक्त करे । रक्त बीज उपन्यास यही संदेश देता है और लेखक इन्हीं विचारों के विकसित एवं स्थापित होने की कामना करता है । हम चाहते हैं कि लेखक का यह आशावाद सफल हो और देश सही दिशा में कदम रखे ।

### ❖ 'काला सच' उपन्यास :

सन् २००६ में प्रकाशित हुआ १६० पृष्ठों का ऐतिहासिक उपन्यास 'काला सच' मनमोहन सहगल का अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है, जो इतिहास के कठोर सत्य को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है ।

उपन्यास का आरंभ भारत के पश्चिमी सागर तट पर समृद्धि और संस्कार की कथा कहते पाटप राज्य से होता है जिसका राजा करणदेव

सुन्दरता का पुजारी और विलासिता का दास था । उसके महलों में जब-तब पर्वोत्सव मनाए जाते और रास, गरबा, दांडिया आदि की धूम मचती । उसकी रानी कमला अपूर्व सुन्दरी थी, जिसको पाकर राजा अपने भाग्य की सराना किए बिना नहीं रहता । पाटण एक शांत, समृद्ध और स्वतंत्र राज्य था यहाँ सुखी प्रजा, संतुष्ट कर्मचारी, उदार राजा और लक्ष्मी सी पटरानी थी । मंत्रियों में कभी अलाउद्दीन खिल्जी के भारत में बढ़ते चरणों की चर्चा से दुःख की एक रेखा मन-मस्तिष्क को कुण्ठित करती, परंतु देश के इस उपेक्षित कोने तक कौन आएगा और क्या लेने आएगा यही सोचकर राजा-प्रजा सब आघात की चिंता से मुक्त बने रहना चाहते थे । मन बहलाने के लिए नृत्य-गान चलता रहता था । श्रावणी पूर्णिमा हो या कार्तिकी अमावस, स्वयं महाराज दांडिया के मंच पर उतर कर महलों की सुहागिनों और राज-परिवार की महिलाओं के साथ दंड बजाने में रुचि लेते थे । राजा-प्रासाद में राज-रानी, मंत्रियों, अधिकारियों, कर्मचारियों की पत्नियाँ-बेटियाँ और बहुएँ, सब गरबा खेलने की दीवानी होती हैं । गरबा के बाद दांडिया खेला जाने लगा । महाराज ठेठ काठियावाड़ी पोषाक पहन कर मंच पर आए । एक तरफ पुरुष और दूसरी तरफ महिला खिलाड़ियों ने हाथों में रंगीन दंडों को लेकर प्रवेश किया । महिलाओं में महारानी कमलादेवी के अतिरिक्त गृह-मंत्री माधव की रूपवती पत्नी रूप सुन्दरी, दीवान की भार्या चन्द्रिका, सेनापति की सहधर्मिणी दामिनी और प्रधान-मंत्री की पत्नी आहिल्या । पुरुषों में भी मंत्री माधव के अतिरिक्त अन्य सभी शासनाधिकारी मौजूद थे । मंत्री माधव राज्य के किसी महत्वपूर्ण कार्य से दूर कहीं अन्य राज्य में गया था । अचानक रूपसुन्दरी चक्रावृत्ति में घूमती हुई महाराज के सामने आ गई । महाराज की दृष्टि तो उठी, तो उठी ही रह गई । दांडिया समाप्त होने पर रूप सुन्दरी के वहाँ से जाने के पश्चात् महाराज व्यथित हो गए । महारानी को पता लगने पर अपने पति पर

एकाधिकार बनाए रखने के लिए वह उन्हें अस्थायी यौन-संबंध की स्वीकृति दे देती है । महाराज पतिव्रता रूपसुंदरी के यहाँ पहुँच मंत्री माधव को मारने की धमकी देकर बलात् उसके शारीरिक सतीत्व को भंग कर देते हैं । अपने पति की जीवन रक्ष के लिए अपने को दाँव पर लगाने वाली रूपसुंदरी राजा की कमर से कटार छीन कर अपने आप को मारते हुए राजा को अभिशाप देती है कि तुम्हारा विनाश हो जाएगा, तुम्हारे इस अनीतिकर राज्य का भी विनाश हो जाएगा और तुम्हारा यह जघन्य पाप सारे परिवार को डूबो देगा । यह एक सती का वाक् था जो खाली नहीं गया । उसके पति माधव को पता लगने पर वह बहुत दुःखी हुआ । मार्ग में ही अश्वारोहियों से इस दुःखांत की सूचना पाकर वह टूट सा गया । उसका मन पत्नी की आत्महत्या स्वीकारने को तैयार न था । रूप के हाथ में कोई कटार तो मिली नहीं, इसी शक में गृह मंत्रालय के समस्त साधन रहस्योद्घाटन के लिए लगाए गए । खोज-खबर में उसे महाराज के महलों में रूप सुंदरी का करणदेव से दांडिया खेलना और महाराज का माधव के आवास की ओर जाना, दोनों बातों से महाराज की किसी धिनौनी हरकत का संदेश हो रहा था । प्रशासकीय कार्यों से मन उचटने पर उसने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया और राजा करणदेव से पूर्वी गुजरात की ओर लौट जाने की अनुमति माँगी । चलते-चलते रात धिर आने पर उसने एक अति-साधारण सराय के मालिक से वहाँ ठहरने की अनुमति ली । थके घोड़े के सम्मुख वहाँ के नौकर ने जल-पात्र रखा तो वह जोर से हिनहिना उठा और नौकर ने घोड़ा पहचान लिया और वह यह पता करने के लिए, कि कहीं उसके पुराने मालिक माधव की हत्या तो नहीं करवा दी नौकर परशु आने वाले व्यक्ति के कक्ष में गया जहाँ अपने मालिक माधव को पाकर खुश हुआ और उन्हें उस रात की स्थिति बताई जिससे माधव को रूपसुंदरी की 'आत्महत्या' का रहस्य समझ आ गया । वह उसी क्षण क्रोध

में पाटक की ईंट से ईंट बजाने के लिए वहाँ से चल पड़ा । वह अलाउद्दीन खिल्जी के शिविर को खोजने लगा जो उस समय पूर्वी गुजरात में अपनी तलवार से मंदिरों को लूटता, सुंदरियों को हरता और कमज़ोर शासकों को लताड़ता अत्याचार कर रहा था । माधव ने करणदेव से प्रतिशोध लेने एवं अपने मूल स्थान से मुस्लमान आक्रमणकारियों को हटाने की नीयत, से एक तीर से दो शत्रु गिराने की नीति अपनाते हुए, अलाउद्दीन खिल्जी के शिविर का रुख किया, जो साबरमती के बाएँ किनारे पर वर्तमान अहमदाबाद से पचास कोस परे था । वहाँ पहुँच उसने अलाउद्दीन को कमला की अनुपम खूबसूरती और पाटण की दौलत का लालच देकर चढ़ाई के लिए व अपने सहयोग देने के बारे में कहा । अलाउद्दीन ने इस मुहिम पर खुद चलना तय किया । उधर करणदेव सती रूपसुंदरी के अंतिम शब्दों से भयभीत था । उसे लगा, सती का अभिशाप सचमुच उसके राज्य और परिवार को विनष्ट कर देगा । कमला जो अनेक सुंदरियों के सतीत्व भंग में राजा की सहयोगिनी थी, जो उसे कुमार्ग पर चलने से रोकने की अपेक्षा उसको सहयोग देती थी, को भी अपनी भूल का आभास हुआ । राजा जानता था कि पाटण में सुलतानी सेना से लोहा लेने का सामर्थ्य नहीं । उसने कमलादेवी को मूल्यवान हीरे-जवाहरात, वस्त्राभूषण एवं स्वर्ण-पात्रों आदि के तीन-चार बड़े संदूक तैयार करने, महल से सागर तट तक जाने वाली सुरंग साफ करने और सागर-तट पर छोटा बेड़ा तैयार रखने का आदेश दिया । एक प्रातः कमलादेवी को बेटी देवल और मलिक काफूर के साथ सोमनाथ मंदिर के दर्शनों का आदेश दिया और वहाँ बड़ी पूजा का प्रबंध करने, भगवान से राज्य और परिवार के लिए दया की भीख माँगने व कल्याण-कामना के लिए कहा । उधर अलाउद्दीन खिल्जी ने अपनी सेना को सोमनाथ और पाटण की ओर बढ़ने का आदेश दे दिया । उसने अपनी सेना के तीन भाग कर, एक की कमान स्वयं संभाल माधव को साथ लेकर

पाटण की ओर बढ़ा । दूसरी बड़ी टुकड़ी सेनापति अलगू खाँ की कमान में सोमनाथ मंदिर की ओर बढ़ने लगी । तीसरी टुकड़ी पश्चिम के जैन-मंदिरों को लूटने की नीयत से बनाई गई ।

जब करणदेव को अलाउद्दीन के पाटण पर आक्रमण की सूचना मिली तो वह एकदम घबरा गया । उधर दूसरी तरफ मुसलमान सैनिक सोमनाथ मंदिर को चारों ओर से घेरने लगे । काफूर देवल को लेकर पाटण की ओर भाग खड़ा हुआ और कमलादेवी मंदिर के अंदर ही रह गई । उधर नगर को लूटा देख मालिक काफूर देवल को लेकर पीछे वाले सागर-पट पर करणदेव को मिला और तीनों देवगिरी के राजा रामचंद्रदेव जो करणदेव का मित्र था की शरण पाने के लिए आगे बढ़े । उधर अलगू ने सोमनाथ के मंदिर की पावनता अपवित्र कर वहाँ की मूल्यवान वस्तुओं, धन, स्वर्णादि को लूटा । वहीं कमला भी उसके हाथ आ गई । लूट का सारा माल सुलतान के हवाले करके उसने कमलादेवी की बात छिपा ली, पर किसी ने सुलतान को बता दिया और मात्र एक रात अलगू के साथ रहकर कमला सुलतान के हरम में पहुँचा दी गई । सती का अभिशाप सामने आया । राजा करणदेव ने इससे पहले भी कई नारियों को अपनी कामुकता का शिकार बनाया था जिनमें भील राजा कर्मठसेन की सुपुत्री रत्ना भी थी जिसने शिकार पर शेर से राजा की जान बचाई थी । तब उसे राजमहलों में दास के रूप में बुलाकर राजा की सेवा में रहने का आदेश दिया गया । रत्ना को यह सब स्वीकार न था । उसका विद्रोही मन उक्त सामाजिक चलन को पुरुष प्रधान समाज एवं जातीय ऊँच-नीच का अन्याय मान रहा था, किन्तु समाज की बलिवेदी पर पिता और भाई के लिए औरत द्वारा अपने को होम करने की नियति ने रत्ना को समझौते की मानसिकता में ला दिया । इस तरह राजा और कमलादेवी दोनों में एक अनकहीं संधि हो गई । राजा कमलादेवी पर सपत्नी नहीं लाएगा और कमलादेवी यदा-कदा जीवन-यात्रा में

राजा का मन रखने में उसको सहयोग देने लगी । लेकिन अब स्वयं कमलादेवी मुगलों के हाथों में उसी स्थिति में थी । अलाउद्दीन उसे दिल्ली अपने हरम में ले आया जहाँ उसकी हर बात मानी जाती । मोह के हाथों पराजित, मूर्खतावश उसने देवल को अपने निकट आने की बात सुलतान से कही जो मान ली गई ।

दूसरी तरफ देवल पिता और मलिक काफूर के साथ देवगिरी में थी जहाँ रामचंद्र का सुपुत्र सिंहलदेव देवल को अपनी भार्या बनाना चाहता था, परंतु अपने से जाति में निम्न स्तर का होने के कारण रायकरणदेव न माना । किस्मत को भी कुछ ओर ही मंजूर था । उधर सुलतान ने देवगिरी के राजा को मलिक काफूर उनके पास भेजने के लिए कहा जो वहाँ भेज दिया गया । योद्धा हीजड़ा होने के नाते उसे हरम की सुरक्षा सौंपी गई । कमला उर्फ़ मुमताज़ उसे देख घबरा गई और उससे अपने पति व बेटी देवल का पूछा । सुलतान के देवगिरी पर आक्रमण का सुन कर वह घबरा गई और देवल को अपने पास बुलाने की बात उसने सुलतान से मनवा ली । मलिक काफूर सेना नायक आल्पखाँ से बचा कर देवल को माँ कमला के पास पहुँचा तो देता है पर देवल के भेड़ियों की माँ में आने से कमला को फ़िक्र हुई । वहीं देवल की मुलाकात खिज़ से हुई । वह कमला से संस्कृत सीखने आता था वहीं देवल से मिला और उससे प्रेम करने लगा वह अपनी पत्नी हमरो के कर्कश व्यवहार से दुःखी था । हमरो सुलतान के प्रमुख सेनापति आल्पखाँ की पुत्री थी । वह खूबसूरत तो थी पर इसके साथ ही चिड़चिड़ि और मिथ्याभिमानि भी थी । उसे सेनापति की बेटी और सुलतान की बहू होने का गुमान था । एक बार नौकरानियों और अन्य कामगरों के सामने हमरो ने खिज़ का अपमान कर दिया । सुलतान से शिकायत करते उसने हमरो को तलाक देना चाहा पर सुलतान से दूसरी



शादी करने को सुन उसने देवल से शादी करनी चाही । दोनो का निकाह कर दिया गया और देवल का नाम सन्दली बेगम रखा गया ।

सुलतान ने ज़फर और नकाब को देवगिरी पर हमला करने को कहा । हमले में रायकरणदेव उनके हाथ न लगा । वह कहाँ मर-खप गया किसी को पता नहीं चला । दक्षिण की जवलायु मुआफ़िक न आने के कारण सुलतान अस्वस्थ हो गया । युद्ध में लगा पहले का घाव पिराने लगा । घायल और रोगी स्थिति में उसे राज्य की चिंता होने लगी । खिज़्र कमज़ोर था इसलिए मलिक काफ़ूर को उसका संरक्षक नियुक्त किया । अलगू, आल्पखाँ, जफर, नकाब सक इससे असंतुष्ट थे । बगावत के बिगुल बजने लगे । खिज़्र के सुलतान बनने पर देवल ने उससे दो माँगें मनवा ली – एक सुलतान के तौर पर खिज़्र मंदिरों को नहीं तोड़ेगा और दूसरी राज्य में गोवध नहीं होगा । हुकुमनामा जारी होने पर अधिकारियों ने उसे काफ़िर कहा और वह मुस्लिम प्रजा की सहानुभूति खो बैठा । आल्पखाँ, खिज़्र और सन्दली बेगम की शादी के बाद मानसिक तौर पर रोगी बन गया । एक बार हमरो के महल में बैठे-बैठे मानसिक विकृति की स्थिति में उसने सन्दली, खिज़्र और सुलतान के लिए अनुचित और आपत्तिजनक शब्द बोले जो मलिक काफ़ूर ने सुन लिए । मलिक काफ़ूर के मस्तक में हुकूमत का कीड़ा कुलबुलाने लगा । उसने सोच लिया कि अगर ताकत मेरी तो हुकूमत भी मेरी होगी । उसने सुलतान को खिज़्र और देवल के खिलाफ किया और उन्हें ग्वालियर के किल्ले में नजरबंद कर दिया । आल्पखाँ को भी मरवा दिया और उसका सिर नगर द्वार पर लटका दिया । सुलतान को भी उसने नजरबंद कर दिया । बेगम के पीहर जौनपुर को भी दिल्ली शासन के अधीन कर लिया । शहज़ादे खिज़्र पर इतना मानसिक दबाव डाला कि वह आत्महत्या कर ले पर सन्दली के प्यार ने उसे जिन्दा रखा, शाही हकीम द्वारा सुलतान को ऐसी दवाई दी गई कि उसकी मौत हो गई और वक्ती

ताक़त मलिक के हाथ आ गई । वह सन्दली को अलग कर शहज़ादे को ज़हनी अज़ीयतें देने लगा उसे सन्दली बेगम के सामने अन्धा कर दिया गया । वहीं एक सेवक दुलारे उनको मलिक की बेवफ़ाई के बारे में और मुबारक शाह की मलिक काफ़ूर के विरूद्ध बगावत के बारे में जानकारी देता है । इस हमदर्दी की कीमत उसे भी चुकानी पड़ी । उधर मुबारक ने दक्षिणी राज्यों से दोस्ती की । देवगिरी की देखा-देखी अन्य राज्य भी उसकी सहायता को मान गए । मलिक के सैन्य पक्ष ने भी मुबारक का साथ दिया । मुबारक द्वारा मलिक काफ़ूर को बन्दी बना लिया गया । मुबारक ने सल्तनत पर काबिज होते ही सहयोगी सेनानायकों को सम्मान और तख़्त-ओ-ताज के दावेदारों को मरवाना शुरू किया । उसने मलिक काफ़ूर की सज़ा तजवीज़ करने का हक़ भाभी हमरो को दिया क्योंकि दोनों में दोस्ती थी । हमरो को जब यह पता चला कि मलिक ने खिज़्र को अंधा कर दिया है तो उसने भी उसे आँखों से अंधा करवा दिया और उसकी जलाई पुतलियों में मिर्ची झोंकने का आदेश दिया उसे तीन दिन भूखा-प्यासा टिकटिकी से बाँधकर रखा गया । फिर मुबारक ने उसका सिर कलम करके शहर के दरवाज़े पर लटका दिया । उसने अपने रिश्ते में एक दूर के भाई मुहम्मद को भी मरवा दिया । इसके बाद वह खिज़्र और उके बच्चे का मारने के लिए ग्वालियर खाना हुआ । वहाँ से सन्दली ने निकाल के लिए वह उसे और उसके बच्चे को ले कर दिल्ली की ओर चला । खिज़्र को तब तक रोज़ बीस चाबुक लगाने का हुक्म दिया, जब तक कि उसकी मृत्यु न हो जाए । रास्ते में सन्दली का बेटा भी मार कर फेंक दिया गया । अब सन्दली उर्फ़ देवल मुमताज़ के पास थी । अब देवल की यह हालत देख उसे उस सती के श्राप का ध्यान आया । उस सती रूपसुंदरी का जिसने करणदेव को उसके वंश के ख़त्म होने का श्राप देकर आत्महत्या कर ली थी । अब कमला अपने किए पर पछता रही थी क्योंकि जो उसने

किया था वहीं उसके सामने आ रहा था । उधर मुबारक सन्दली से निकाह कर लेता है । खाविंद और बेटे के कातिल को वह मज़बूरी में गले लगाती है क्योंकि कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था । उसने मुमताज़ और सन्दली को अलग करके रखा । सभी ओर मुबारक का आंतर छाया था तभी मुबारक को खत्म करने के लिए खुसरो उसकी जिंदगी में आया जो अलाउद्दीन की नाजायज़ औलाद थी और अपने आप को मुबारक का भाई और विश्वास पात्र कहता था । अजमेर की रहने वाली सलमा जो गरीब परिवार से थी इसकी माँ थी जो दूसरी औरतों की तरह हरम में आ गई थी । खुसरो वहीं पर पला था । बदले की भावना ने अपनी अम्मी के साथ हुए अन्याय के विरुद्ध उसे कटुता से भर दिया था और वह अपने आप को सुलतान का अंश मान कर उसका उत्तराधिकारी ही मानता था । सन्दली की झलक पाकर वह भी उसे पाने की आकांक्षा रखता था । मुबारक को एक दिन राजनयिक कार्य के लिए आगरा जाना पड़ा । मथुरा के करीब जंगल में रात बिताने के लिए शाही खेमा लगाया, खुसरो का खेमा मुबारक के साथ ही था । वहीं अपने मित्र पाकदामन से मिलकर खुसरो ने पहले मुबारक को मार गिराया बाद में पाक दामन को भी मार दिया । खेमे में दो कत्ल हो गए थे । मुबारक के पाँच सेना-नयाकों में से चार को उसने अपनी तरफ कर लिया था और एक सेना नायक रशीद को उसने मरवा दिया था । मगरमच्छी आँसू बहने के बाद दिल्ली में अपने आप को उसने सुलतान घोषित कर दिया । अलाउद्दीन, मलिक काफूर, मुबारक अली और अब खुसरो वर्ष भर में चार अधिनायकों के कब्जे में आने से सन्दली बेगम कमजोर हो गई थी । सन्दली बेगम को जब यह पता चला कि खुसरो निकाह करेगा तो वह जीवन और मृत्यु के बीच विकल्प खोजने लगी । खुसरो से उसका निकाह तो हो गया पर देवल उर्फ सन्दली बेगम ने यह सोच लिया कि रात्रि में वह खंजर खुसरो के सीने में उतार देगी, लेकिन

विधि का विधान कुछ ओर ही था तभी खुसरो को दरबार के कार्य निपटाते गुप्तचरों ने आगरा की ओर सुलगती विद्रोह की चिंगारियों की सूचना दी । वह चिन्गारी ज्वाला बनने लगी क्योंकि मुबारक की माँ आगरा की थी आगरावासी मुबारक के कत्ल की बात पचा नहीं पाए और विद्रोह कर दिया । आगरावासियों ने दिल्ली के लोगों में भी विद्रोह का विष फैला दिया । जैसे ही खुसरो सेना की बड़ी टुकड़ी के साथ लोगों को शान्त करने और बगावत को दबाने के लिए सड़कों पर आया तो एक तीर पता नहीं कहाँ से आया और उसकी कनपी को फोड़ता हुआ सिर के बीच घँस गया और खुसरो मारा गया । यह बाप पूरे शहर में फेल गई । सुलतान का तख्त खाली न रहै, मौलवियों और काज़ियों ने खुसरो के एक दूर के भाई मसऊद को अस्थायी तौर पर ताज सौंपकर शहर की अराजकता नियंत्रित करने की असफल कोशिश की । महलों में भी हल्ला मच गया था । सन्दली अपने भविष्य को लेकर चिंतित हुई । वह मसऊद के नर्गे में फँसने से पूर्व कुछ कर गुज़रना चाहती थी । तभी उसे हेमा का ध्यान आया जो उसकी हमदर्द थी और आजकल शाही सेना की टुकड़ी का नायक उसका आशिक हो गया था । रात के सन्नाटे में वह हेमा के कक्ष में पहुँची और उसने महल से बाहर निकलवाने की विनती की ताकि वह अत्याचारी काम-लोलुप सुलतानों की दुनिया से दूर जा सके यहाँ नारी का शोषण न हो । हेमा सन्दली की स्थिति एवं उसकी मजबूरियों से परिचित थी । सन्दली की मदद को पुण्य का काम समझ उसने अपने मित्र सेना-नायक की मदद से उसे बाहर निकलवाने का दिलासा दिया । रात अपने मित्र सेना-नायक से उसने प्रार्थना की कि अगर एक किस्मत की मारी खुसट बुढ़िया को बाँदी बनाकर महलों के हिफ़ाजती घेरे से बाहर छोड़ दो तो तुम्हें पुण्य लगेगा क्योंकि वह बुढ़िया अपने बच्चों में जाने की इच्छुक है । उसने यथार्थ को छुपा कर नायक को मनवा लिया । सन्दली को बुर्का पहना कर

बुढ़िया की तरह चलना-बोलना सीखाया गया । चेहरे पर कालिमा लगा केशों को सफेद किया गया और एक मोटा काँच का टुकड़ा मुँह में रखा गया ताकि बोले गए वाक्यों में लर्ज़िश आए । एक लकड़ी भी थमा दी । सूर्यास्त के उपरांत नायक दो सिपाहियों के साथ आया और उन्हें बुढ़िया को हरम से बाहर ले जाने को कहा । अपने इस बुढ़िया के भेस से सन्दली खुश थी । मुख्य मार्ग पर पहुँच कर उसने एक बैलगाड़ी वाले से मथुरा की तरफ ले चलने की प्रार्थना की । वह वही जा रहा था, सो मान गया । रास्ते में दो-तीन दिन लग जाने थे, उस गाड़ी वाले को बैलों, अपनी और उस बुढ़िया के खाने-पीने की चिंता हुई । सन्दली ने उसके चेहरे की चिंता बढ़ते हुए अपने हाथ से अँगूठी उतार कर गाड़ीवान की ओर बढ़ायी । हिन्दु गाड़ीवान ने सकुचाते हाथ बढ़ाया तो सुन्दर जवान कलाई देख उसे सहयात्री रहस्यमयी लगा । पूछने पर सन्दली ने बताया कि यह बुर्का और आवाज़ सब आवरण मात्र हैं । मैं एक हिन्दु कन्या हूँ, मुझे अपनी धर्म-पुत्री समझे और धर्म-पिता की तरह मेरी रक्षा करें । बुजुर्ग अनुभवी गाड़ीवान ने उसे बेटी बना सुरक्षित मथुरा ले गया और सन्दली को धर्म-पिता और धर्म-माता मिल गई । उधर विद्रोह के दो दिन बाद जब मसऊद को सन्दली बेगम की याद आई तो उसने उसे गायब पाया । हेमा और नायक मौन थे, नायक को नहीं मालूम था कि वह जिस बुढ़िया को बाहर पहुँचा रहा था, वह सल्लतनत की बापर्दा बेगम थी । सब तरफ सन्दली बेगम के गायब होने की चर्चा थी । माँ कमला को सन्दली के रहस्यात्मक ढंग से गायब होने पर संतोष था उसे लगा कि माँ को हमराज ना बनाकर उसने अच्छा ही किया क्योंकि माँ का मोह बेटी को मुसीबत में डाल सकता था ।

महलों में तूफान आया हुआ था । शाही महलों से सल्लतनत की मुख्य बेगम के गायब होने पर महलों की सुरक्षा पर प्रश्नचिन्ह लग गया था ।

मसऊद ने सन्दली बेगम की खोज पूरे जोश से करवाई इसलिए नहीं कि वह परिवार की इज्जत थी बल्कि इसलिए कि वह भी उसे पाना चाहता था । वक्त के साथ-साथ सन्दली की तलाश मन्द पड़ते-पड़ते समाप्त हो गई और महलों ने भुला दिया कि कोई हिन्दु सुंदरी सन्दली बेगम के नाम से सल्तनत के हर खिलाड़ी का निशाना बनी थी ।

इस प्रकार मनमोहन सहगल ने सच की दिल दहला देने वाली इस औपन्यासिक तस्वीर को बड़े ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है जहाँ नारी ही नारी को जिल्लत की गर्त में धकलेती है । मनमोहन सहगल ने राजनीति की कुटिल चालों, बदले की भावना, राजसत्ता के मोह, पारस्परिक फूट, भारतीय व मुस्लिम संस्कृतियों का टकराव, धर्म परिवर्तन, ऊँच-नीच व जाति-पाति के भेदभाव, राजशाही निरंकुशता, विलासितापूर्ण आचरण, नारी शोषण और नारी विमर्श आदि समस्याओं व स्थितियों का यथार्थ चित्रण बड़े ही सफल ढंग से किया है ।

### ❖ सहगल के उपन्यास 'काला सच' की सामान्य विशेषताएँ :

डॉ. मनमोहन सहगल हिन्दी के प्रतिष्ठित उपन्यासकारों में से एक है । इन्होंने अपनी सशक्त लेखनी से सबको प्रभावित किया । इनका उपन्यास 'काला सच' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी कथावस्तु पाटण प्रदेश के एक प्रचलित इतिहास पर आधारित सत्य से संबंधित है । इस उपन्यास में जिन समस्याओं और स्थितिओं का यथार्थ चित्रण किया गया है वह केवल अतीत में ही विचरण नहीं करती, बल्कि आज की स्थितियों में भी व्यवस्था के 'काले सच' को बयान करती है, जिस कारण यह उपन्यास श्रोताओं में लोकप्रिय है । सहगल के उपन्यास 'काला सच' की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित अनुसार है ।

➤ **ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन :**

‘काला सच’ उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास है और इसकी कथा का आधार इतिहास का कठोर सत्य है। यह सत्य दिल दहलाने वाला सत्य है क्योंकि इसमें लेखक ने नारी की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। अलाउद्दीन खिल्जी के पाटण राज्य पर आक्रमण और उस राज्य व परिवार के बबाद होने की इस ऐतिहासिक कथा को ऐतिहासिक अभिशाप की कथा कह सकते हैं जिसमें ‘जैसी करती, वैसी भरनी’ का संदेश दिया गया है, साथ ही नियति से जूझने के लिए सत्कर्म करने व दूसरों को सत्कर्म करने की प्रेरणा का संदेश भी लेखक देता है। सहगल के इस उपन्यास की यह खास विशेषता है कि यह उपन्यास इतिहास से अवगत तो कराता ही है, साथ ही हमें विपरीत परिस्थितियों में भी निरंतर संघर्ष करने की प्रेरणा भी देता है।

➤ **तदयुगीन नारी की स्थिति का चित्रांकन :**

सहगल जी ने इस उपन्यास में तदयुगीन नारी की स्थिति का चित्रांकन किया है। धन लोलुप एवं काम सम्राटों द्वारा नारी की अस्मिता को रौंदा गया और उसे निरंतर अपमानित व तिरस्कृत किया गया। पुरुष द्वारा औरत के दैहिक शोषण की विसंगत तस्वीर को लेखक ने बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है। लेखक नारी की दयनीय स्थिति का चित्रांकन करने के साथ ही उसे हिम्मत और साहस से विपरीत परिस्थितियों से निकलने की प्रेरणा भी देता है।

➤ **धार्मिक, परिवेश का चित्रांकन :**

मनमोहन सहगल ने ‘काला सच’ उपन्यास में धार्मिक परिवेश का चित्रांकन बड़े ही सफल रूप से किया है। अपने बुरे कर्मों के प्रति जब भी मनुष्य जाग्रत होता है तो केवल ईश्वर की शरण में ही जाना चाहता है

इस उपन्यास में भी रायकरण सती के अभिशाप से मुक्ति के लिए माँ भगवती का जागरण करवाता है। सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण होने पर भी पुजारी व अन्य सभी भगवान् शिव से रक्षा की पुकार करते हैं। वास्तव में लेखक धार्मिक परिवेश का चित्रांकन कर हमें यह प्रेरणा देने की कोशिश कर रहा है कि हमें बुरे कर्म नहीं करने चाहिए और मुसीबत आने पर अपने पर भरोसा रखने और हिम्मत से मुसीबत का सामना करने की कोशिश करनी चाहिए।

### ➤ सामाजिक कुरीतियों का चित्रण :

मनमोहन सहगल ने अपने इस ऐतिहासिक उपन्यास में ऊँच-नीच, जाति-पाति आदि से संबंधित सामाजिक कुरीतियों का चित्रण किया है। नीच जाति की होने के कारण भील कन्या रत्ना को राजा की सेवा का हुकुम दिया जाता है और इसी तरह रायकरण देवल का विवाह अपने मित्र रामचंद्र के सुपुत्र सिंहदेव से सिर्फ इसलिए नहीं कराते क्योंकि वह उनकी जाति से निम्न स्तर का था। उस समय हिन्दु समाज की कुछ सीमाएँ थी जिनसे बाहर होने पर बहिष्कृत करने का नियम प्रचलित था। लेखक रायकरण, कमला व देवल की नियति द्वारा इन सब से ऊपर उठने की प्रेरणा दे रहा है।

### ➤ हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति का चित्रण :

लेखक ने इस ऐतिहासिक उपन्यास 'काला सच' में हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति का सफल चित्रण किया है और हिन्दु संस्कृति को श्रेष्ठ बताया है क्योंकि हिन्दु संस्कृति में एक ही विवाह को मान्यता है जबकि मुस्लिम संस्कृति में बहु विवाह प्रथा प्रचलित है। हिन्दु संस्कृति में शादी एक पवित्र बंधन माना जाता है, जो धर्म पर आधारित होता है। पर्व, नृत्य-गान, ईश्वरीय वंदना आदि हिन्दु संस्कृति के अंग हैं। लेखक इस उपन्यास द्वारा



हमें यह प्रेरणा देता है कि चाहे मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा मंदिरों की तोड़-फोड़ और लूट भारतीय संस्कृति को खत्म करने के प्रयास थे, परंतु भारतीय संस्कृति की अजर-अमर धारा हज़ारों सालों से बह रही थी, बहती रही है और निरंतर बहती रहेगी ।

### ➤ **राजनीतिक परिवेश का चित्रण :**

‘काला सच’ उपन्यास में अलाउद्दीन खिल्जी के आक्रमण समय हिन्दु और मुस्लिम शासकों के राजनीतिक परिवेश का चित्रण मिलता है । हिन्दु राजाओं की आपसी फूट व बदले की भावना और मुस्लिम शासकों का सत्ता हथियाने के लिए कुटिल चालों का प्रयोग बता कर लेखक हमें न केवल उस समय के राजनीतिक परिवेश से अवगत करवाता है बल्कि हमारी आज की राजनीतिक स्थिति को भी दर्शाता है । सत्ता हस्तान्तरण के लिए कोई नियम, कोई फायदा, कोई कानून, रिश्ता-नाता-भाईचारा नहीं होता सत्ता हथियाने के लिए सब कुछ जायज माना जाता है । भाई ही भाई का दुश्मन बन जाता है । सत्ता की महत्वाकांक्षा में जब मानव दानव बन जाता है, पता ही नहीं चलता ।

### ➤ **अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का वर्णन :**

मनमोहन सहगल ने ‘काला सच’ उपन्यास में अन्याय के विरुद्ध विद्रोह किया है । उन्होंने इस उपन्यास द्वारा बताया है कि दूसरों के साथ विश्वासघात करने वाले को भी विश्वासघात का सामना करना पड़ता है । अन्याय के विरुद्ध जनता का विद्रोह इतिहास को बदलने की ताकत रखता है ।

➤ **नारी-विमर्श का चित्रांकन :**

मनमोहन सहल ने अपने इस ऐतिहासिक उपन्यास 'काला सच' में नारी विमर्श को बहुत ही सफल तरीके से प्रस्तुत किया है। लेखक अनुसार अगर नारी दृढ़ संकल्प करें तो विपरित परिस्थितियों का सामना कर सकती है और अपने अस्तित्व को सुरक्षित कर सकती है।

❖ **'काला सच' में कथ्य के विविध आयाम :**

➤ **'काला सच' उपन्यास : कथानक की दृष्टि से :**

कथानक की दृष्टि से मनमोहन सहगल द्वारा रचित ऐतिहासिक उपन्यास 'काला सच' का अध्ययन निम्नलिखित अनुसार किया गया है।

➤ **ऐतिहासिक सत्य पर आधारित कथानक :**

'काला सच' उपन्यास की कथा का आधार इतिहास का कठोर सत्य है। वह सत्य जो नारी की स्थिति देखकर दिल दहलाने वाला है। भारत के पश्चिमी सागर-तट पर स्थित पाटण प्रदेश धन से समृद्ध है, जिस पर लेखक ने अलाउद्दीन खिल्जी के हमले का वर्णन किया है – “काफूर और देवल जब पाटण के निकट पहुँचें, तो स्थिति समझ गए। नगर लुट चुका था, विरोध करने वाले मुस्लिम सैनिकों की तलवारों का जलवा देख रहे थे।”<sup>४६</sup>

इस आक्रमण का कारण राजा करणदेव का माधव से किया विश्वासघात और माधव की बदले की भावना थी।

इतिहासकार एम.एस. मान लिखते हैं –

“अलाउद्दीन गुजरात की तरफ बढ़ा, तो वहाँ का राजा करणदेव था। हमले दौरान उसने थोड़ा सा मुकाबला किया और फिर वह भाग गया। वह मलिक काफूर और बेटी देवल के साथ देवगिरि दौड़ गया।.... करण की हार उसके मंत्री माधव के विश्वासघात से हुई थी। राजा करण

की पत्नी कमला देवी मुस्लिमानों के हाथ आ गई । उसको पकड़ कर अलाउद्दीन के पास दिल्ली भेज दिया गया ।”<sup>४७</sup>

इस प्रकार इस कथा का आधार इतिहास से लिया गया है लेकिन कल्पना और यथार्थ के मिश्रण से नारी की दुर्दशा का कठोर सत्य प्रस्तुत किया गया है ।

### ➤ **मनोरंजन के साधनों का वर्णन :**

उपन्यास के शुरू में लेखक ने मनोरंजन के साधनों का वर्णन किया है - “जब तक उसके महलों में पर्णोत्सव मनाए जाते; रास, गरबा, दांडिया की धूम मचती ।”<sup>४८</sup> भाव नृत्य गान आदि उस समय मनोरंजन के साधन थे । युवतियाँ झुरमुट करती, अम्बा की का गरबा गाती नाचती और झूमती हैं :

*“गरबे घूमती गौरी केरा, लहेरणियों लहेराय रे ।*

*चौरे चौटे कुमकुमवेर्या, गरबा रमवा आवो ।”<sup>४९</sup>*

इसी तरह अतिथि सत्कार के लिए भी नृत्य गान के मनोरंजक कार्यक्रम का आयोजन किया जाता था । मध्य गुजरात के रजवाड़े राजा राय जयसिंह जो कमला के पिता भी है, के यहाँ एक बार किसी कार्यवश महाराज कुमार करणदेव आते हैं तो आनन्दी बाई के नृत्य का आयोजन किया जाता है ।

“आनन्दी बाई ने राय जयसिंह का संकेत पाकर छूम छन् - न् - न् - न एक फिरकी ली और मुर्की लगाते हुए सब उपस्थितों का ध्यान एकदम अपनी ओर खींच लिया ।”<sup>५०</sup>

नृत्य-गान के अतिरिक्त ‘आखेट’ भी राजाओं के मनोरंजन का साधन था । भयानक जंगलों में जाकर शेर चीतों का शिकार किया जाता था - “आखेट राजाओं के लिए मनोरंजन और क्रीड़ा का साधन होता है । राजा

करणदेव ने भी गीर में शेर के शिकार की योजना की थी । अंगरक्षकों सहित शिकारी दल में कुल ग्यारह व्यक्ति थे । ग्रामीणों की एक मंडली हाँका करने के लिए बुला ली गई थी ।”<sup>५१</sup>

### ➤ नारी के शोषण पर आधारित कथानक :

सच की दिल दहला देने वाली इस औपन्यासिक कथा में उच्च वर्ग द्वारा निरंतर नारी का शोषण होता दिखाया गया है । राजा करणदेव अपने मंत्री माधव की पत्नी रूपसुंदरी से उसके पति के प्राण खतरे में बता कर बलात् संबंध बनाता है वह राजा से कहती भी है कि - “मैं तो आपकी प्रजा हूँ महाराज, आपकी संतान के समान ।”<sup>५२</sup> परंतु करणदेव उसे उसके पति को मारने की धमकी देकर अपनी मुराद पूरी कर लेता है, जिससे रूपसुंदरी के मन-मस्तिष्क को गहरा आघात लगता है और वह राजा से कहती है - “कौन रोकता आपको ? बाढ़ ही खेत तो खाने लगे, तो कोई नहीं बचा सकता उसे ।”<sup>५२</sup>

इसी तरह भील राजा कर्मठसेन की पुत्री रत्ना जो राजा की जान शेर से बचाती है, को भी उच्च वर्ग के शोषण का शिकार होना पड़ा । अस्थायी तौर पर राजा की सेवा अर्थात् काम-ज्वर शांत करने के लिए रत्ना को बुलाया गया । चाहे उसने बड़ा विद्रोह किया परंतु “समाज की बलिदेवी पर पिता और भाई के लिए औरत द्वारा अपने को होम करने की नियति ने रत्ना को समझौते की मानसिकता में ला दिया ।”<sup>५३</sup>

अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति अलगूखाँ द्वारा कमलादेवी की अस्मत् पर हमला भी नारी शोषण का उदाहरण है अब कमला की स्थिति रूपसुंदरी और रत्ना जैसी थी क्योंकि वह मुस्लिमानों के हाथों में थी । अलगू खाँ के शिविर में उसकी स्थिति का वर्णन करते लेखक लिखता है - “पूरे शिविर में कमलादेवी की भावी दुर्गति के अनुमान से किसी आँख नम

नहीं हई... शिविर में एक ठहाका गूँजा और अलगू के संकेत पर समस्त दीपक बुा दिए गए । कमला की चीख सागर के ज्वार की ध्वनि में मिलकर अश्रुत हो गई ।”<sup>५४</sup>

अलाउद्दीन खिल्जी कमला को अलगू से छीन लेता है और अपने हरम में उसे अपने दिल बहलाने के लिए रख लेता है वहाँ वह आँसू बहाती, भाग्य को कोसती, मृत्यु का मिथ्या आह्वान करती, अपने अतीत को भुलाकर नवीन परिस्थितियों के संग समंजस बिठाने का प्रयत्न करती परंतु अपने नारी होने पर अब उसे घृणा होती । सुलतानों के हरम में पड़ी बहुत सी औरतें उच्च वर्ग के शोषण का शिकार होती हैं । “कमला समझ गई थी मुस्लिम सुलतानों के हरम में प्रवेश पाना और बात है, किन्तु यहाँ से निकल पाना असंभव हैं । वह नित्य हरम की ऐसी औरतों से मिलती थी, जो मैले कपड़े के समान दो दिन पहनकर फेंक दी गई थी, हरम की चारदीवारी में वे कुछ भी कर लें, हरम-चोबदार की नज़र बचाकर या उसे धनादि से प्रसन्न करके वे किसी से शारीरिक संबंध बना ले, रोग पालती रहें या गले में फँदा लगाकर मृत्यु का वरण कर लें, किन्तु जीते जी वे उस चारदीवारी से बाहर नहीं जा सकती थी ।”<sup>५५</sup>

फिरदौस, हेमाबाई आदि औरतें भी उच्च वर्ग के शोषण का शिकार होती दिखाई देती हैं । देवल भी इसी नियति का शिकार होती है पहले खिज़्रखाँ की पत्नी बनती है । उस समय लूट के माल से अधिक मुस्लिम शासन में औरत का कोई कीमत नहीं थी । खिज़्र का भाई मुबारकशाह दिल्ली का शासक बनने के बाद भाई की पत्नी को मैली नज़र से देखता है । इस संबंध में देवल माँ से कहती है – “नहीं माँ, गुलाम राष्ट्र में तो औरत होना गुनाह है । जिसकी भी नज़र उठी, गुनाह से भरी लगी । औरत तो महज़ इन लोगों के लिए बच्चों के खेलने की गुड़िया है, जिसने चाहा अपने बिस्तर में लिटा लिया । खिज़्र कुछ महज़ब थे, दिल मिला था

उनसे, लेकिन अब तो हरम में रशीदा और हेमा की किस्मत ही जीना होगी, ऐसा दिखता है।”<sup>५६</sup>

मुबारक के बाद खुसरो सन्दली बेगम उर्फ देवल को पाना चाहता है। मुबारक के शायन कक्ष में सन्दली की एक झलक से ही वह घायल हुआ फिरता था। वह सोचता है कि सदली मुबारक की हो सकती है तो मेरी क्यों नहीं। वास्तव में जब भी कोई शासक बनता तो वह बेगमों और हरम की औरतों को भी अपनी संपत्ति समझ कर उस पर अपना अधिकार कर लेता। इस उपन्यास का ‘काला सच’ भी यही हैं – सब स्थितियों में निरंतर मौजूद औरत की तार-तार होती अस्मत। खुसरो के बाद जब मसऊद को शहर की अराजकता को नियंत्रित करने के लिए तख्त पर बैठाया जाता है तो वह भी सन्दली बेगम के गायब होने पर उसकी खोज करवाता है ताकि वह भी उसे अपने बिस्तर में ला सके।

इस प्रकार रचनाकार ने देश के अन्दर शासकों, ताकत वालों द्वारा नारी जाति के अपमान, तिरस्कार के साथ-साथ विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा भी औरत के दैहिक शोषण की विसंगत तस्वीर को बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है। लेखक ने नारी की दयनीय स्थिति का वर्णन कर उसे ऊपर उठाने, उसकी इज्जत करने की प्रेरणा हमें दी है।

### ➤ *पति पर एकाधिकार की अदम्य लालसा का चित्रण :*

प्राचीनकाल से अब तक नारी अपने पति पर केवल और केवल अपना अधिकार बना कर रखना चाहती है। ऐसी ही स्थिति उपन्यास में तब-तब देखने को मिलती है जब-जब राजा करणदेव किसी सुंदरी पर आसक्त हो जाता है। कमला अपने पति की जिंदगी में दूसरी सुन्दरियों के आने को बहु-विवाह प्रथानुसार अपनी सपत्नी बनने से रोकने की खातिर अपने पति का उनसे अस्थायी यौन-संबंध बना लेने का समझौता कर लेती

है । अपने ही मंत्री की पत्नी रूपसुंदरी पर आसक्त होने पर वह अपने पति से कहती है – “आप रूप पर आसक्त हो गए हैं, तो समस्या क्या है ? जाइए, आजकल अकेली ही तो वह; एकाध दिन उसके पास रह लीजिए । मुझे कोई आपत्ति नहीं ।”<sup>५७</sup>

इसी तरह एक बार जब राजा राय करणदेव आखेट पर जाते हैं तो भील राजा कर्मठसेन की पुत्री रत्ना उनकी शेर से जान बचाती है । राजा को वह एक ही नज़र में भा जाती है वह उसे अपने महलों का उजाला बनाना चाहते हैं परंतु कमला राजा के अस्थायी काम-ज्वर को शांत करने के लिए रत्ना की सेवाएँ प्राप्त करने का निर्णय लेती है वह चाहती है कि रत्ना को दासी के रूप में बुलाया जाए और फिर कुछ दिन राजा की सेवा में रहने दिया जाए और राजा के सन्तुलित होने पर उसे धनादि देकर वापिस वन में भेज दिया जाए । यह नारी द्वारा नारी के शोषण का ज्वलंत उदाहरण है जिसमें औरत ही औरत की भावनाओं से खुला खिलवाड़ करती है । पुरुष द्वारा तो उसे मात्र भोग की एक वस्तु ही समझा जाता है ।

इस प्रकार इस उपन्यास में पुरुष पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए नारी और नारी के बीच ही संघर्ष चलता दिखाया गया है । कमला, देवलदेवी और हरमों में सड़ने वाली नारियाँ इसी सत्य की गवाह हैं । पुरुष किसी भी धर्म अथवा वर्ग का हो वह नारी को उपभोग की वस्तु से अधिक नहीं समझता और नारी पुरुष के प्रति आसक्ति के चलते नारी के ही शोषण में पुरुष की सहयोगिनी बनती है ।

### ➤ नारी के दो रूपों का वर्णन :

‘काला सच’ उपन्यास में हम नारी के दो रूप देखते हैं एक रूप-माधव की पत्नी रूपसुंदरी का है जो महाराज की जबरदस्ती का विरोध करती है, वह सतीत्व, पतिव्रत और नारी धर्म की साकार मूर्ति है वह अपने

पति के प्राणों की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देती है । अपने सतीत्व भंग होने पर वह राजा के अन्याय के विरुद्ध प्राण त्यागते हुए राज परिवार व राज्य को अभिशप देती है । वह कहती हैकि, “मेरी आत्मा सदा तुम्हें कोसती रहेगी – विनाश हो जाएगा तुम्हारा, तुम्हारे, इस अनीतिकार राज्य का; तुम्हारा यह जधन्य पाप सारे परिवार को डुबो देगा । यह एक सती का वाक् है, खाली नहीं जाएगा, देखना ।”<sup>५८</sup> और यही अभिशप कारण बनता है पाटण राज्य की बरबादी का, कमला और देवल की दुर्दशा का ।

दूसरा रूप कमला और देवलदेवी का है जो परिस्थितियों के बहाव में बह जाने वाली एक ही साथ स्वार्थ, कमजोरी और चतुराई की प्रतीक हैं । वह अलग-अलग पुरुषों की कामुकता का शिकार होती है । वह स्थिति के अनुसार अपने आप को ढाल लेती है । कमला ने हरम के वातावरण से जान लिया था कि सुलतान तब तक उसका दीवान है, जब तक हरम में किसी नई चिड़िया को फाँस कर नहीं लाया जाता ।

उधर देवल कमला उर्फ मुमताज़ के पास हरम में खिज़्र से निकाह के लिए तैयार हो जाती है और अपनी अम्मी से कहती है कि “कोई किसी के भाग्य का शरीक नहीं, जो होने वाला है, वह तो होगा ही; फिर रोने-धोने का क्या लाभ ? मरना मेरे वश में नहीं, जीना मुसलमानों के हाथ है, तो क्यों न अपने को नियति की लहरों पर छोड़ दिया जाए । भगवान् जो चाहेगा, जिधर चाहेगा, ठेल देगा ।”<sup>५९</sup>

### ➤ हिन्दुओं की आपसी शत्रुता का वर्णन :

आरंभ से ही बाहरी ताकतों ने भारतीयों के एक-दूसरे से बदले की भावना का फायदा उठाया है । इस उपन्यास में भी जब राजा रायकरणदेव माधव की पत्नी रूपसुंदरी से बलात् संबंध बनाचता हैं तो वह राजा व



उसके परिवार को अभिशाप देकर आत्महत्या कर लेती है जब माधव को यह पता चलता है तो वह बदले की भावना से अलाउद्दीन खिल्जी को पाटण राज्य पर हमला करने के लिए उकसाता है वह उसे कमला के रूप सौंदर्य व धन-धान्य का लालच देता है । वह करणदेव जैसे आंतरिक शत्रु को अलाउद्दीन से ज्यादा खतरनाक मानता है । उधर अलाउद्दीन से ज्यादा अपनी फतह का राज हिन्दुओं की आपसी शत्रुता को मानता है । उधर अलाउद्दीन से ज्यादा अपनी फतह का राज हिन्दुओं की आपसी शत्रुता को मानता है । वह माधव के सहोग से पाटण राज्य पर आक्रमण करता है और साथ ही सोमनाथ मंदिर को भी लूटता है । इस प्रकार हिन्दुओं की आपसी शत्रुता का फायदा मुस्लिमान शासकों को होता है और इस बदले की भावना का नुकसान हिन्दुओं को स्वयं ही उठाना पड़ता है ।

### ➤ *राजाओं की पारस्परिक फूट का वर्णन :*

‘काला सच’ उपन्यास में राजाओं की पारस्परिक फूट का वर्णन भी किया गया है । उपन्यास के शुरू में माधव को छोटे-छोटे राज्यों को संगठन के सूत्र में बाँधने की मुहिम पर भेजा जाता है परंतु विधि को कुछ ओर ही मंजूर था, इसी कारण जो पाटण राज्य की सुरक्षा करने वाला था वही अलाउद्दीन को बदले की भावना से हमले का निमंत्रण देता है । जब राजा करणदेव को खिल्जी के संभावित आक्रमण का एहसास होता है तो वह मंत्रीमंडल की विशेष बैठक बुलवाकर खिल्जी के संभावित आक्रमण की चर्चा करता है तो सेनापति से पूछने पर वह कहता है कि – “हमारे इस छोटे से राज्य की शक्ति तो आँधी के सम्मुख तिनको की आड़ मात्र है । हाँ, यदि पूरे पश्चिमी गुजरात के छोटे-छोटे पचासों राज्य एक पताका तले एकत्र हो सकें, तो हम अलाउद्दीन खिल्जी का मान-भंग कर सकते हैं ।”<sup>६०</sup>

इस प्रकार राजाओं की पारस्परिक फूट को चित्रित करता हुआ लेखक यह बताना चाहता है कि शताब्दियों तक दासता की बेड़ियों में अपना देश इसी पारस्परिक फूट के कारण जकड़ा रहा । इनकी यही आपसी फूट और बदले की भावना ही विदेशी आक्रमणकारियों को हमेशा भारत पर आक्रमण करने के लिए सहायक रही हैं ।

### ➤ जाति-पाँति एवं उच्च-नीच का वर्णन :

उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यास 'काला सच' में जाति-पाँति व उच्च-नीच का भी वर्णन किया है । आखेट दौरान जब राजा रायकरणदेव भील राजा कर्मठसेन की सुपुत्री रत्ना पर मोहित होकर उस वन की शोभा को महलों का उजाला बनाने की इच्छा रखता है तो “ राज पंडितों को अनुलोम-विवाह में कोई अनौचित्य दीख नहीं पड़ता था किन्तु भील कन्या राजरानी बन जाए, उच्च क्षयि कुल की कमलादेवी की सपत्नी ! कमलादेवी, उसके पितृ परिवार तथा कुछ मंत्रियों को भी यह कतई स्वीकार न था । ”<sup>६१</sup>

“भील उस युग में दास जाति थी । उस जाति की कन्या राजा की सेवा में उपस्थित रहै, तो किसी को आपत्ति नहीं; किन्तु रानी बनकर उन पर हुकूम चलाये, यह सद्द न था । ”<sup>६२</sup>

इसी तरह पाटण पर अलाउद्दीन के हमले दौरान रायकरणदेव अपनी बेटी देवल और हिजड़े काफूर के सा छिपते-छिपते देवगिरि पहुँचें जहाँ का राजा रामचंद्र करणदेव का मित्र था । रामचंद्र के सुपुत्र सिंहलदेव ने जब देवल को देखा तो उस पर आसक्त हो गया वह देवल को अपनी पत्नी बनाना चाहता है वह अवसर पाकर देवल के सम्मुख प्रेम-निवेदन भी करता है । मालिक काफूर को जब पता चला तो उसे देवल के सम्मान की रक्षा के लिए यह प्रस्ताव सर्वश्रेष्ठ लगा । लेकिन रायकरण मालिक से कहता

है - “नहीं, मल्लिक, हम ऐसा नहीं कर सकते । सिंहलदेव मराठा है और मराठों को हमारी जाति में निम्न स्तर का माना जाता है । यदि मैं देवल का विवाह सिंहलदेव से रचा दूँ, तो मेरे सजातीय लोग मुझे जाति बहिष्कृत कर देंगे ।”<sup>६३</sup>

वह सोचता है कि “हिन्दु समाज की सीमाएँ और उच्च-नीच के भेदभाव हमारी बेड़ियाँ ही तो बनकर रह गई हैं ।... किन्तु हाय ! समाज की बेड़ियों को तोड़ने का साहस कौन करे ? भावुकता में बहते करणदेव ने सोचा कि हालात सामान्य हो जाने के बाद क्या जवाब दोगे तुम अपनी को ? नीची जाति में बेटी ब्याह देने पर खूब फज़ीहत होगी तुम्हारी ।”<sup>६४</sup>

डॉ. सुधा जितेन्द्र के अनुसार :

“उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने तत्कालीन हिन्दु समाज में व्याप्त जाति-पाति, ऊँच-नीच की अभेद्य दीवारों का भी यथार्थकन किया है । पाटप नरेश रायकरणदेव अपनी बेटी देवल का विवाह अपने आत्मीय मित्र देवगिरी नरेश रामचन्द्र के सुपुत्र सिंहदेव से इसलिए नहीं करते क्योंकि वह जाति में उनसे निम्न स्तर के थे ।... किन्तु वाह री किस्मत ! फूलों सी नाजुक, सौंदर्य की प्रतिमूर्ति देवल बाद में मुस्लिमों के हथे चढ़ जाती है और उसकी दुर्दशा पर तो स्वयं विधाता भी पत्थर हो जाता है ।”<sup>६५</sup>

### ➤ **भ्रष्ट राजनीति का चित्रण :**

‘काला सच’ उपन्यास में भ्रष्ट राजनीति का नंगा नाच देखने को मिलता है । यह राजनीति भ्रष्ट लोगों के हाथ का खिलौना बनकर रह जाती है । अपने से अपनों की पहचान करवाना भूला देती है । माधव राजा करणदेव का विश्वासपात्र था परंतु राजा करणदेव अपने ही विश्वसनीय गृह-मंत्री की पत्नी को अपनी कामुकता का निशाना बनाना है और नौकरों को भी महल छोड़कर गायब होने का आदेश दे दिया जाता है । लेकिन

माधव का एक नौकर परशु जब माधव को सच्चाई बताता है तो माधव गुस्से में यही सोचता है कि मुझे उस नीच की नौकरी बहुत पहले ही छोड़ देनी चाहिए थी । उसे निश्चित हो जाता है कि राजा ने रूपसुंदरी को अपना शिकार बनाना चाहा होगा पर उसने अपने प्राणों को देकर अपनी पवित्रता की रक्षा की होगी । उधर परशु सोचता है कि, “ये शासक और बड़े लोग क्या इतने घटिया होते हैं ? पापी अपनी ही रियाया की स्त्रियों को भी नहीं बख्शते ! लानत है, इनके राजा होने पर ।”<sup>६६</sup>

इसी तरह जब सुलतान खिल्जी रशीदन दासी को सिपाही संग देख मरवाने की बात कमलादेवी को बताता है तो कमला उर्फ मुमताज़ सोचती है – “क्या विडंबना है । सुलतान पराई औरत को लूटकर लाता है, उसके साथ जिसी भूख को मिटाने की हर रात कोशिश करता है, तो वह अधिकारी है । एक सिपाही अपनी माशूक के संग वही रिश्ता पालता है, तो अपराधी है – मृत्यु दुण्ड का अधिकारी ।... वाह रे न्याय ! सुना था कानून अंधा होता है, यहाँ तो न्याय ही अंधा हो गया है ।”<sup>६७</sup>

### ➤ **मानसिक कायरता वश प्रभु शरण का चित्रण :**

कहते हैं कि इन्सान जब कुकर्म करता है तो एक न एक दिन उसे अपने बुरे कार्यों का पछतावा ज़रूर होता है तो वह चाहे ताकतवर के उस पर हावी होने पर हो लेकिन उसे अपने किए पर पछतावा ज़रूर होता है और वह भगवान की शरण में जाता है ताकि वह अपने बुरे कार्यों की माफी माँग सके । ‘काला सच’ उपन्यास में भी रायकरणदेव जब रूप सुंदरी से जबरदस्ती करता है तो वह उसे शाप देकर अपने आप को खत्म कर लेती है । यह घटना निरंतर रायकरण को कचौटती रहती है और उसे दिन-रात लगता है कि उस सती का अभिशाप सचमुच उसके राज्य और परिवार को विनष्ट कर देगा । कमला भी राजा को अपना बनाए रखने की

मिथ्या हवस में पाप और अपराध की सीमाओं का अतिक्रमण करती रही थी और झूठे आदर्शों से बंधी वह राजा को कुमार्ग पर चलने से रोकने की अपेक्षा उसे सहयोग देती रही थी । अब अलाउद्दीन खिल्जी के आक्रमण की आशंका पर सती के अभिशाप से दोनों चिंतित थे और इसी कारण माँ भगवती का जागरण करवा कर अंबा जी से क्षमा याचना करना चाहते हैं । वह राज पुरोहित बुलाकर माता जी के जागरण की योजना भी बनाते हैं । जागरण कर अंबा जी का स्तुति गान करवाते हैं, उदारपूर्वक दान देते हैं, निर्धन, निराश और निशक्त प्रजाजनों को वस्त्र भोजन देते हैं । राज पुरोहित को भी दो गुणा धन देते हैं । परंतु उनके अंतर्मन का भय नहीं जाता । उधर खिल्जी के बढ़ते कदमों को सुन उस सती का कथन कि तुम्हारा, तुम्हारे राज्य व परिवार का अंत हो जाएगा बार-बार राजा करणदेव को याद आता है । वह कमला को सोमनाथ मंदिर के दर्शनों को और बड़ी पूजा का प्रबंध करने को कहता है ताकि भगवान उसे दया की भीख देकर उसका कल्याण करें परंतु विधि को कुछ ओर ही मंजूर था । पाटण पण आक्रमण होने पर करणदेव महल के भीतर से सागर तट पर निकलने वाली सुरंग के रास्ते भाग जाता है उधर अलगू का सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण होता है वहाँ से भाग मलिक काफूर और देवल राजा करणदेव से जा मिलते हैं, परंतु कमला अलगू खाँ के हाथ आ जाती है ।

मंदिर पर अलगू के आक्रमण से वहाँ के पुजारी व अन्य सभी उसका सामना न शिवलिंग से सुरक्षा की पुकार करते हैं । मुख्य पुजारी शिवलिंग से लिपट जाता है – “भगवान् शिव हमारी रक्षा करेंगे । तुम्हारा विनाश होगा ।” पुजारी की प्रकम्पित वाणी गूँजी ।”<sup>६८</sup>

“कहाँ है तुम्हारा भगवान् ? अल्लाह उनकी मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करना जानते हैं । तुम्हारी तरह चूहों के से छिपने और

भगदड़ मचाने वालों की मदद तो खुदा भी नहीं करता । अलगू ने व्यंग्य में कहा ।”<sup>६९</sup>

यह व्यंग्य वास्तव में लेखक ने सब पर किया है और प्रेरणा दी है कि कुछ भी हो, कोई भी मुसीबत आए हमेशा अपने पर भरोसा रखो और अपने बल पर हर मुसीबत का सामना करने की हिम्मत रखो ।

### ➤ भारतीय और मुस्लिम संस्कृति का चित्रण :

मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यास ‘काला सच’ में भारतीय व मुस्लिम संस्कृति का चित्रण भी किया है । भारतीय संस्कृति के अंग रास, गरबा दंडिया आदि नृत्यों का इसमें वर्णन है । रूपसुंदरी के एक पतिव्रता रूप में भी भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं वह अपने पति के प्राणों की रक्षा के लिए अपने आप को दाँव पर लगा देती है वह अपना सतीत्व, पतिव्रत और नारी-धर्म जो भारतीय संस्कृति के गुण हैं, को मसलने वाले राजा रायकरणदेव से वापिस माँगती है ।

इसके अतिरिक्त भगवान की पूजा-अर्चना व शरण लेना भी भारतीय संस्कृति का एक अंग है जो इस उपन्यास में दर्शाया गया है । राजा कमला से कहता है – “सोमनाथ मंदिर में भगवान से राज्य और परिवार के लिए दया की भीख माँगी, कल्याण कामना करें ।”<sup>७०</sup>

मुस्लिम आक्रमणकारियों से भारतीय संस्कृति प्रभावित होती भी दिखाई गई है । मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा मंदिरों की तोड़-फोड़ और लूट भारतीय संस्कृति को खत्म करने के प्रयास थे लेकिन हज़ारों सालों से बह रही भारतीय संस्कृति की अजर-अमर धारा बहती रही है और निरंतर बहती ही रहेगी ।

भोग की प्रवृत्ति दोनों में हैं रायकरण राजा होकर अपने ही मंत्री की पत्नी का सतीत्व भंग करता है, रत्ना जिस ने उसकी जान बचाई उसको भी

दासी बना भोग की वस्तु समझता है । उपन्यासकार स्वयं लिखता है – “राजा की भोग्याओं की कोई सूची तो नहीं बनती । कौन मरी, कौन बची, कौन आज भी संताप झेल रही है, राजाओं को इसका हिसाब तो नहीं रखना होता । सुन्दरी दिखी, गदराया यौवन लुभा गया, फिर वह किसकी बेटी है, किसकी बहू है या किसकी पत्नी, राजा के पास यह सब सोचने-जानने का अवकाश कहाँ ? बस उस युवती को उस रात राजा के साथ रहना ही था – रोककर रहे हँस कर सहे या बाद में आत्महत्या कर अपनी इह-लीला हर ले । राजा के दैवी अधिकारों को कोई चुनोती न थी ।”<sup>८९</sup>

दोनों ही संस्कृतियों में यह गलत है परंतु दोनों ही जातियों में अपनी संस्कृतियों के विरुद्ध काम होते हैं । मुस्लिम संस्कृति की झलक देते उपन्यासकार लिखता है कि – “जाम ओ मीना भले इस्लामी संस्कृति में भी हराम ही गिने गए हैं, किन्तु ‘सबल को नहीं दोष गोसाई’ । मुस्लिम दरबारों में बादशाहों, मंत्रियों, सेनापतियों का बड़प्पन सदैव शराब और शबाब में डूबकर ही उज्ज्वल होता रहा है ।”<sup>९०</sup>

हिन्दु संस्कृति में एक ही विवाह को मान्यता है जबकि मुस्लिम संस्कृति में चार शादियाँ करने की इजाजत है । खिज़्र द्वारा अपनी पत्नी हमरो को ना पसंद करने पर सुलतान उसे दूसरी शादी करने की इजाज़त देते हैं । हिन्दु संस्कृति में पुरुष और स्त्री के संबंध की व्याख्या करते देवल खिज़्र द्वारा पूछे जाने पर कि हमारे द्वारा दोस्ती की माँग आपको मंजूर है या नहीं तो वह कहती है – “दोस्ती कैसी ? सत्री और पुरुष की दोस्ती के कई रूप हो सकते हैं, आपका इशारा किस तरफ है ?.... शहज़ादा झंप गया । उसने देवल का छुई-मुई रूप देखा था, उसकी सूझबूझ और हिन्दु जीवन-दर्शन का उसे ज्ञान न था । उसके माहौल में

स्त्री-पुरुष की दोस्ती का शायद एक ही अर्थ था, जो निश्चय ही देवल के हिन्दु संस्कारों को स्वीकार नहीं हो सकता था ।”<sup>७३</sup>

देवल खिन्न को भारतीय संस्कृति से वाकिफ़ करवाती रहती हैं कि - “हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष में सिर्फ़ रिश्ते होते हैं, दोस्ती नहीं होती । माता-पुत्र, बहिन-भाई, देवर-भाभी, पति-पत्नी कोई भी रिश्ता हो सकता है, प्रेमी-प्रेमिका भी रिश्ता है, दोस्ती नहीं । हाँ, इस रिश्ते को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं ।”<sup>७४</sup>

मुस्लिम संस्कृति में प्रचलित बहु विवाह प्रथा को चुनौती देती हुई देवल आगे कहती है कि - “हमारे यहाँ निकटतम रिश्ता स्त्री-पुरुष में पति-पत्नी का होता है, किन्तु आपके यहाँ संभव नहीं है यह सुना है आप शादी शुदा हैं, लेकिन आप अपने उस निकटतम रिश्ते को धोखा देकर किसी अन्य सत्री की नज़दीकी ढूँढ़ रहे हैं । हिन्दु जीवन-दर्शन इसे हय समझता है ।”<sup>७५</sup>

भारतीय संस्कृति में शादी एक पवित्र बंधन माना जाता है जो धर्म पर आधारित होता है । लेकिन मुस्लिम संस्कृति में चार-चार शादियों की इज़ाजत होती है यहाँ तक कि ‘तलाक-तलाक-तलाक’ के उच्चारण मात्र से संबंध विच्छेद की सांस्कृतिक परंपरा भी प्रचलित है जो भारतीय संस्कृति में मंजूर नहीं ।

इस प्रकार ‘काला सच’ उपन्यास में हमें देवल के रूप में हिन्दु संस्कृति व खिन्न खाँ व अन्य मुस्लिम शासकों के रूप में मुस्लिम संस्कृति के दर्शन कराए गए हैं ।

### ➤ धर्म-परिवर्तन का प्रश्न :

डॉ. सुधा जितेन्द्र के अनुसार, “उपन्यासकार ने मध्यकालीन संदर्भों में धर्म-परिवर्तन के प्रश्न को भी उभारा है । धर्म परिवर्तन की इस भट्टी में



भुना कौन जा रहा है – नारी । यह धर्म परिवर्तन न तो पैसे के लिए होता है, न भौतिक सुखों के लिए । बल्कि केन्द्र में केवल एक ही बिन्दू है वह है – उत्कट भोग विलास । जैसे पौधे को एक स्थान से उखाड़ कर दोबारा रोप देने से वह पनपता नहीं उसी प्रकार अपनी सभ्यता और संस्कृति से उखड़कर मनुष्य हरा-भरा नहीं हो सकता । उपन्यास में मुस्लिम शासकों द्वारा धर्म-परिवर्तन की यह गाज़ हिन्दु नारियों पर गिराई जाती हैं ।”<sup>७६</sup>

‘काला सच’ उपन्यास में रायकरण देव की पत्नी को जब अलाउद्दीन खिल्जी के हरम में पहुँचाया जाता है तो उसका नाम ‘मुमताज़’ रखा जाता है । इसी तरह जब खिज़्र देवल से शादी करना चाहता है और सुलतान बेगम से इस बारे में पूछते हैं तो सुलतान की बेगम कहती है कि – “भई हमारे मज़हब में इस शादी की तो इजाज़त है, लेकिन खिज़्र की बीवी मुसलमान होनी चाहिए ।”<sup>७७</sup> इस पर सुलतान कहते हैं कि इसमें मुश्किल क्या है । देवल को मुसलमान बना लेते हैं । देवल के पास कोई विकल्प नहीं है, क्योंकि अगर सुलतान चाहेगा तो उसे बलात् भी मुसलमान बनी ही लेगा । देवल अपनी माँ से कहती है कि – “मुसलमान तो मैं उसी दिन हो गई थी, जब आलम खाँ मुझे मिल्लिम संरक्षण से छीनकर लाया था, हाँ कलमा पढ़ना बाकी है ।”

काजी भी काफ़िर को मुसलमान बनाने का सवाब बटोरना चाहते हैं इसके लिए वह कलमा पढ़ाकर, गोشت के पकवान से मुँह जूठा करवा कर, कुर्आन पाक से वाक लेकर देवल का नाम ‘स’ अक्षर से खुशबुओं के सिरताज सन्दल पर ‘सन्दली बेगम’ रखते हैं ।

इस प्रकार उपन्यासकार ने नारी की कारुणिक दशा का वर्णन किया है । ताकतवर हमेशा नारी को अपने पैरों तले रौंदता है, कभी अपनी ताकत के ज़ोर से तो कभी उसका धर्म परिवर्तन कर अपना बना कर

उसके साथ जबरदस्ती करता है। माँ का ममत्व कमला पर ही भारी पड़ता है वह अपने भाग्य और मूर्खता पर रोती है और सोचती है कि न वह देवल को अपने पास बुलाने की भूल करती और न ही देवल की यह दुर्दशा होती।

### ➤ राजसता की महत्वाकांक्षा का चित्रण :

‘काला सच’ उपन्यास में राजसता को पाने के लिए हर कोई अपने तरीके से हथकण्डे अपनाता है। राजसता पाने के सामने कोई नियम, कायदा-कानून, रिश्ता-नाता-भाईचारा नहीं देखा जाता। भाई, भाई का दुश्मन बनता है, सुलतान की अवैध संतानों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारा जाता है। यहाँ तक कि नवजात शिशु तक को नहीं बख्शा जाता। इस लालच में मानव दानव बनता जाता है।

मलिक काफूर जो रायकरणदेव का १००० स्वर्ण मुद्राओं में खरीदा हुआ गुलाम था, पाटण पर आक्रमण के बाद जब रायकरण देवल और मलिक काफूर के साथ देवगिरी में था तो वहाँ से खिल्जी उसे बाहुकुम माँग लेता है और हिजड़ा होने के नाते उसे हरम की सुरक्षा सौंप देता है। हरम-सुरक्षा का पद संभालते ही उसने पूरे हरम की स्त्रियों का जीवन-परिचय और प्रत्येक की दिनचर्या की जानकारी प्राप्त कर ली। साहस, विरता और दृढ़ता के गुणों के कारण रायकरण और अलाउद्दीन दोनों उसका सम्मान करते थे। परंतु महत्वाकांक्षा उसमें फूट-फूट कर भरी हुई थी। उसके बारे में उपन्यासकार लिखता है कि – “वह मुस्लिम राज-परिवारों में जो भीतरी कलह देखता था, बाप-बेटों और परस्पर भाईयों में जिस ईर्ष्या-द्वेष का सामना करता था, बादशाही हरमों में रचे जाते जो षड़यंत्र देखता था, तो उसकी महत्वाकांक्षा दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ने लगती थी। ‘जिसकी लाठ उसकी भैंस’ की नीति के चलते वह सोचने लगा

था कि ताकत के ज़ोर पर किसी न किसी दिन अपने ऊपर मिथ्या थानेदारी करने वाले तथा कथित मालिकों को धरती सूँघाकर खुद तख्त व ताज का मालिक बन सकता है ।”<sup>७९</sup>

सुलतान के बीमार होने पर उसे लगता है कि उसके आँख मींचते ही उसके सेनापति राज्य की तुक्का-बोटी कर देंगे । इसलिए वह मलिक काफूर को खिज़्र का संरक्षक बना देता है जिससे अलगू, आल्पखाँ, जफ़र और नकाब सेनापति नाराज़ हो गए । सुलतान अलाउद्दीन मलिक काफूर को चौकन्ना करते हैं कि मौका पाते ही आल्पखाँ खिज़्र को मरवा कर खुद सुलतान बन बैठेगा । मलिक काफूर सोचता है कि यहाँ हुकूमत ही सब कुछ है, माँ-बाप, बहिन-भाई, बेटा-बेटी या दामाद-बहू जैसे रिश्तों को कोई अहमीयत नहीं । उसमें एक महत्त्वाकांक्षा जागती है कि ताकत और हुकूमत का चोली-दामन का साथ है, तो मैं ही क्यों न सुलतान बन जाऊँ । मलिक काफूर इसी महत्त्वाकांक्षा के चलते आल्पखाँ को मरवा देता है ।

इस उपन्यास में राजसत्ता की महत्त्वाकांक्षा इतनी प्रबल दिखाई गई है कि हमरो को लगता है कि उसका पिता उसे बेवा भी बना सकता है और हुकूमत पर कब्ज़ा करके शायद वह भी हरम में होती यहाँ रात में कभी भी कोई भी उसे दबोच लेता ।

मलिक काफूर खिज़्र अचौर देवल को ग्वालियर में सुलतान से धोखे द्वारा दस्तखत करवाए हुकुमनामे से नज़रमंद करवा देता है । सुलतान को शाही हकीम द्वारा मरवा देता है, जौनपुर बेगम के पीहर पर हमला बोल दिल्ली शासन के अधीन कर लो है, शहज़ादे पर मानसिक दबाव डालता है, सन्दली को तरह-तरह की अज़ीयतें देता है, दोनों को अलग करता है यहाँ तक कि खिज़्र को अन्धा भी करवा देता है ।

मलिक काफूर के खिलाफ मुबारक विद्रोह करता है तो संदली बेगम उसकी कामयाबी खुदा से मांगती है ताकि उसका अंधेरा खत्म हो, पर खिज़्र

उससे कहता है, “जैसा साँपनाथ, वैसा नागनाथ ! बेगम, तुम इनकी तारीख से वाकिफ़ नहीं । इनमें रवायत है कि जो भी ताकत इकट्ठी करके हुकूमत को पाएगा, वह अपने खानदान में उस हुकूमत केदूर-दूर के दावेदारों को भी मौत के घाट उतार देगा, ताकि बाद में बिना किसी दावेदार के सिर उठाए चैन से हुकूमत की बागडोर संभाले ।”<sup>८०</sup>

देवगिरी की सेनाओं व सेनापतियों के सहयोग से जब मुबारक मलिक काफूर को बन्दी बन लेता है तो वह भी इस्लामी रवायत के मुताबिक तख्त-ओ-ताज के संभव दावेदारों को खोज-खोज कर मारता है । मलिक काफूर को अंधा कर उसका सिर कलम कर शहर के दरवाज़े पर लटका दिया जाता है । वह खिज़्र और उसके बच्चे को मरवा कर सन्दली से जबरदस्ती निकाह कर लेता है ।

खुसरो जिसे मुबारक अपने छोटे भाई जैसा समझ भरोसा करता है वह भी हुकूमत की लालसा में मुबारक को मरवा देता है और सन्दली बेगम को पाने की हसरत रखता है । वह सोचता है कि सन्दली मुबारक की हो सकती है तो मेरी क्यों नहीं ? मुबारक को मारने के बाद बादशाह के खून से उपजा होने की दुहाई देकर अपने आप को सुलतान घोषित कर देता है । देवल हिन्दु संस्कारों में पली बार-बार शौहर बदलने से मर जाना बेहतर समझती है वह खुसरो के सीने में खंजर उतारने की सोचती है लेकिन सुलगते विद्रोह की चिंगारियों के ज्वाला बनने के कारण वह उसे दबाने की कोशिश में किसी के तीर का निशाना बन कर मारा जाता है ।

इस प्रकार राजसत्ता की महत्त्वाकांक्षा सब रिश्तों की पवित्रता को ताक पर रखती नजर आती है । शासक के हाथ में ताकत होने पर वह हुकूमत अपने ढंग से चलाता है । वह राज्य के साथ-साथ राजमहल की औरतों पर भी हुकूमत चलाते हैं उनके लिए माँ, बहन, भाभी जैसे रिश्तों की कोई

अहमियत नहीं है । इस राजसत्ता की महत्त्वाकांक्षा में औरत की अस्मत्त तार-तार होना ही उपन्यास का 'काला सच' है ।

### ➤ जनता के विद्रोह का वर्णन :

'काला सच' उपन्यास में जो दूसरों के लिए काँटे बोता है, उसे भी आगे काँटे ही मिलते हैं, जो अपनों के साथ विश्वासघात करता है उसे भी अपने ही विश्वासघात देते हैं । इन सब का उदाहरण खिल्जी, मलिक काफूर, मुबारक व खुसरो के रूप में हमें मिलता है । सुलतान को मारकर मलिक काफूर, काफूर को मार कर मुबारक, मुबारक को मारकर खुसरो सब अपने आप को निर्विध्न ही समझते हैं परंतु जो खुदा को मंजूर हो, होना वही होता है, सबका अंत बुरा ही होता है । खुसरो को जनता के विद्रोह का सामना करना पड़ता है ।

शशि प्रभा के अनुसार :

“महत्त्वाकांक्षा के नाग को जनता का विद्रोह ही कुचल सकता है । जब तक जनता निष्क्रिय रहेगी, तब तक अहंकार के मद में दूर आत्मकेन्द्रित शासक इसी तरह आम आदमी के जीवन को अपनी जागीर समझते रहेंगे... किसी शासक को भ्रम में नहीं रहना चाहिए । जनता की बगावत में कई सुरक्षा काम नहीं आती ।”<sup>१९</sup>

आगरावासियों में अपने 'वासे' के हत्यारे के विरुद्ध तीखा रोष होता है उन्हें विश्वास था कि कातिल खुसरो ही है आगरा और दिल्ली के लोगों में खुसरो द्वारा मुबारक और रशीद के कत्ल की घटनाओं ने विद्रोह की भयानक आग भड़का दी थी । दिल्ली की गलियों और सड़कों पर शाही सैनिकों ओर आम लोगों के बीच युद्ध छिड़ गया था । गलियों-बाज़ारों में रहस्यमयी ढंग से फोजियों के मरने की खबरों से खुसरो चिंतित था । लेखक अनुसार - “थोड़ी सख्ती की गई तो दिल्ली की भीतरी गलियों की

भूल-भूलैय्यों में सैनिकों पर आक्रमण तेज़ हो गए। उन पर गमू तेल की बौछारें, पथरों, अंगारों और छोटे-छोटे तीरों की तीखी मार पड़ने लगी।”<sup>८२</sup>

इसी विद्रोह में किसी के तीर का निशान बन खुसरो मारा जाता है और मसऊद को अस्थायी तौर पर तख्त पर बैठाया जाता है। कहने का तात्पर्य यह कि जनता अगर चाहे तो तख्त पलट सकती है, देश का इतिहास बदल सकती है बस जरूरत है शासनतंत्र की निरंकुशता के विरुद्ध जनता की जागृति और सक्रियता की।

### ➤ नारी-विमर्श पर आधारित कथानक :

नारी मुक्ति की अवधारणा के इर्द-गिर्द रचा गया साहित्य नारी-विमर्श का साहित्य माना जाता है। पुरुष प्रधान समाज में नारी की नियति को दर्शाने के प्रयास शुरू से होते रहे हैं और मनमोहन सहगल ऐसे सशक्त उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यास ‘काला सच’ में नारी विमर्श को सफल तरीके से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की सशक्त पात्रा लेखन है जो मुस्लिम शासकों के अत्याचारों, अपमान व तिरस्कार से मुक्त होने का प्रण लेती है। वह अपने अस्तित्व को सुरक्षित करना चाहती है। उसे खुसरो के मरने के बाद अपने भविष्य की चिंता होने लगती है वह सोचती है कि “यदि नये सुलतान ने भी मेरे साथ संबंध बनाने का इतिहास दोहराना चाहा।”<sup>८३</sup>

इसी चिंता में हव इस निकाह के पर्दे में होने वाले बलात्कार से बचने के लिए, अत्याचारी काम-लोलुप सुलतानों के अत्याचारों से बचने के लिए हेमा की सहायता से बुढ़िया का वेश धारण कर महलों के हिफाज़ती घेरे से बाहर निकली जाती है। हेमा अपने आशिक सेना-नायक की मदद से बुढ़िया की वेश-भूषा में बुर्का ओढ़े महल से बाहर आ जाती है। देवल इस बारे में माँ को भी नहीं बताती क्योंकि – “देवल को अनुभव ने यह सूझ

प्रदान की थी कि माँ का मोह कभी बेटी की मुसीबत में भी डाल सकता है – शायद इसीलिए उसने गुप्त योजना में हेमा को तो शामिल किया, माँ को नहीं।”<sup>८४</sup>

लेखक स्वयं भी इस उपन्यास को नारी विमर्श की कथा मानता है इस उपन्यास के अंत में नायिका देवल सोच समझ कर महलों से भागती है, महलों की कैद से बाहर छुपकर रहना ही उसका उद्देश्य था, क्योंकि वह कामुक, अत्याचारी सुलतानों से छुटकारा पाना चाहती थी और यही दृढ़ संकल्प उसे उस अपमान के विष भरे वातावरण से मुक्ति दिलवाता है।

इस प्रकार ‘काला सच’ उपन्यास का कथ्य, दमदार, प्रभावशाली, भौतिक एवं विश्वसनीय है।

डॉ. सुधा जितेन्द्र के अनुसार :

“वास्तव में मनमोहन सहगल द्वारा रचित ‘काला सच’ उपन्यास इतिहास की उन नग्न सच्चाईयों का यथार्थ अंकन है जो आज के स्वस्थ समाज के निर्माण में बहुमूल्य योगदान दे रहा है। स्वस्थ सामाजिक एवं राजनैतिक परंपराएँ अपनाकर मर्यादित जीवन ही सफल समाज की नींव है। इसलिए माधव की पत्नी का श्राप वास्तव में पीड़ित, लंछित, अपमानित एवं तिरस्कृत नारी जाति का श्राप है। नारी जाति के विकास एवं उसकी स्वच्छंदता के परोक्ष उद्देश्य को लेकर लिखा गया यह उपन्यास स्थान-स्थान पर उसका मार्गदर्शन कर रहा है ताकि अतीत के इस ‘काला सच’ से वह प्रेरित हो सके।”<sup>८५</sup>

### ❖ ‘काला सच’ : शिल्प विधान :

किसी भी साहित्यिक विधा में उसके शिल्प का बड़ा महत्त्व है। शिल्प कलात्मक अभिव्यक्ति का एक साधन है और इसका उद्देश्य अनुभूति को सुन्दर बनाकर सजीव बनाना है। उपन्यास शिल्प का तात्पर्य है, उसके

विभिन्न तत्त्वों कथानक, चरित्र-चित्रण, देशकाल, कथोपकथन, भाषा-शैली तथा उद्देश्य आदि का विवेचन । इन छः तत्त्वों के योग से ही उपन्यास की शिल्प-विधि की निर्मिति होती है । ‘काला सच’ उपन्यास के शिल्प विधान का अध्ययन इन निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त करके किया जा सकता है ।

### ➤ कथानक शिल्प :

उपन्यास के कथा-तत्व से ही उपन्यास की रूपरेखा का अंकन होता है । इसी आधार पर ही उपन्यास के अन्य तत्त्वों का प्रयोग भी निर्धारित होता है । यही तत्व घटनाओं को स्पष्ट करता है । इसी तत्व द्वारा कथानक का प्रस्तुतीकरण, चरित्रों का चित्रण और देशकाल संबंधी सीमाओं का निर्धारण किया जाता है ।

मनमोहन सहगल के इस ऐतिहासिक उपन्यास का कथावस्तु पाटण प्रदेश के एक प्रचलित इतिहास पर आधारित सत्य से संबंधित है जो किसी प्रकार अंधेरे में दबा रहा । कथा का आधार इतिहास का कठोर सत्य है । उपन्यासकार ने सच की दिल दहला देने वाली इस औपन्यासिक तस्वीर को ‘काला सच’ के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाया है । इतिहास की एक घटना खिलजी का पाटण (गुजरात) पर आक्रमण व वहाँ के प्रसिद्ध मंदिर सोमनाथ की लूट को लेकर उनके द्वारा भारतीय प्रजा के साथ व्यवहार को तो दर्शाया गया है, परंतु लेखक का वास्तविक उद्देश्य नारी की तार-तार होती अस्मत् को दर्शाना, शासकों द्वारा बलात् उसका शारीरिक शोषण कर उसके अंदर की ‘अदम्य साहस वाली नारी’ को मारना बताया है जबकि अगर यह नारी हिम्मत दिखाए तो विपरीत परिस्थितियों से उभर कर बाहर आ सकती है और अत्याचारी काम लोलुप सुलतानों की भोग वस्तु बनने से बच सकती है ।



डॉ. सुधा जितेन्द्र के अनुसार :

“लेखक ने सृष्टि की अनुपम देन, करुणा-दया-ममता का पुंज, क्षमा-सहनशीलता त्याग की प्रतिमूर्ति नारी के जीवन के उन स्याह पन्नों को ‘काला सच’ में उजागर करने का प्रयास किया है जहाँ उसकी पहचान केवल देह से हैं । ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित इस उपन्यास ‘अबला जीवन हाय, तेरी यही कहानी, आंचल में हैं दूध और आँखों में पानी’ उक्ति शब्दशः घटित होती है ।”<sup>८६</sup>

उपन्यास में कमलादेवी की अपने पति पर एकाधिकबार की अदम्य इच्छा के कारण और रायकरण को अस्थायी यौन संबंध बनाने की इज़ाजत देने के कारण ही रायकरण रूपवती, जो उसके ही मंत्री माधव की पत्नी थी, का बलात् शारीरिक शोषण करता है जिस कारण वह सती राजा व उसके सारे परिवार को शाप देती है । इस शाप से रायकरण की रियासत और परिवार बराबाद हो जाता है । कमलादेवी अलाउद्दीन खिल्जी के हाथ आ जाती है । वह ममता के मोह में देवल को अपने पास बुलाने की समस्याओं और स्थितियों का यथार्थ चित्रण कर बताया गया है कि भारतीय उपमहाद्वीप की दुर्दशा, मंदिरों की तोड़फोड़ और गुलामी के लिए केवल मुस्लिम शासन ही जिम्मेदार नहीं था बल्कि अपने ही देश के निरंकुश विलासी-कामुक प्रवृत्ति के शासक भी जिम्मेवार थे । राजाओं का मिथ्यभिमान, आपसी फूट, नारी द्वारा नारी के शोषण का वर्णन, मुसलमान शासकों द्वारा नारी की दुर्गति, धर्म परिवर्तन और निकाह की चादर को ओढ़ कर नारी का दैहिक शोषण उपन्यास की कथावस्तु को सशक्त बनाते हैं । अंत में लेखक नारी-विमर्श के रूप में देवल को इस भोगी मुस्लिम शासन से बुढ़िया के वेश में बाहर निकाल कर प्रेरणा देता है कि अगर नारी चाहे तो सब कुछ करने में समर्थ हो सकती है ।

“महलों में एक बार तो तूफान बरपा हो गया । शाही महलों से सल्तनत की मुख्य बेगम गायब हो गई ।... सोते को जगाया जा सकता है, सोने के अभिनय करने वाले को नहीं जगाया जा सकता । सन्दली खो गई होती, तो सल्तनत की ताकत उसे खोज निकालती, किन्तु वह तो सोच समझ कर महलों से भागी थी, महलों की कैद से बाहर छुपकर रहना उसका ध्येय था ।”<sup>८७</sup>

इस प्रकार मनमोहन सहगल के ऐतिहासिक उपन्यास ‘काला सच’ की कथावस्तु सशक्त, मौलिक स्वाभाविक, रोचक और प्रवाहमय है । इसमें नियति से जूझने की प्रेरणा दी है । साथ ही कल्पना और यथार्थ का सुंदर निरूपण किया गया है ।

### ➤ चरित्र-चित्रण शिल्प :

पात्र एवं चरित्र-चित्रण दोनों ही उपन्यास में महत्वपूर्ण है ।

डॉ. राम लखन शुक्ल के अनुसार :

“कथानक उपन्यास का मेरुदण्ड और चरित्र-चित्रण उसका प्राण है ।”<sup>८८</sup>

इसी तरह डॉ. शुक्ल ने “पात्र एवं चरित्र-चित्रण को उपन्यास का प्राण माना है ।”<sup>८९</sup>

डॉ. शीलकुमार अग्रवाल ने उपन्यास में पात्रों की आवश्यकता स्वीकारते हुए कहा है – “उपन्यास मनुष्य की यथार्थताओं में बना एक घर है । इसी प्रकार प्रत्येक उपन्यास में पात्रों का होना आवश्यक है । चाहे वह कम हो या अधिक, धनी हो या निर्धन, बुद्धिमान हो या मूर्ख, स्थिर हो या गतिशील, समतलीय हो या विषम ।”<sup>९०</sup>

ऐतिहासिक उपन्यास ‘काला सच’ में मनमोहन सहगल ने प्रत्येक आने वाले पात्र की विशेषताओं से पाठक को अवगत करवाया है । कमला बारे

वह लिखते हैं - “नाम के एक-एक अक्षर को सार्थक करती महारानी कमला - कमनीयता, मादकता, लावण्य की साकार मूर्ति, महाराज करण के अंग-संग चलती, जैसे लास्य की मुर्कियाँ लेती हो।”<sup>९१</sup>

मनमोहन सहगल ने प्रमुख पात्रों के नाम का शीर्षक देकर उसके बारे में विस्तार से बताया है। लेखक ने माधव, कमलादेवी, मलिक काफूर, देवलदेवी, हमरो और देवल, खुसरो की हकीकत आदि शीर्षक दिए हैं और इनके अंतर्गत इन पात्रों का चरित्र-चित्रण भी किया है। देवल के बारे में लेखक लिता है, “चन्द्रकला की नाई ज्यों-ज्यों वह बढ़ी, रायकरणदेव के प्रासादों में उजाला भी बढ़ने लगा। बालिका जिधर से गुजरती, लोगों की नज़रे पथराई सी रह जाती। ऐसा प्रतीत होता था कि इन्द्र सभा की समस्त अप्सराओं ने अपनी-अपनी विशिष्टताओं से उसे पुरस्कृत कर दिया है; उसके शरीर का एक-एक अंग इनी सुघड़ता से गढ़ा था कि उर्वशी और मेनकमा भी उसे देख ईर्ष्या करने लगती थी।”<sup>९२</sup>

एक अन्य स्थान पर देवल के चरित्र की विशेषता का वर्णन लेखक लिखता है - “नहीं, ऐसे गुमनामी में नहीं मरेगी वह।”... क्षत्राणी जग गई उसके भीतर, मरी राजपूतनी अचेतन से उबरने लगी। वह रात्रि में खुसरो की ज़बरदस्ती नहीं सहेगी। उतार दूँगी खंजर उसके सीने में, स्वयं मौत को गले लगाने से पहले।”<sup>९३</sup>

हमरो के बारे में लेखक लिखता है, “हमरो खूबसुरत तो थी, किन्तु चिड़चिड़ी और मिथ्याभिमानि थी। सेनापति की बेटी और सुलतान की बहू होने का उसे इतना गुमान था कि अपने शौहर, खुद खिज्रखाँ को भी वह धता बताती थी।”<sup>९४</sup>

रत्ना पात्र के चरित्र-चित्रण के बारे में लेखक लिखता है - “बीस बाईस वर्ष की एक युवती, जिसने मल्ल शैली की कसी हुलई धोती और वक्ष पर मृग-त्वचा गाँठ देकर पहन रखी थी, हाथ में धनुष लिए अपने

शिकार पर अधिकार पाने वहाँ प्रकट हुई । युवती प्रकृति सुन्दरी की औरस पुत्री थी, भरपूर यौवन, कसी धोती के नीचे मांसल पिंडलियाँ, मृग-त्वचा में कसमसाते कठोर उरोज, कदली – सम प्रलम्ब भुजाएँ, नाक-नवश किसी कमलिनी नायिका के और शौर्य की जाति का, भील बाला थी वह । इन में प्रकृति की गोद में पली बड़ी तो थी ही, यौवन और सौंदर्य जैसे उसे स्वयं रति ने प्रदान किया था । भीलनी के शरीर में वैष्णवी का सौंदर्य, सोने पर सुहागा ।”<sup>१५</sup>

इस प्रकार मनमोहन सहगल के प्रत्येक पात्र का चरित्र-चित्रण बहुत ही सुंदर तरीके से सफलतापूर्वक किया है । लेखक ने कथानक के अनुकूल चरित्र-चित्रण किया है जिस कारण वह स्वाभाविक, सजीव, सप्राण और मौलिक बन सके हैं ।

### ➤ देशकाल शिल्प :

देशकाल या वातावरण प्रधानवाले उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर युग की देन है इस तरह के उपन्यास दो प्रकार हैं :

- (१) देशप्रधान (आँचलिक)
- (२) कालप्रधान (ऐतिहासिक)

ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिक स्थितियों की प्रधानता होती है । वास्तव में समाज का बाह्य जीवन, उसमें प्रचलित रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और कुरीतियाँ, रहन-सहन और ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ आदि उपन्यास का विषय बन जाती हैं । लेखक प्रसंगों के अनुकूल वर्णनों की पूर्णता के लिए मानव-चरित्र के विश्लेषण और उसकी प्रवृत्तियों के उद्घाटन के लिए बाह्य प्रकृति को भी ग्रहण करता है । इस प्रकार बाह्य प्रकृति, पात्रों की परिस्थितियों और

आंतरिक अवस्था तथा समाज के जीवन का चित्रण उपन्यास में वातावरण या देशकाल की योजना के नाम से अभिहित किया जाता है ।

मनमोहन सहगल ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास 'काला सच' में देशकाल और वातावरण परिस्थितियों के अनुकूल वर्णित किया है । उदाहरण के लिए भारत के पश्चिमी सागर-तट पर समृद्धि और संस्कार की कथा कहते पाटण राज्य के बारे में लेखक लिखता है, "पाटण राज-परिवार छोटी टेकरी पर बने विशाल प्रासाद में विराजता हैं । टेकरी यद्यपि सागर से दूर है, तथापि रात्रि के सन्नाटे में सागर के ज्वार की अकुण्ठ पुकार प्रासादवासियों के लिए लोरियों का प्रभाव रखती है । चन्द्र किरणों से दीप्त रात्रि में राजा अपनी पटरानी कमला के संग महल के बारजे पर से एक ओर वारिद-खण्डों के साथ शशि-क्रड़ा का आनंद लेते हैं, तो दूसरी ओर सुदूर पश्चिमी छोर पर उठती उताल जल-प्राचीरों के आगे बढ़कर तट से टकराने और लाखों-करोड़ों जल-कणों में बिखर जाने का अनुपम दृश्य देखते हुए, एक-दूसरे में मन-प्राण से खोते चले जाते हैं ।"<sup>९६</sup>

रायकरणदेव के महल में गरबा, नृत्य का दृश्य वर्णन करते लेखक लिखता है, "पैरों की थिरकन के साथ सिरचालन तथा करतल ध्वनि समाँ बँध गया । राज-प्रसाद का प्रांगण मधुर तालों और मादक स्वरों से जैसे सजीव हो उठा ।

*“सोल शणगार सोहे माँ, जोई, मारुं मनडुं मोहे रे ।*

*अनंत नी आ ओढी ओढणीओ, गरबे रमवा आवो रे ।”*

अम्बा जी माँ आपके सोलह श्रृंगार मेरा मन मोह लेते हैं, आप तो अनन्त ओढनी ओड़ कर गरबा में शामिल होइए ।"<sup>९७</sup>

रूप सुंदरी की मृत्यु के बाद का वर्णन लेखक करता है - “तेरह दिनों तक घर में शोक छाया रहा । क्रिया-कर्म से निपट कर गृह मंत्री

माधव जब प्रशासन कार्य की देखभाल में पुनः लगा, तो हर क्षण रूप का चित्र अपने गिर्द घूमता प्रतीत होता ।”<sup>९८</sup>

मनमोहन सहगल राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन करते लिखते हैं – “पूर्वी गुजरशात में ही उन दिनों अलाउद्दीन खिल्जी का लश्कर जगह-जगह अपनी तलवार से वहाँ के लोगों का भाग्य लिखता, मंदिरों को लूटता, सुंदरियों को हरता, भारत के शासकों के असंगठन और कमज़ोर व्यवस्था का मखौल उड़ाता धूम रहा था ।”<sup>९९</sup>

धार्मिक वातावरण का परिचय देते लेखक लिता है – “राजपुरोहित को बुलाकर माता जी के जागरण की योजना प्रस्तुत कर दी... जिस रात जागरण का कार्यक्रम बना, राजा और रानी एक गोपनीय पाप से सहमे हुए-से प्रतीत हुए । रात-भर अम्बा जी का स्तुति-गान करते रहै, भेंटों-कीर्तन में दत्त-चित्त सहयोग दिया, उदारतापूर्वक दान दिया, प्रसाद बाँटा और पुनर्पुनः माँ भवानी की सिंह वादिनी मूर्ति के सम्मुख साष्टांग लेटकर प्रणाम किया और क्षमा-याचना की । माँ की प्रसन्नता के लिए राजा ने अपना अँगूठा चीर कर स्वयं अपने रक्त से दुर्गा को अभिशिक्त किया । राज-परिवार और सम्बद्ध राज्याधिकारियों के परिवारों में मिठाई बाँटी गई । निर्धन, निराश और निश्कत प्रजाजनो को वस्त्र-भोजन दिया गया । एक-सौ-एक निर्धन लड़कियों का विवाह राज्य-कोष से संपन्न करवाया गया ।”<sup>१००</sup>

अलाउद्दीन खिल्जी के सेनापति अलगू खां के सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण के समय मंदिर के अंदर का दृश्य प्रस्तुत करते लेखक लिखता है – “घोड़ों की टापों की आवाज़ से भीतर के लोग दहल रहे थे और बार-बार अपने त्राण के लिए भगवान शिव को पुकार रहे थे । पुजारीगण किसी चमत्कार की आशा से शिव-पिंडी के निकट बैठे अपनी बाहों का हार पिंडी के गिर्द लपेटे अश्रु बहाने में लगे थे । भगवान को पुकार-पुकार कर

उनका गला सूख गया था, किन्तु मंदिर के बाहर मुसलमानों की अनास्थायुक्त सेना-टुकड़ियों को देखकर ही शायद भगवान उनकी पुकार पर भीतर पहुँचने में असमर्थ महसूस कर रहे हों।”<sup>१०१</sup>

मुस्लिम शाही महलों में से सन्दली के भाग जाने पर – “महलों में एक बार तो तूफान बरपा हो गया। शाही महलों से सल्तनत की मुख्य बुगम गायब हो गई, तो भला महलों की सुरक्षा को क्या कहें?”<sup>१०२</sup>

दिल्ली के विद्रोह का वातावरण प्रस्तुत करते लेखक लिखता है – “दिल्ली की गलियों और सड़कों पर शाही सैनिकों और आम लोगों के बीच युद्ध छिड़ गया था। शाही सैनिक अधिक मारे जा रहे थे, वे समझ ही नहीं पाते थे कि गली के किस मोड़ पर कौन से घर के दरवाजे या बारजे के नीचे अकस्मात उन पर बिजली कौंध जाएगी। सूरत-ए-हाल यह था कि अचानक गली में कोई दरवाजा खुलता, शाही सिपाही भीतर खिंचता चला जाता और फिर दो-चार मिनट बाद उसका मृत शरीर गली में पड़ा मिलता। कोई सिपाही गलती से भी अगर किसी मकान के बारजे के नीचे खड़ा दिख जाता तो ऊपर से पत्थर की कोई शिला या अन्य कोई भारी वस्तु उसके सिर पर गाज बन कर गिरती। शाही सिपाहियों की कठिनाई यह थी कि वे बलात किसी शहर का घर खुलवा कर उस पर आक्रमण नहीं कर सकते थे, उस दिशा में सल्तनत की बदनामी और दिल्ली की फौज की थू-थू हो जाने का डर।”<sup>१०३</sup>

इस प्रकार मनमोहन सहगल ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास में ऐतिहासिकता का निर्वाह करने की सफल चेष्टा की है। लेखक ने पाटण राज्य के रहन-सहन, नृत्य-गान, रीति-रिवाज, वेश-भूषा, राजतंत्र की निरंकुशता, कामुकता के साथ-साथ प्राकृतिक-भौगोलिक स्थितियों का सफल चित्रण किया है।

लेखक ने १२६७ ई. में अलाउद्दीन खिल्जी के गुजरात के पाटण प्रदेश पर हमले व सोमनाथ मंदिर की लूट व तोड़-फोड़ की ऐतिहासिक घटना को आधार बनाकर कमला देवी और देवलदेवी की दुर्दशा का चित्रण किया है। अलाउद्दीन खिल्जी के बाद राजसता की महत्त्वकांक्षा रखने वाले शासकों का भी चित्रण लेखक ने बड़े ही सरल, स्वाभाविक व सुंदर ढंग से किया है। पात्रों की मानसिक स्थिति, उनके हाव-भाव, अन्तर्द्वन्द्व के सजीव चित्रण के साथ-साथ सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक आदि स्थितियों का सफल चित्रण किया है।

### ➤ कथोपकथन शिल्प :

उपन्यास के छः तत्त्वों में से संवाद-योजना बहुत ही महत्वपूर्ण तत्त्व है, जिसके माध्यम से उपन्यासकार विविध प्रयोजनों की सिद्धि का प्रयास करता है। इनसे कथावस्तु का विकास तो होता ही है साथ ही टूटी हुई कड़ियाँ भी जुड़ती हैं। लेखक पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा उनका चारित्रिक उद्घाटन करता है, उनके मुख से अपने उद्देश्य को व्यंजित भी करता है। पात्रों के अन्तरंग भावों को कथोपकथन से अच्छे रूप में समझा जा सकता है। यही शिल्प कथानक को गति देकर उद्देश्य को स्पष्ट करता है। इस सम्बन्ध में डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है – “यों तो जहाँ कहीं भी कहानी में इसका उपयोग किया जायेगा वहाँ अपने-अपने ढंग के परिणाम खिल उठेंगे। पर जहाँ इस तत्त्व का क्षिप्त और द्रुत प्रयोग कथा-भाग को उत्कर्षोन्मुख करेगा वहाँ एक प्रकार का विशेष चमत्कार दिखाई पड़ेगा। कहानी में जिस अंश में संवाद-सौन्दर्य बिखरा मिलेगा वह अंश अपनी सम्पूर्ण शान्ति के साथ उमड़ पड़ेगा। यदि कहानी का आरम्भ लघु और गतिशील पर प्रकृत ओर औचित्यपूर्ण संवादों से किया गया है तो पाठकों का ध्यान विषय की ओर



उसी प्रकार केन्द्रित हो उठता है जैसे रंगमंच पर होने वाले किसी अभिनय की ओर ।”<sup>१०४</sup>

उदाहरण के लिए पात्रों के चारित्रिक उद्घाटन में कमला और रायकरण का संवाद देख सकते हैं – “आप रूप पर आसक्त हो गए हैं, तो समस्या क्या है ? जाइए, आजकल अकेली ही तो है वह, एकाध दिन उसके पास रह लीजिए । मुझे कोई आपत्ति नहीं ।”<sup>१०५</sup>

इनसे पता चलता है कि कमला अपने पति पर एकाधिकार पाने के लिए अपने पति को अन्य स्त्रियों से अस्थायी यौन-सम्बन्ध बनाने का समझौता कर लेती है जो उनके राज्य और परिवार की बर्बादी का कारण बनता है ।

रायकरण के रूप सुंदरी से संवाद द्वारा उनके चरित्र की विशेषताएँ पता चलती हैं । जैसे – रायकरण रूप से कहता है – “एक ओर मेरे प्राण है, प्रिये, जिन्हें बचाकर तुम राज-भक्ति का कर्तव्य निभा सकती हो, एक ओर माधव के प्राण है, जो तुम्हारी स्वीकृति से ही बच सकते हैं ।”<sup>१०६</sup>

रूपसुंदरी करणदेव से कहती है – “लाइए, डालिए मेरी झोली में, मेरा सतीत्व, पतिव्रत और नारी-धर्म । ..... अपनी ही प्रजा में जब राजा बलात किसी स्त्री का पतिव्रत नष्ट करने का पाप करता है, तो याद रखिए अबला की आह से अग-जग भस्म हो जाता है ।”<sup>१०७</sup>

आगे वह रायकरण से कहती है – “मेरी आत्मा सदा तुम्हें कोसती रहेगी – विनाश हो जाएगा तुम्हारा, तुम्हारे इस अनीतिकर राज्य का, तुम्हारा यह जघन्य पाप सारे परिवार को डुबो देगा । यह एक सती का वाक् है, खाली नहीं जाएगा, देखना ।”<sup>१०८</sup>

माधव के यह संवाद पाटण राज्य के विनाश की ओर संकेत करते हैं – “नहीं परशु, मेरी आत्मा मुझे कोस रही है । विद्रोह कर रहा है मेरा

चित ! मुझे अपनी रूप की अंतिम उसांस की सौगन्ध । पाटण की ईट से ईट बजा दूँगा मैं ।”<sup>१०९</sup>

अलगू खां के सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण पर उसके पुजारी के साथ संवाद उस समय और आज भी प्रेरणा देने वाले हैं जैसे –

“भगवान शिव हमारी रक्षा करेंगे । तुम्हारा विनाश होगा ।” एक पुजारी की प्रकम्पित वाणी गूँजी ।

“कहाँ हे तुम्हारा भगवान ? अल्लाह उनकी मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करना जानते हैं । तुम्हारी तरह चूहों के से छिपने और भगदड़ मचाने वालों की मदद खुदा भी नहीं करता ।”<sup>११०</sup> अलगू ने व्यंग्य में कहा ।

मलिक काफूर ने राजा रायकरण से कहा – “यदि देवल का विवाह देवगिरि के युवराज कुमार सिंहलदेव से कर दिया जाए तो पाटण नरेश बहुत सी चिंताओं से मुक्त हो जाएंगे । इस पर राजा कहता है – नहीं, मलिक, हम ऐसा नहीं कर सकते । सिंहलदेव मराठा है और मराठों को हमारी जाति में निम्न स्तर का माना जाता है । यदि मैं देवल का विवाह सिंहलदेव से रचा दूँ तो मेरे सजातीय लोग मुझे जाति-बहिष्कृत कर देंगे ।”<sup>१११</sup>

ये संवाद उस समय की सामाजिक स्थितियों का चित्रण करते हैं । इसी तरह अलाउद्दीन के मलिक के साथ यह संवाद – “मलिक ! तुम हिन्दु रियासत में रहते रहे हो, मुस्लिम तहजीब में ताकत हासिल करना ही सबसे बड़ा निशाना है । दामाद तो क्या, हुकूमत पाने के लिए बेटे को भी कत्ल किया जा सकता है ।”<sup>११२</sup> मुस्लिम संस्कृति के दर्शन कराते हैं ।

कमला और देवल के संवाद नारी की दयनीय स्थिति जो कल भी थी और आज भी है को दर्शाते हैं जिसके पास ताकत होती है वही दलित को दबाता है और नारी शुरू से ही दलित रही है । देवल कमला से कहती

है, “नहीं माँ, गुलाम राष्ट्र में तो औरत होना ही गुनाह है । जिसकी भी नजर उठी, गुनाह से भरी लगी । औरत तो महज इन लोगों के लिए बच्चों के खेलने की गुड़िया है, जिसने चाहा अपने बिस्तर में लिटा लिया ।”<sup>११३</sup>

इसी तरह नारी विमर्श को दर्शाते यह संवाद महत्वपूर्ण है जिसमें देवल हेमा से मदद मांगती है, “तुम माहौल से तो परिचित ही हो । इन अत्याचारी काम-लोलुप सुलतानों की दुनियाँ में मेरी देह और मुखड़ा ही मेरे शत्रु बने हैं । एक के बाद एक सताधारी मेरी देह के साथ खिलवाड़ रचाने के लिए नये-नये बहाने और कानून गढ़ रहे हैं । ..... अगर आपको मुझसे सच्ची हमदर्दी है, तो किसी प्रकार मुझे इस सुरक्षा के घेरे से बाहर निकलवा दें ।”<sup>११४</sup>

इस प्रकार मनमोहन सहगल के ऐतिहासिक उपन्यास ‘काला सच’ के संवाद सरल, स्वाभाविक, सहज, पात्रानुकूल, उद्देश्य को उद्घाटित करने वाले, कथा के विकास में सहायक हैं । लेखक इनके माध्यम से पात्रों का चरित्रोद्घाटन करता है, उस समय के यथार्थ वातावरण की सृष्टि करता है यह संवाद लेखक के उद्देश्य व दृष्टिकोण को भी व्यंजित करते हैं । इनके संवाद सरल, स्वाभाविक, संक्षिप्त, प्रसंगानुकूल, पात्रानुकूल, रोचक, प्रवाहमय और चरित्र प्रकाशन की क्षमता रखने वाले हैं । इन्हीं गुणों के कारण यह उपन्यास उच्च कोटि का बन पड़ा है ।

### ➤ भाषा शैली :

भाषा विचार की अभिव्यक्ति तथा विचार-विनिमय का साधन है ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार -

“भाषा उच्चारणावयवों से उच्चरित अध्ययन विश्लेषणीय या ऐच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।”<sup>११५</sup>

‘शैली’ शब्द ‘स्टाइल’ के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पहले लेखक की शाब्दिक अभिव्यंजना के विवेचन तक ही शैली शब्द का अर्थ सीमित रहा था परन्तु आज इसका प्रयोग कला और शिल्प के समस्त उपकरणों की अभिव्यक्ति तक प्रसारित हो गया है। शैली का सम्बन्ध अभिव्यक्ति की कला से हैं।

‘हिन्दी साहित्य कोश’ में शैली की परिभाषा इस प्रकार की है –

“शैली अनुभूत विषय-वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति को सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।”<sup>११६</sup>

शैली का संबंध विषय के साथ न होकर सिर्फ साहित्य के बाह्य रूप से रहता है।

उपयुक्त भाषा शैली उपन्यास की सफलता-असफलता में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह लेखक के भावों को पाठकों तक सम्प्रेषित करने का माध्यम है। उपन्यास के विविध पात्र अपनी बातें एक-दूसरे तक भाषा के माध्यम से ही पहुँचाते हैं।

मनमोहन सहगल ने ‘काला सच’ उपन्यास में यथार्थपरक, अर्थपूर्ण, सशक्त, काव्यमयी, प्रभावशाली, पात्रानुकूल तथा देशकाल की स्थिति के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है जिस कारण उनका यह उपन्यास उल्लेखनीय, बहुचर्चित, प्रभावशाली, सफल एवं सशक्त बन पड़ा है।

भाषा-शैली में लेखक एक तो स्वयं वर्णनात्मक शैली द्वारा अपनी तरफ से लिखता है या पात्रों के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाता है।

मनमोहन सहगल ने अपने इस उपन्यास में इस शैली का सफल प्रयोग किया है। जैसे –

“भारत का इतिहास साक्षी है कि गौरी, गजनवी और खिल्जी के आक्रमणों से लेकर अंग्रेज सरकार के सशक्त नियन्त्रण तक का पूरा समय शासन अविश्वस्त, ईर्ष्यालु, महत्वाकांक्षी और निर्दयी राजकुमारों की लूट का माल बना रहा। ये प्रशासक राजकुमार प्रायः एक-दूसरे के भाई-बन्धु और रिश्ते-नातेदार होते थे अथवा बीच में शक्ति संचित कर दूसरे की कमजोरी का लाभ उठाते हुए बलात उसका शासन-छत्र छीन लेने वाले सेवक, मित्र, विश्वास-पात्र (?) या सहयोगी।”<sup>११७</sup>

लेखक इस प्रकार की सरल-स्वाभाविक भाषा-शैली का प्रयोग कर कथा का वर्णन करता है।

अलंकृत और काव्यात्मक भाषा-शैली का प्रयोग भी मनमोहन सहगल ने इस उपन्यास में किया है। कमला के सौन्दर्य का वर्णन करते लेखक लिखता है - “कली अभी फूल भी नहीं बनी थी, कि भँवरे मँडराने लगे थे।”<sup>११८</sup>

इसी तरह एक अन्य जगह लेखक की भाषा प्रशंसनीय है - “गुबारे को फुलाओ, तो एक सीमा तक फूलकर वह फूट जाता है, पत्थर को कितनी भी ताकत से आकाश में उछालो, एक सीमा के बाद वह नीचे की ओर गिरता ही है, इन्सान लाख शक्तिशाली हो जाए, ऐश्वर्य पा जाए, मौत के सामने उसकी एक नहीं चलती, अहंकार का पतन अनिवार्य है।”<sup>११९</sup>

रायकरणदेव की कामुक प्रवृत्ति की तुलना भँवरे से करते हुए लेखक लिखता है - “यद्यपि वह कामुक था, भँवरे की तरह विभिन्न रूप, रस, गंध के फूलों पर मँडराने और उसका रसपान करने की दुर्बलता उसमें थी।”<sup>१२०</sup>

मुहावरों का प्रयोग करने के कारण लेखक की भाषा अधिक सशक्त बन पड़ी है जैसे -

१. “रूप सुन्दरी के मन-मस्तिष्क पर गहरा आघात लगा ।” (पृ. १०)
२. “शक्तिशाली का सात बीसे सौ होता है ।” (पृ. १७)
३. “उसे काटो तो खून की बूँद न निकले ।” (पृ. १८)
४. “हिन्दुओं की यही आपसी आँच तो उसकी फतह का राज है ।”  
(पृ. २१)
५. “भीलनी के शरीर में वैष्णवी का सौन्दर्य सोने पर सुहागा ।” (पृ. ३८)
६. “पत्नी ने स्थायी सपत्नी के छाती पर मोंग दलने से बचने की खातिर जीवन में समझौता करना उचित समझा ।” (पृ. ४२)
७. “सुल्तान के इकबाल से उसका सिर कुचल दिया गया ।” (पृ. १०२)
८. “वह आस्तीन का साँप है, सबसे पहले शहजादा खिन्न का मर्सिया पढ़ेगा ।” (पृ. १२१)
९. “ताकत और हुकूमत का चोली-दामन का साथ है ।” (पृ. ६०)

लोकोक्तियों के प्रयोग से भी उपन्यास रोचक बन पड़ा है :

१. “आपकी दासी है महाराज, महलों के योग्य कहाँ ? कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली !” (पृ. ४०)
२. “स्वयं पाटण पहुँच कर ‘प्राण जाय पर वचन न जाई’ की कथा करने लगे ।” (पृ. ४१)
३. “ये जाति-बिरादरी वाले मुफ्त में दाल-भात में मूसर चन्द ।” (पृ. ५०)
४. “आप तो महलों की रौनक बनकर रहिए, अन्धे के साथ रोना, आँखों का खोना ।” (पृ. १२६)
५. “सच में गरीबी में आटा गीला होता है ।” (पृ. १५७)

६. “घर की मुर्गी इनके लिए दाल समान होती है ।” (पृ. ६४)

इस उपन्यास में लेखक ने कहावतों का प्रयोग भी किया है ।

१. “राजस्थान वाली कहावत ‘जाकी बिटिया सुन्दर देखी, ताहि पे जाइ धरे हथियार ।” (पृ. ३१)
२. “सबल को नहीं दोष गोसाई ।” (पृ. ४७)
३. “का बरखा जब कृषि सुखानी ।” (पृ. ७१)
४. “होइ है सोई, जो राम रचि राखा ।” (पृ. ७१)
५. “न मरे न खटिया छोड़ ।” (पृ. ६८)

इस उपन्यास में लेखक ने व्यंग्यात्मकता का पुट भी डाला है जो इस उपन्यास की भाषा-शैली को विशेष बनाता है ।

१. “जिस राज्य में राजा ही अनैतिक और अनाचारी होगा, वहाँ प्रजा क्या नहीं करेगी ?” (पृ. १०)
२. “जाइए, एक अबला का सतीत्व भंग करने का गौरव राज्य में प्रचारित कीजिए । प्रजा में अपने पौरुष की दुहाई दीजिए ।” (पृ. ११)
३. “कहाँ है तुम्हारा भगवान ? अल्लाह उनकी मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करना जानते हैं । तुम्हारी तरह चूहों के से छिपने और भगदड़ मचाने की मदद तो खुदा भी नहीं करता ।” (पृ. २६)
४. “आप अपनी बेटी को विधर्मियों के हाथों प्रताड़ित और अपमानित होते देख सकते हो, किन्तु एक कुलीन हिन्दु परिवार में उसका रहना आपकी नाक नीची कर देता है ।” (पृ. ४६)
५. “सुना है आप शादीशुदा है, लेकिन आप अपने उस निकटतम रिश्ते को धोखा देकर किसी अन्य स्त्री की नजदीकी ढूँढ रहे हैं । हिन्दु जीवन-दर्शन इसे हेय समझता है ।” (पृ. ७६)



६. “खिज्रखाँ बड़ी भेद-भरी मुस्कान होंटों पर लिए बोला, “जैसा साँपनाथ, वैसा नागनाथ । बेगम, तुम इनकी तारीख से वाकिफ नहीं ।” (पृ. ११७)

लेखक ने विद्वानों की उक्तियों (कथन) का प्रयोग कर भाषा-शैली को और रोचक व सबल बनाया है । जैसे -

१. “महत्त्वाकांक्षा का बिरवा तो निर्दयता की धरती पर ही परवान चढ़ता है ।” (पृ. ५७)
२. “महत्त्वाकांक्षा का मोती निष्ठुरता की सीपी में ही पलता है ।” (पृ. १००)

लेखकने अपनी भाषा-शैली में दार्शनिकता का प्रयोग भी किया है -

१. “मनुष्य अपने ही कर्मों के बोझ तले न दबता, तो कौन परास्त कर सकता था उसे ।” (पृ. ४५)
२. व्यवस्था की मजबूरी में जल-बुदबुद की नाई फूट गया । (पृ. ५०)

लेखक ने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग किया है साथ ही अलाउद्दीन खिल्जी के आकंमण के कारण मुस्लिम प्रभाव बताया है । उर्दू शब्दावली, तत्सम, तदभव शब्दावली का प्रयोग किया गया है ।

तत्सम शब्दों में अग्नि, चंद्र, शशि-क्रीडा, प्रासाद, मृत्यु, मुख, मित्र, समृद्धि, संस्कार, निमन्त्रण, सतीत्व, पातिव्रत, अग्नि शिखा, सौन्दर्य, नृत्य, यौवन, वर्चस्व आदि का प्रयोग इस उपन्यास में मिलता है ।

तदभव शब्दों में आग, हँसी, चाँद, अँधैरा, आँसू, बहू, धीरज, मौत, मुँह, सच, नाच, रात, भाई आदि का प्रयोग मिलता है ।

उर्दू शब्दों की भरमार भी इस उपन्यास में देखी जा सकती है जैसे - माशा अल्लाह, नकाह, सिपहसालार, हुकूम, दफना, जाम-ओ-मीना,

खुदा-पाक की दरगाह, कल्ल-ओ-गारत, खुदाया, नजाकत, शायराना मिजाज, सीरत, अब्बू, शरीक-ए-जान, इजाजत, मुराद, तामील, सल्लनत, अस्मत, दोखज आदि ।

उपन्यास की कथा गुजरात के पाटण राज्य से संबंधित होने के कारण वहाँ के गीतों का वर्णन भी मिलता है ।

“तमे गोकुल मां गायो चारता,

तमे भरवाड ना भाणेज, मलवा आवो,

सुंदरश्वर शामलिया ।”<sup>१११</sup>

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा-शैली की दृष्टि से ‘काला-सच’ उपन्यास एक सफल रचना है । इसकी भाषा शैली में सरलता, रोचकता, प्रवाहमयता, व्यंग्यात्मकता, बिम्बात्मकता, कहावतों, मुहावरों और अलंकारों का प्रयोग सफल तरीके से किया गया है । भाषा-शैली के सारे गुण विद्यमान होने के कारण ‘काला-सच’ उपन्यास सफल बन पड़ा है । उपन्यास की भाषा काव्यमयी होने के साथ-साथ सशक्त और प्रभावशाली है ।

### ➤ उद्देश्य शिल्प :

डॉ. रामलखन शुक्ल ने उपन्यासकार के दृष्टिकोण को शिल्प की मुख्य वस्तु स्वीकारते हुए लिखा है -

“लेखक के दृष्टिकोण के निर्माण में उसका परिवेश, वस्तु-जगत, उसके अध्ययन, शिक्षा तथा उसका अन्तर्जगत उत्तरदायी होता है और यही सब वे साधन हैं जहाँ से वह अपनी रचना-सामग्री ग्रहण करता है, जिसके आधार पर इसका रचना प्रसाद निर्मित होता है ।”<sup>११२</sup>

उद्देश्य उपन्यास का महत्वपूर्ण अंग है । कोई भी रचना बिना उद्देश्य के नहीं होती । मनमोहन सहगल का ऐतिहासिक उपन्यास

‘काला-सच’ यहाँ एक ओर अलाउद्दीन खिल्जी के आक्रमण, मंदिरों की तोड़-फोड़, लूट आदि का वर्णन करता है, वहीं दूसरी ओर नारी की तार-तार होती अस्मत्, धर्म परिवर्तन, ऊँच-नीच, जाति-पाति का भेद आदि को दिखा समाज को एक नई दिशा देने की कोशिश की है। नारी को यह संदेश देने की कोशिश की है कि अगर नारी हिम्मत करें तो विपरीत स्थितियों से निकल सकती है। लेखक का उद्देश्य तदयुगीन नारी की स्थिति का चित्रांकन कर उसके अदम्य साहस को पहचानने का संदेश देना है। इस उपन्यास की कथावस्तु पाटण प्रदेश के एक प्रचलित इतिहास पर आधारित सत्य से संबंधित है उपन्यासकार यथार्थ और कल्पना के मिश्रण द्वारा इस ऐतिहासिक उपन्यास को बड़े रोचक ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसकी कथा का आधार इतिहास का कठोर सत्य है। नारी के शोषण की दिल दहला देने वाली इस औपन्यासिक तस्वीर में हम नारी को ही नारी का शोषण करते देखते हैं। रूप पर आसक्त होने पर कमला रायकरण को सही रास्ता दिखाने की जगह उसके पाप और अपराध में उसका सहयोग देती है। वह राजा से कहती हैं – “आप रूप पर आसक्त हो गए हैं, तो समस्या क्या है ? जाइए, आजकल अकेली ही तो हैं वह, एकाध दिन उसके पास रह लीजिए। मुझे कोई आपत्ति नहीं।”<sup>१२३</sup>

उपन्यास में एक अन्य स्थान पर जब रत्ना पर रायकरण मोहित होता है तो भी रानी उसकी सेवा में रत्ना को उपस्थित करती है – “इसके पश्चात् तो एक अनकही संधि हो गई। राजा कमलादेवी पर सपत्नी नहीं लाएगा, कमलादेवी यदा-कदा जीवन-यात्रा में राजा का मन रखने में उसको सहयोग देगी।”<sup>१२४</sup>

मुस्लिम शासकों में नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय थी उनको बाहर की घटनाओं की कोई जानकारी नहीं होती थी – “हरम और शाही महलों की औरतों को सल्तनत में घटने वाली घटनाओं का पता तभी चलता था,

जब कोई बाहरी दुश्मन सल्तनत पर कब्जा कर लेता और औरतों की लूट के लिए भीतर आता । लूट के माल से अधिक मुस्लिम शासन में औरत की कीमत न थी । इसीलिए बड़े-बड़े षड्यंत्र औरतों की जानकारी के बगैर ही सरंजाम हो जाते थे ।”<sup>१२५</sup>

सचमुच कोई कीमत नहीं है औरत की इस युग में । घर हो या बाहर, समाज हो या राजनीति, धार्मिक अनुष्ठान हो या पारम्परिक पर्वोत्सव, औरत को कोई नहीं पूछता । ..... पाँव की जूती कहा या शैतान की बेटी, इज्जत कभी किसी ने न दी ।”<sup>१२६</sup>

इस प्रकार उपन्यासकार का उद्देश्य नारी की कारुणिक स्थितियों का चित्रण करना है जिसमें वह हिन्दु हो या मुस्लिम सब के लिए दलित व भोग की ही वस्तु है भाई-भाई की पत्नी को ही मैली नजर से देखता है अपने रिश्ते के भाईयों यहाँ तक कि पिता तक को हुक्मत के लिए मरवा दिया जाता है । महत्त्वाकांक्षा रखने वाले का अंत बुरा ही होता है । जो जिसके साथ जैसा करता है उसे वैसा ही भुगतना पड़ता है । पति और पुत्र के कातिल की दुल्हन बनने के लिए औरत मजबूर है । अलग-अलग व्यक्तियों से अपमानित होते वह मौत का वरण तो करना चाहती है पर वह भी उसके हाथ में नहीं । उपन्यासकार उपन्यास के अंत में देवल में विद्रोह की भावना भर कर उसके अंदर की क्षत्राणी को जगा मानो समस्त नारीत्व को जगा रहा है और उसे महलों से बाहर भेज समस्त नारी जाति को विपरीत परिस्थितियों को सामना करने की प्रेरणा दे रहा है ।

नारी की स्थिति को ऊपर उठाने के अतिरिक्त लेखक हम सब को एकजुट होने की प्रेरणा भी देता है क्योंकि एकता के अभाव में सबको दुःख सहने पड़ते हैं - “जनता पारस्परिक वैर, विरोध और भेद-भावपूर्ण असंगठन के कारण हर कदम पर पिट रही थी ।”<sup>१२७</sup>

लेखक का उद्देश्य यह भी है कि इंसान को अपनी मदद स्वयं करनी चाहिए । लेखक उपन्यास में अलगू के व्यंग्य द्वारा स्पष्ट करता है – “कहाँ हैं तुम्हारा भगवान ? अल्लाह उनकी मदद करता है, जो खुद अपनी मदद करना जानते हैं । तुम्हारी तरह चूहों-के-से छिपने और भगदड़ मचाने वालों की मदद तो खुदा भी नहीं करता ।”<sup>१२८</sup>

लेखक का उद्देश्य मुस्लिम संस्कृति के दर्शन करवाना भी है वहाँ जाम-ओ-मीना चाहे हराम गिने जाते हैं परन्तु – “मुस्लिम दरबारों में बादशाहों, मन्त्रियों, सेनापतियों का बडप्पन सदैव शराब और शबाब में डूबकर ही उज्ज्वल होता रहा है ।”<sup>१२९</sup>

मुस्लिम संस्कृति में चार शादियों तक की इजाजत है और तलाक-तलाक-तलाक तीन बार कह देने से ही सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं वहाँ स्त्री-पुरुष की दोस्ती का अर्थ एक ही है जबकि भारतीय संस्कृति इसके बिल्कुल विपरीत है । भारतीय संस्कृति की महानता दर्शाना भी लेखक का उद्देश्य है ।

लेखक का उद्देश्य ताकत और हुकूमत का चोली-दामन का साथ दिखाकर सिद्ध करना है कि जिसके पास ताकत होती है वही हुकूमत को कब्जे में कर दलितों, कमजोरों पर अच्याचार करता है उसकी महत्वाकांक्षाएँ बढ़ती है और उसका अंत भी बुरा होता जाता है क्योंकि कहा भी जाता है ‘जैसी करनी वैसी भरनी’ । “इस्लामी हुकूमत में सभी दावेदारों का सिर कलम कर देने की रवायत रही है । ..... खुदा-न-खास्ता, अगर कल अब्बा हुकूमत पर कब्जा कर बैठे, तो मेरी जगह भी हरम की उन औरतों में होगी, जिन्हें रात में कभी भी कोई भी दबोच लेता है ।”<sup>१३०</sup> हमरो की यह सोच बताती है कि बाप-बेटी, भाई-भाई, बाप-दामाद, बाप-बेटे इन रिश्तों की हुकूमत के सामने कोई कीमत नहीं ।

उपन्यास के अंत में देवल का विद्रोह और दिल्ली की जनता का विद्रोह दिखाने के पीछे उपन्यासकार का उद्देश्य हम सब में एक जागृति को भरना है कि हमें गुलामी और अन्याय के खिलाफ आवाज उठानी ही चाहिए । बिना आवाज उठाए हम दबते ही रहेंगे और जुल्मों के शिकार होते रहेंगे पर जब हम इसके विरुद्ध आवाज उठाएंगे तो विपरीत परिस्थितियों का सामना कर इनसे निकल जाएंगे ।

उपन्यासकार मनमोहन सहगल अपने उपन्यास के उद्देश्य को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं – “यह ऐतिहासिक अभिशाप की ऐसी कथा है, जो नैतिकता के स्तर पर विश्व को ‘जैसी करनी वैसी भरनी’ का संदेश देती है । पिता के कर्मों का फल पुत्री को नहीं मिलता, फिर भी जनक-जननी की मूर्खताओं से पुत्री का प्रभावित होना क्या सहज नहीं ? अभिप्रायः यह कि कर्म-चक्र निश्चय ही व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं होता । कर्म के दायरे में माता-पिता, घर-परिवार के कृत्य और गतिविधियाँ, सभी शामिल होती होंगी । अतः मात्र अपने ही कर्मों को उत्तम बनाकर हमें उत्तम जीवन जीने की आशा नहीं करनी होगी । एक सामाजिक घटक होने के नाते अपने कर्मों का दायित्व ओढ़ने के साथ-साथ अपने घेरे के अत्य लोगों का दायित्व भी संभालना अपेक्षित होता है – यही ‘काला सच’ का संदेश है । नियति से जूझने के लिए सत्कर्म करो, जिनके बीच रहो उन्हें भी सत्कर्म की प्रेरणा दो । अपने स्वार्थ की रक्षा में दूसरों के लिए गड़ढा खोदना हमारे अपने गिरने की सम्भावना को जन्म देता है । यह ‘सत्य’ है और क्योंकि नियति के स्तर पर यह सत्य पीड़ा है और विपत्ति का आकलन करता है, इसलिए ‘काला’ है ।

डॉ. मनमोहन सहगलजी की उपन्यास यात्रा के इस सर्वेक्षण से कुछ निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है ।

सबसे पहले उन्होंने सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, पौराणिक तथा सामयिक जीवन की विभिन्न कथाओं को औपन्यासिक रूप में प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। वे जीवन के एक पक्ष तक सीमित नहीं रहे। बल्कि उन्होंने ने भारत के अतीत एवं वर्तमान तथा देश के विभिन्न क्षेत्रों के जनजीवन उनके संघर्ष एवं द्वन्द्व और उनकी समस्याओं को यथार्थता तथा जीवन्तता के साथ उद्घाटित किया है।

सभी उपन्यासों की कथा वस्तुओं से स्पष्ट है कि लेखक देशप्रेमी रचनाकार है और वह प्रत्येक पक्ष एवं समस्या को देशहित की दृष्टि से देखता है। चाहे कश्मीर का प्रश्न हो अथवा सरकार की आरक्षण नीति, उपन्यासकार सर्वत्र सन्तुलित एवं विवेकपूर्ण जीवन दृष्टि से कथा और पात्रों की सृष्टि करता है और बिना किसी पूर्वग्रह के हिन्दु मुसलिम जैसी समस्याओं पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। लेखक की यह तटस्थता प्रशंसनीय है। डॉ. सहगलजी अपने उपन्यासों में एक कथारस की सृष्टि में सफल हुए हैं। पाठक आदि से अन्त तक कथारस का आस्वादन करता है और मस्तिष्क में भी विचारों का मंथन चलता रहता है। इस प्रकार ये उपन्यास पाठक के मन को प्रभावित करते हैं और उसकी भावनाओं को समृद्ध करते हैं। लेखक की भाषा क्षमता का वैशिष्ट्य भी उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार डॉ. सहगलजी पंजाब की धरती के एक मात्र सशक्त एवं जीवन्त हिन्दी उपन्यासकार ही नहीं है बल्कि अपनी सर्जनात्मक वैशिष्ट्य से हिन्दी उपन्यास संसार में भी विशिष्ट स्थान के अधिकारी है।

### संदर्भ ग्रन्थः

१. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ०४
२. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १५
३. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ०५
४. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ०६
५. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १६
६. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या २३
७. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ५२
८. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ६८
९. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ७३
१०. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १०६
११. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ०८
१२. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ३१
१३. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या २१
१४. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १००
१५. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ७१
१६. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १०८
१७. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ११०
१८. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ११५
१९. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १२३
२०. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १०३
२१. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ३२१
२२. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १६६
२३. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या २५७
२४. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या २६१



२५. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या २६२
२६. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ५८
२७. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ५४
२८. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ११७
२९. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १७६
३०. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या २१
३१. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ६७
३२. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १०५
३३. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ३०६
३४. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ०६
३५. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या १५
३६. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ३८
३७. जिन्दगी और जिन्दगी पृष्ठ संख्या ११८
३८. एक और रक्तबीज पृष्ठ संख्या ११८
३९. गुरु लाधारे पृष्ठ संख्या २०
४०. गुरु लाधारे पृष्ठ संख्या ३१
४१. गुरु लाधारे पृष्ठ संख्या ४७
४२. जिन्दगी और आदमी पृष्ठ संख्या ५६
४३. जिन्दगी और आदमी पृष्ठ संख्या ६६
४४. जिन्दगी और आदमी पृष्ठ संख्या ६७
४५. जिन्दगी और आदमी पृष्ठ संख्या १२१
४६. काला सच, डॉ. सहगल, पृ. २७
४७. मध्यकालीन भारत का इतिहास, डॉ. मान एम. एस., पृ. १००
४८. 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ०१
४९. 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ०३

- ५० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ३३  
 ५१ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ३६  
 ५२ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ८  
 ५३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १०  
 ५४ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४३  
 ५५ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४७  
 ५६ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १२८  
 ५७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ०७  
 ५८ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १२  
 ५९ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ८३  
 ६० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २५  
 ६१ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४१  
 ६२ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४१  
 ६३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४६  
 ६४ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४६  
 ६५ प्राधिकृतशोध पत्रिका, सं. जितेन्द्र, पृ. १६६  
 ६६ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १८  
 ६७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ५६  
 ६८ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २६  
 ६९ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २६  
 ७० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २५  
 ७१ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १५  
 ७२ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४७  
 ७३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ७५  
 ७४ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ७५

- ७५ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ७६
- ७६ प्राधिकृत शोध पत्रिका, सं. जितेन्द्र, पृ. १६५
- ७७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ८१
- ७८ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ८७
- ७९ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ५७
- ८० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ११७
- ८१ शब्द सरोवर पत्रिका - राज्यपाल हुकुमचंद, अंक-१६, पृ. ४१
- ८२ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १४६
- ८३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १५०
- ८४ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १५६
- ८५ प्राधिकृतशोध पत्रिका, अंक-२१, सं. जितेन्द्र, पृ. १६३
- ८६ प्राधिकृतशोध पत्रिका, अंक-२१, सं. जितेन्द्र, पृ. १६४
- ८७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १६०
- ८८ साठोतरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास, वेरेन शोभा, पृ. ३८
- ८९ साठोतरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास, वेरेन शोभा, पृ. ३८
- ९० साठोतरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास, वेरेन शोभा, पृ. ३८
- ९१ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ०१
- ९२ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४४
- ९३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १४७
- ९४ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ७८
- ९५ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ३८
- ९६ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १
- ९७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २
- ९८ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १४
- ९९ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १६

- १०० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २४
- १०१ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २८
- १०२ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १६०
- १०३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १४६
- १०४ साठोतरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास, वेंकेकर शोभा, पृ. ३६
- १०५ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ७
- १०६ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ६
- १०७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ११
- १०८ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १२
- १०९ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १६
- ११० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २६
- १११ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४६
- ११२ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ६०
- ११३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १२८
- ११४ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १५२
- ११५ भाषा विज्ञान समीक्षा, शर्मा हेमदेव, पृ. २०८
- ११६ साठोतरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास, पेरेकर शोभा, पृ. ३०
- ११७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १३६
- ११८ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ३१
- ११९ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ११८
- १२० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २३
- १२१ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ५
- १२२ साठोतरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास, वेरेकर शोभा, पृ. ३६
- १२३ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ७
- १२४ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ४३

- १२५ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ३१०३  
१२६ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १०५  
१२७ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. १६  
१२८ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. २६  
१२९ 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. ६४  
१३० 'काला सच', डॉ. सहगल, पृ. अंत में जिद पर



## द्वितीय अध्याय समसामयिकता : स्वरूप एवं आयाम

- ❖ विषय प्रतिपादन
- ❖ समसामयिकता : व्युत्पत्ति, संज्ञा एवं अर्थविचार
  - (१) 'समय' शब्द और अर्थ
  - (२) 'सामयिक' एवं 'सामयिकता' शब्द और अर्थ  
विभिन्न हिन्दी कोशों के अनुसार  
हिन्दी-अंग्रेजी तथा अंग्रेजी-हिन्दी कोशों के अनुसार
  - (३) निकटवर्ती संज्ञाएँ
  - (४) समसामयिकता
  - (५) समसामयिकता से तात्पर्य
  - (६) समसामयिकता के समीपवर्ती सन्दर्भ
    - समसामयिकता और आधुनिकता
    - समसामयिकता और युगबोध
    - समसमयिकता और समकालीनता
    - समसामयिकता और तात्कालिकता

- समसामयिकता और नवीनता
- समसामयिकता के विविध आयाम
  - (१) सामाजिक आयाम
  - (२) आर्थिक आयाम
  - (३) राजनीतिक आयाम
  - (४) सांस्कृतिक आयाम
- (७) समसामयिकता
  - परिवर्तन के कारण

## द्वितीय अध्याय समसामयिकता : स्वरूप एवं आयाम

### ❖ विषय प्रतिपादन :

आधुनिक युग में सन् १९६० के बाद साहित्य की विभिन्न संज्ञाओं पर व्यवस्थित रूप से विचार हुआ है। नये आन्दोलनों का जन्म होता है और नयी संज्ञाएँ अस्तित्व में आती हैं, तब उनपर अनेक दृष्टियों से सोचने का स्तुत्य प्रयास साहित्य जगत में निरन्तर हुआ है। आज की स्थिति इस दृष्टि से संतोषजनक कही जा सकती है। साहित्य में व्यवहृत उन संज्ञाओं को लेकर विवाद केवल हमारे यहाँ ही नहीं, अन्यत्र भी ठीक ठीक प्रमाण में उठा है। स्थल, काल, परिवेश, जनमानस की बदलती हुई मानसिकता के संदर्भ में साहित्यिक विभावनाओं में परिवर्तन हमेशा होता रहा है। ऐसी संज्ञाओं में उनके अर्थ में संकोच एवं विकास की प्रक्रिया का होना भी स्वाभाविक है। परिणति के रूप में तब उन संज्ञाओं को लेकर पर्याप्त मात्र में मतमतान्तर चल पड़े हैं। उलझन पैदा होती है। इतना ही नहीं तत्सम्बन्धी प्रश्न व अभिप्राय पेचीदा बन जाता है। कभी कभी संज्ञा को लेकर किए गये अर्थ विधान संज्ञा विमुखता की स्थिति पैदा कर देता है। ऐसा होना सहज बात है, किन्तु ऐसे वख्त पर किसी भी संज्ञा को उसके समग्र परिप्रेक्ष्य में देखना अनिवार्य हो जाता है। उसमें समय-समय पर हुए परिवर्तनों की प्रक्रिया का अंकन करना चाहिए। संज्ञा जिन कारणों से इधर उधर होती है, यह सब लक्ष में होना चाहिए। महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियों में उसका कहाँ कहाँ सूक्ष्मता पूर्वक विनियोग हुआ है और कैसे परिणाम सामने आये हैं? उससे कैसे परिणाम निर्मित हुए हैं? इन सबका धैर्यपूर्वक विचार करना अनिवार्य है। अर्थात् उसकी वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में



जाँच पड़ताल होनी चाहिए । जिससे कि यह संज्ञा अधिक स्पष्ट हो सके तब सम्भव है कि हम संज्ञा के मूल अर्थ के करीब पहुँचने में सफल हो सके ।

समसामयिकता शब्द प्रयोग के साथ ही समानान्तर विचार प्रक्रिया प्रबुद्ध पाठक के मन में जगती है कि यह “समसामयिकता” क्या चीज है ? साहित्य में उसकी क्या आवश्यकता है ? कौन-कौन से रूप में यह निरूपित होती रही है ? रचनाकार उसके निरूपण के लिए क्यों विवश बनता है ? साहित्यकार उसका प्रयोग करके क्या सिद्ध करना चाहता है ? चूँकि ऐसी प्रश्नावली ही हमें समसामयिकता के मूल तक ले जा सकती है और उसकी वास्तविक पहचान दिलाने में सहयोगी हो सकती है ।<sup>१</sup>

अतः मैं सबसे पहले समसामयिकता की अवधारणा को स्पष्ट करना चाहूँगी । तदोपरान्त उसकी निकटवर्ती संज्ञा के साथ उसका सम्बन्ध एवं सूक्ष्म भेद का विवेचन जिससे कि विवेच्य संज्ञा की अवधारणा का मूल स्पष्ट हो सके और उसका समग्र अर्थबोध प्राप्त हो सके ।

### ❖ समसामयिकता : व्युत्पत्ति, संज्ञा एवं अर्थविचार :

समसामयिकता अपने आप में ऐसी विभावना है, जो न सिर्फ जटिल और कठिन है, बल्कि अपरिभाष्य भी है और कुछ सीमा पर्यन्त व्यापक भी है । जिस प्रकार कुछ समय पहले प्रत्येक “आधुनिक” ने “आधुनिकता” की व्याख्या करना अपना “परमपावन” कर्तव्य समझा, उसीप्रकार समकालीन साहित्यकारों ने “समकालीनता” को अपने-अपने दृष्टिकोण को व्याख्यायित किया । समकालीनता को अलग-अलग आधारों पर जाँचा परखा भी गया है । अतः समसामयिकता में निहित अर्थ को अभिव्यंजना करने से पूर्व इसकी व्युत्पत्ति, संज्ञा एवं अर्थ विचार पर दृष्टिक्षेप करना अत्यन्त आवश्यक होगा ।<sup>२</sup>

“समसामयिकता” शब्द के मूल में “समय” संज्ञा रही है । इसलिए “समय” शब्द उसके पर्याय समय से अन्यशब्दों का रूपान्तर और अर्थ आदि पर विचार करने से “समसामयिकता”शब्द के अभिप्रेत अर्थ की प्राप्ति होगी ।<sup>३</sup>

### (१) ‘समय’ शब्द और अर्थ :

“समय” शब्द मूलतः संस्कृत भाषा का शब्द है । यह शब्द “सम” धातु में इ = अय् प्रत्यय लगकर बना है । जिसका अर्थ है काल, मौका, अवसर इत्यादि ।<sup>४</sup>

### (२) ‘सामयिक’ एवं ‘सामयिकता’ शब्द और अर्थ :

“समय” में ‘इक्’ प्रत्यय के योग से सामयिक शब्द की सृष्टि होती है । सम्बन्धार्थक तद्धित प्रत्यय इक् होता है ।” समय + इक् = सामयिक जिसका अर्थ होता है ।<sup>५</sup>

- प्रथानुसारी,
- परम्परागत,
- नियत समय का पालन करनेवाला,
- समयसम्बन्धी,
- समय पर का,
- वक्तसम्बन्धी,
- समयोचित,
- समय से सम्बन्ध रखने वाला,
- वर्तमान समय का,
- समय को देखते हुए उपयुक्त या ठीक,
- समयानुसार इत्यादि ।

“सामयिक” विशेषण के साथ “ता” परसर्ग लगने पर इसकी भाववाचक संज्ञा “सामयिकता” बनती है – सामयिक + ता = सामयिकता ।  
इसका अर्थ :-

सामयिक होने का भाव, वर्तमान समय, परिस्थिति आदि के विचार से युक्त दृष्टिकोण या अवस्था ।<sup>६</sup>

“सामयिकता” संज्ञा के पूर्व “सम” विशेषण लगकर “समसामयिकता” ऐसा एक नया ही अर्थ सभर शब्द निर्मित होता है ।

सम्=समय=इक=ता=समसामयिकता । “सम” का अर्थ, एक ही, समय के साथ, एक-सा, सु संगत, समान होता है ।<sup>७</sup>  
कुल मिलाकर “समसामयिकता” का अर्थ –  
एक ही समय का ।<sup>८</sup>

एक ही समय में होनेवाला निष्पन्न होता है । समसामयिकता की विशद व्याख्या के लिए विभिन्न भाषाओं के कोशों का अभिमत ग्रहण करना आवश्यक होगा ।<sup>९</sup>

### विभिन्न हिन्दी कोशों के अनुसार :

- (१) नालन्दा विशाल शब्द सागर में “सम” और “सामयिकता” दो अलग-अलग शब्द प्राप्त होते हैं । सम =समय, यथावत ।  
सामयिकता = (संज्ञा स्त्री) सामयिक होने का भाव, वर्तमान समय, परिस्थिति आदि के विचार से युक्त दृष्टिकोण या अवस्था ।<sup>१०</sup>
- (२) मानक हिन्दी कोश में “समसामयिकता” और “समकालीन” विशेषण परक शब्द को एक ही अर्थ के द्योतक रूप में प्रस्तुत किया गया है । यथा – समसामयिक- वि. (सं.) = समकालीन – वि. (सं.) =

- (१) जो उसी समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो, जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हैं । एक ही समय में रहनेवाले । जैसे –महाराणा प्रताप अकबर के समकालीन थे ।<sup>११</sup>
- (२) उत्पत्ति, स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में हुए हो ।<sup>१२</sup>
- (३) बृहत हिन्दी कोश में भी “समसामयिकता” अथवा “समकालीनता” के विशेषण परक “समसामयिक” और “समकालीन शब्दों को समानार्थक संज्ञा के रूप में प्रयोजित किया गया है । जैसे – समसामयिक – वि. (कन्टेम्पोरेरी) जो एक ही समय में हुए हों या विद्यमान रहे हों ।<sup>१३</sup>

समकालीन वि. एक समय में रहने या होनेवाला समसामयिक ।<sup>१४</sup>

उपर्युक्त कोशों के अनुसार दिए गये अर्थों में बहुधा समानता लक्षित होती है । “समसामयिकता” भाववाचक संज्ञा के विशेषणों – “समसामयिक” एवं “समकालीन” में कोई अर्थगत भेद दृष्टिगोचर नहीं होता ।

हिन्दी भाषा में प्रयुक्त “समसामयिकता” संज्ञा का अर्थ देखने के उपरान्त हिन्दी-अंग्रेजी तथा अंग्रेजी-हिन्दी कोशों में इस संज्ञा के अर्थों की खोज जरूरी है ।

### **हिन्दी-अंग्रेजी तथा अंग्रेजी-हिन्दी कोशों के अनुसार :**

- (१) शिक्षार्थी हिन्दी – अंग्रेजी शब्द कोश में “समकालीन” शब्द प्राप्त होता है । तदनुसार – समकालीन Samkalin a Contemporary घटनाएँ Events, समस्याएँ Problems समाज, Society, साहित्य Literature, तुलसी और मीरा थे Tulsi and Meer were —ontemporaries.<sup>15</sup>
- (२) बृहत अंग्रेजी- हिन्दी कोश में “समसामयिकता” के जैसा अर्थबोध करानेवाली उस कैल समुदाय की अयसंज्ञाएँ उपलब्ध होती है ।  
यथा—

Contemporaneity, Contemporaneousness

= Contemporariness<sup>16</sup>

समवयस्कता, समकालीनता अस्मत्कालिकता, समसामयिकता ।<sup>१७</sup>

- (३) व्यावहारिक अंग्रेजी, हिन्दी कोश में “समसामयिक” विशेषणपरक संज्ञा के लिए अन्य अभिप्रेत संज्ञाओं का जिक्र किया गया है । जैसे = “समकालीन” “समकालिक”, अद्यतन, आधुनिक” आदि ।

Contemporaneous- Adj. Contemporary,

समकालीन ।<sup>१८</sup>

Contemporary—Adj. 1. belonging to the same time or period,

समकालीनता, समकालिक । 2. Upto date, modern,

अध्यतन, आधुनिक ।<sup>१९</sup>

- (४) साहित्यिक पारिभाषिक शब्द कोश के अन्तर्गत “समसामयिक” और “समकालीन” विशेषणपरक संज्ञाओं को समानार्थी बताते हुए इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है ।

Contemporaneous :

समसामयिकता, समकालीनता ।

कला और युग के सम्बन्ध पर विचार करनेवालों के स्पष्टतः दो मत लक्षित होते हैं :

- (५) बहुत से चिन्तकों का विचार है कि कोई भी रचना अपने युग के लिए तो महत्त्वपूर्ण होती है, कई अंशों में परवर्तीयुग के लिए भी उसका महत्त्व बना रहता है । इस प्रकार यह प्राचीन भी होती है और अर्वाचीन भी ।
- (६) कला और युग के सम्बन्ध में कुछ अन्य चिन्तकों का मत है कि किसी भी कलाकृति का पूर्ण अध्ययन करने के लिए उसके युग की

परिस्थितियों का सम्यक ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि रचनाकार प्रत्यक्षतः उन्हीं से गम्भीर प्रेरणा प्राप्त करता है ।<sup>२०</sup>

यहाँ ध्यातव्य यह है कि “समसामयिकता” के संदर्भ में “समसामयिक” या “समकालीन” विशेषण परक संज्ञा के लिए घटनाएँ, समस्याएँ, समाज, साहित्य तथा “परिस्थितियों” आदि अर्थबोध आलोच्य बिषय के लिए अभिप्रेत है, जो उक्त कोशों के द्वारा निर्देशित है ।

गुजराती भाषा शब्द कोशों के अनुसार: विभिन्न गुजराती शब्द कोशों में “भगवद्गोमण्डल,” “बृहद्गुजराती कोश”, “सार्थ गुजराती वर्तनी कोश में समसामयिकता” के लिए “समकालीन”, “समकालीनता” “समसामयिक” जैसी समतासूचक संज्ञाएँ मिलती हैं, जो अन्य भाषा के शब्दकोशों की भाँति अर्थबोध कराती हैं । यथा –

(१) भगवद्गो मण्डल : समकालीनता (सं) स्त्री, एक ही समय में होने का भाव, समकालीनपन, एक ही वक्त में होने वाला ।<sup>२१</sup>

समसामयिक (सं) वि. एक ही समय में स्थित या उत्पन्न, समकालीन ।<sup>२२</sup>

(२) बृहद् गुजराती कोश : समकालीन-वि. एक ही समय का समसामयिक ।<sup>२३</sup>

समसामयिक -वि. (सं)समकालीन ।<sup>२४</sup>

(३) सार्थ गुजराती वर्तनी कोश : समकालीन -वि.(सं) एक ही काल में साथ-साथ विद्यमान ।<sup>२५</sup> समसामयिक -वि.(सं) समकालीन ।<sup>२६</sup>

(४) अंग्रेजी कोशों के अनुसार :

(१) न्यू वेवस्टर्स डिक्शनरी इंग्लीश लैंग्विज कॅन्टेम्पोरेनियस (समसामयिक) एक ही समय में साथ-साथ विद्यमान होना अथवा किसी एक युग से सम्बन्ध होना, समकालीन । कॅन्टेम्पोरेनियसली (समसामयिकता) वि. समकालीनता –

समकालिकता । कॅन्टेम्पोरेरी (समकालीन) संज्ञा, बहु. समवयस्कृता, एक ही समय का, समकालीनता ।<sup>२७</sup>

- (२) कॉलीन्स इंग्लीश डिक्शनरी : कॅन्टेम्पोरेनियस (समसामयिक) वि. एक ही समय में साथ-साथ विद्यमान, घटित होना, समसामयिकता अथवा समकालीनता । कॅन्टेम्पोरेरी (समकालीन) वि -(१) एक ही समय से सम्बद्ध, एकही समय में विद्यमान अथवा घटित । (२) वर्तमान का अथवा वर्तमान में घटित ।
- (३) आधुनिक के सदृश, अथवा वर्तमान विचार शैली, प्रचलित रीत, उपाय इत्यादि ।
- (४) समवयस्कृता
- (५) एक ही काल में साथ-साथ विद्यमान, समकालीन ।
- (६) कोई भी घटना, व्यक्ति जो समकालीन है ।
- (७) प्रतिस्पर्धी पत्रकारिता ।<sup>२८</sup>

स्पष्ट है कि हिन्दी, हिन्दी-अंग्रेजी तथा अंग्रेजी कोश, गुजराती एवं अंग्रेजी कोशों में 'समसामयिकता' के मद्दे नजर 'समसामयिक' या 'समकालीन' अथवा 'समकालिक' शब्दों की जो विभिन्न अर्थछाया प्राप्त होती है, उनमें समानता सूचक शब्द अधिक है । भारतीयभाषाओं के संदर्भ में यह बात बहुत स्पष्ट है कि "समसामयिकता" के जो विविध अर्थ हैं, उन्हीं अर्थों में यह शब्द भिन्न-भिन्न भारतीय आर्यभाषाओं में प्रचलित है ।

### (३) निकटवर्ती संज्ञाएँ :

"समसामयिकता" एक कलावधि कम है । वह एक स्थिति-विशेष का बोध कराती है । इसकी निकटवर्ती और समानान्तर चलनेवाली, एक ही भाव, आशय और अर्थ को गहन करनेवाली तथा थोड़ी-बहुत भिन्न अर्थाच्छाया के साथ व्यवहृत होनेवाली संज्ञाओं में आधुनिकता, नवीनता,

तात्कालिकता, युगबोध, इत्यादि का समावेश होता है। जिनका विस्तृत विवेचन आगे करेंगे।<sup>२९</sup>

#### (४) समसामयिकता :

“समसामयिक” की अवधारणा में “समय” शब्द समूहवाची है, “सामयिक” विशेषण है और “सामयिकता” भाववाचक संज्ञा है। संश्लिष्ट रूप निर्माण होता है। समसामयिकता के लिए अंग्रेजी में “कोइवल” (Coeval अथवा “कन्टेम्पोरेनिटी”।<sup>३०</sup>

(Contemporaneity) कन्टेम्पोरेनियसनेस”।<sup>३१</sup>

[Contemporaneousness] “कन्टेम्पोरेरिनेस”।<sup>३२</sup>

[Contemporariness] तथा “सिमलटेनिअस”।<sup>३३</sup>

[Simultaneous] शब्द उल्लेखनीय हैं।<sup>३४</sup>

हिन्दी में इसके लिए पर्यायवाची शब्द के शब्द उल्लेखनीय हैं। रूप में “समकालीनता” विशेष प्रचलित है, जो पीछे विभिन्न कोशों के आधार पर बताया गया है। जिसका अर्थ “उसी समय या कालखण्ड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति। समसामयिकता संज्ञा समय सापेक्ष है और एक स्थिति विशेष का ज्ञान कराती है। डॉ. चन्द्रशेखर इसे “समकालीनता” तथा “आधुनिकता” के परिप्रक्ष्य में लगाते हुए कहते हैं कि – “समसामयिकता अपने आप में एक काल प्रक्रिया है और “समकालीनता” उसमें ही किन्तु उससे भिन्न एक अन्य प्रकार की प्रक्रिया है। एक बड़े लीवर के साथ एक प्रक्रियात्मक यॉत्रिकता में जुड़े अन्य छोटे-छोटे लीवर हैं जो एक साथ ही गतिमान होते हैं, एक दूसरे की सापेक्षता में गतिमान होते हैं।<sup>३५</sup>



वस्तुतः डॉ. चन्द्रशेखर ने समय की परिधि तथा उसके आयाम के आधार पर “समसामयिकता” को “आधुनिकता” से सीमित और “समकालीनता” से व्यापक बताते हुए तीनों को परस्पर पृथक् बताया है।

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर “समसामयिकता” और “समकालीनता” को एक ही मानते हुए इसके तीन अर्थ संकेतित करते हैं – (१) कालविशेष से सम्बद्ध (२) व्यक्ति विशेष के कालयापन से सम्बद्ध (३) साहित्य, समाज और प्रवृत्ति-विशेष से सम्बन्धित संश्लिष्ट कालखण्ड।”<sup>३६</sup>

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार :डॉ. नगेन्द्र समसामयिकता सीमित एवं संकुचित अर्थ में ही आधुनिकता के समकक्ष मानते हैं – “आज के सीमित संदर्भ में आधुनिक का एक संकुचित अर्थ “समसामयिक” भी उभरकर सामने आया है। इस सन्दर्भ में आधुनिकता का अर्थ है, वर्तमान युगबोध, यही दृष्टि वर्तमान पर ही केन्द्रित रहती है।”<sup>३७</sup>

डॉ. नीहार रंजन रे – “समसामयिकता” और “आधुनिकता” को एक रूप करते हुए एक-दूसरे की पहचान को बेहतरीन ढंग से मूर्त करनेवाली है। “समसामयिकता” शब्द “आधुनिकता” की अवधारणा को बेहतर ढंग से मूर्त करता है।”<sup>३८</sup>

शैलेश मटियानी का मत इस प्रकार है – “समसामयिक” और आधुनिक में जो अन्तर है, वह केवल समय का ही नहीं, अन्तर्दृष्टि का भी है। कदाचित् रचना विधान का भी है।”<sup>३९</sup>

श्री चन्द्रकान्त बक्षी के अनुसार – “समय के एक स्तर अथवा लेवल पर प्रवर्तित स्थिति समसामयिकता है। स्थल काल की भाषा में यह काल के एक ही तबके सम्भवित होती है।”<sup>४०</sup>

“समसामयिकता” में निरन्तरता का गुण हमेशा विद्यमान रहता है। अविरत बहते स्रोत की भाँति रहने से उसमें वर्तमान बोध की स्थिति स्पष्ट होती है।

डॉ. विश्वम्भरनाथ उपध्याय - “समसामयिकता का बोध इस समय का बोध है, अपने वर्तमान का बोध, उस क्षण का बोध, जिसमें हम जी रहे हैं। अतः एव समसामयिकता वर्तमान बोध है और वर्तमान बोध उस आधुनिकता का ही एक अंग है, जिसका प्रारम्भ कुछ समय पूर्व हो चुका है। आधुनिक युग में उत्पन्न होकर और आधुनिक युग की उपलब्धियों और असंगतियों पर विचार करके ही हम समसामयिकता बोध को समझ सकते हैं, क्योंकि समसामयिकता के बोध में आधुनिक युग के वे तत्त्व शामिल हैं। जिन्होंने समसामयिकता को जन्म दिया है।<sup>४९</sup>

कुल मिलाकर कहना चाहें तो किसी भी देश अथवा समाज की ज्वलन्त समस्याओं का निरूपण, वहाँ के लोगों का उन समस्याओं से जूझना तथा उनके उत्थानोपत्तन की क्रियाएँ, प्रक्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ, उनकी गतिविधियाँ तथा संवेदनाएँ आदि सब मिलकर समसामयिकता का बोध कराते हैं।

#### (५) समसामयिकता से तात्पर्य :

“समसामयिक” समय के आयाम से किसी काल-खण्ड विशेष के समाज, परिवेश में प्रवर्तमान मानव जीवन और जगत की विभिन्न परिस्थितियों, संवेदनाओं, गतिविधियों, संकमित होते रहे मूल्यों को देखने-परखने की दृष्टि है। वह हमें विशिष्ट प्रकार की समाज और साहित्य को समझने की दृष्टि प्रदान करती है। जो मानव-जीवन, जीवन-मूल्यों व जीवन प्रणाली में होते रहे परिवर्तनों का रूपांकन करती है।

वेबस्टर के शब्दकोश में बताया गया है कि - “इस शब्द का प्रयोग तात्कालिक घटना से लेकर सम्पूर्ण जीवन काल अथवा कुछ वर्षों, दशकों यहाँ तक कि शताब्दी पर्यन्त विस्तीर्ण कालावधि के संदर्भ में भी किया जा सकता है।<sup>४९</sup>

विश्वस्तर पर उठनेवाली कोई भी चेतना अन्तर्राष्ट्रीय समाज को प्रभावित करने में सक्षम होती है। तब वैश्विक मानव सभ्यता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, जीवन में संक्रमण की प्रक्रिया का शुरू हो जाना बहुत ही सम्भव है। साहित्य में भी यह चेतना एवं प्रवृत्ति अनेक दशकों तक प्रवाहमान बनी रह सकती है। समसामयिकता को परिभाषित करते समय कुछ वर्षों से लेकर अनेक दशकों तक के समय खण्ड पर विचार किया जाता है। अतः काल परिधिवाला सन्देह गौण हो जाता है तथा समाज में प्रवर्तमान चेतना महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इस प्रकार समसामयिकता का सम्बन्ध किसी काल खण्डविशेष से न रहकर उस काल-खण्ड में विद्यमान प्रवृत्तियों, समस्याओं आदि से अनिवार्यतः जुड़ जाता है।

प्रत्येक समय की एक खास पहचान होती है और उस समय के धरातल पर पनपे हुए समाज में एक विशेष चेतना होती है, जो भाव संचेतन स्तर पर एवं काल संचेतनस्तर पर किसी अन्य समय खण्ड में विद्यमान समाज की समग्र चेतना से भिन्न होती है तथा अपनी अलग लाक्षणिकता रखती है। यह समग्र चेतना उस समाज, देश के निवासियों की मानसिकता में प्रतिबिम्बित होती है।

“वास्तविक अर्थों में संवेदनशील एवं जागरूक वही है जो समय की नब्ज अपने हाथों में लिए प्रतिपल परिवर्तित हो रहे परिवेश एवं स्थितियों के प्रत्येक स्पन्दन को अनुभव करता चलता है और तज्जन्य संवेदनाओं, मान्यताओं, मूल्यों और विश्वासों पर आधारित लोक मानस पर नजर रखता है। केवल इस तरह से वह अपने समय को वास्तविक अर्थ में जीता है। अपने काल खण्ड जुड़े रहने का एक ही स्रोत है, समकालीन साहित्य का पठन-पाठन, क्योंकि संवेदनशील कवि या लेखक की अपनी कृतियों के

माध्यम से अपने युग की युगीन-मानस की अविकल प्रतिलिपि प्रस्तुत करने की चेष्टा भी करते हैं।”<sup>४३</sup>

सामयिकता के स्वरूप -निर्धारण, उद्घाटन एवं प्रस्तुतीकरण आदि में अनेक स्थितियों का सामूहिक योगदान होता है।”<sup>४४</sup>

इन स्थितियों को ही उसके तत्त्व माने जाने चाहिए। किसी भी समय की अन्तरात्मा को प्रकट करने के लिए आन्तरिक उपकरणों के साथ साथ उसके बाह्य उपकरणों का विशेष समर्थन आवश्यक होता है। समसामयिकता को सजीव रूप देने में वे सभी तत्त्व सम्मिलित किए जा सकते हैं, जो समय-विशेष के समाज जीवन का सांगोंपांग तथा सम्पूर्ण चित्र सभी विशेषताओं के साथ उभारने में सहायता देते हैं।

समसामयिकता का सीधा सम्बन्ध समय के साथ है और समय का सीधा सम्बन्ध देशकाल, परिवेश या समाज से है। बिना देश या समाज के समय की कोई पहचान नहीं है। जिस प्रकार आत्मा को प्रकट होने के लिए देह का आलम्बन जरूरी होता है, ठीक उसी प्रकार समय की संश्लिष्ट विशेषताएँ बिना समानाधार के अस्तित्व नहीं रखती। फलतः समाज या देश समसामयिकता का महत्वपूर्ण अंग हैं। उसके द्वारा समाज विशेष के “मनुष्यों का जीवन तथा उनकी प्रवृत्तियों, समस्याओं, संवेदनाओं मनःस्थितियों आदि का समग्रता के साथ प्रस्तुतीकरण किया जाता है।”<sup>४५</sup>

“समय या काल विशेष की दृष्टि से समकालीनता शब्द की लघुतम व्याप्ति एक क्षण में सिमट सकती है। व्यक्ति-विशेष की दृष्टि से समकालीनता की परिधि का अन्वेषण करने पर तो उसकी सम्पूर्ण आयु का काल खण्ड ही इसकी सीमा में आ जाता है। साहित्य के मूल्यांकन की दृष्टि से किसी भी लेखक, कवि, साहित्यकार अथवा आलोचक के लेखन काल में प्राप्त प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में इसका निर्धारण किया जा सकता है।”<sup>४६</sup>

समसामयिकता की अभिव्यक्ति एवं स्वीकृति की अभिव्यक्ति रचनाकार में नानारूपों में होती है। यथा— विचार और चिन्तन प्रक्रिया में समसामयिकता, दृष्टिकोण की समसामयिकता समस्या निरूपणविधि में समसामयिकता, समाज को नवीन दृष्टि प्रदान करने में एवं परम्परा ग्रहण त्याग तथा नवीन के ग्रहण त्याग आदि के स्थापन सम्बन्धी में समसामयिकता।

मानवने जब से होश सम्भाला है, वह काल चेतना प्रवाह के साथ निरन्तर यात्रा कर रहा है। ऐसा करते रहने से ही उसने दृष्टि के विकास के साथ अपना भी विकास किया है। काल चेतना प्रवाह से विच्छिन्न होकर जीना नामुमकिन है फिर भी यदि वह जिये तो वह सर्वदा अप्राकृतिक होगा, आदिमता का पर्याय होगा समय स्रोत में बहना और बहते रहने का सहयोग प्रदान करना उसकी जीवन्तता की निशानी होगी। समसामयिकता के लिए तो आग्रह की चीज है कि उसे पानेवाला कालधारा की समग्र चेतना से सजग और सम्पृक्त रहे। क्योंकि कलाकार से सदा नवीन या नवसर्जन की ही अपेक्षा की जाती है और यह निश्चय ही जीवन का एक वांछित गुण है।

कला और साहित्य में तो समसामयिकता के दृष्टिकोण की स्वीकृति और भी वांछनीय है। “जीवन और साहित्य का अथवा दूसरे शब्दों में कहें तो समाज और साहित्य का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। मानवजीवन के सम विषम भावों को साहित्यकार अपनी कृति में किसी-न-किसी रूप में अंकित करने का अवश्य प्रयत्न करता है मानव जीवन या समाज का यह अंकन अर्न्तजगत तथा बहिर्जगत दोनों से सम्बद्ध है।”<sup>४९</sup>

जीवन का एक अंश “समसामयिकता” है। अतः समसामयिकता का दृष्टिकोण अपनाए बिना सही अर्थों में नवसर्जन सम्भव व सार्थक नहीं हो पाता।

समसामयिकता निरूपण के समय यदि ऐसे आयाम को दृष्टिपथ में रखने से साहित्य की किसी भी विधा के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक परिवेश का रेखांकन तथा संशोधन विषय का वास्तविक आशय व मन्तव्य उपलब्ध होगा और उसकी गति, दिशा और दशा के ज्ञान के प्रति हम भली-भाँति परिचित हो सकेंगे।<sup>४८</sup>

#### (६) समसामयिकता के समीपवर्ती सन्दर्भ :

किसी विषय के यथार्थ ज्ञान के लिए वैज्ञानिक प्रविधि अधिक योग्य मानी जाती है। जिस प्रकार कोई वैज्ञानिक वस्तु का तथ्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके अन्तरंग तत्त्वों की तह तक जाता है और उसका विश्लेषण करके उसकी तात्त्विक समझ हमें प्रदान करता है। साहित्यिक अवधारणा के सम्बन्ध में उसकी सही समझ के लिए उसके अन्तरंग तत्त्वों के विश्लेषण के साथ-साथ उन निकटवर्ती सन्दर्भों की प्रकृति का ज्ञान भी आवश्यक होता है, जो उस विषय को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करते हैं।<sup>४९</sup>

कभी ऐसा भी होता है कि किसी विषय का स्वरूप इतना जटिल हो कि प्रचलित पद्धति से काम नहीं चलता तब उस विषय की जानकारी के लिए उसके समीपवर्ती सन्दर्भ उसके अर्थ-क्षितिज को खोलने में सहायभूत होते हैं। इनसे एक तो आलोच्य अवधारणा की सीमा मर्यादाओं का ख्याल स्पष्ट हो जाता है और दूसरा कि उसके सार्थक प्रयोग का ज्ञान हमें अर्जित होता है।

#### ❖ समसामयिकता और आधुनिकता :

“आधुनिकता एक अर्थ बहुल संज्ञा है। इसका प्रयोग अनेक विध और अर्थ लचीला रहा है। इसके बहुआयामी अर्थ और सन्दर्भों के कारण

साहित्यिक उन्नायक भी इसे पारिभाषित करना कठिन महसूस करते हैं । यह काल प्रवाह में निरन्तर बहनेवाली काल प्रक्रिया है ।

“आधुनिकता” का कोशगत अर्थ उसे समय के साथ जोड़ देता है । “जो अभी का है, वर्तमानकालीन है, आज-कल का है, नूतनकालीन है, इत्यादि ।”<sup>५०</sup>

“समसामयिकता का कोशगत अर्थ भी वही अर्थबोध कराता है । हाँलांकि दोनों एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी परस्पर विरुद्ध नहीं । “इन दोनों संज्ञाओं का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से समय के साथ अवश्य सम्बन्ध है ।”<sup>५१</sup>

डॉ. शिवप्रसादसिंहजी “समसामयिकता और आधुनिकता” के अर्थबोध में जोखम की ओर संकेत करते हुए दोनों को परस्पर पृथक् करते हुए कहते हैं कि समसामयिकता कलेवर की चीज होती है । आधुनिकता समसामयिक बिकाराव और कलेवरगत उथल-पुथल के भीतर निरन्तर प्रवाहित गतिशील चेतना को समझने का दृष्टिकोण है । ...इसलिए समसामयिक को आधुनिक मान लेना जोखम है ।<sup>५२</sup>

वस्तुतः विशदता की दृष्टि से “समसामयिकता” की सापेक्षता में “आधुनिकता” का फलक अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है । “आधुनिकता” का सम्बन्ध समयवाचक शब्द की अपेक्षा गुणवाचक विशेष है । समसामयिकता एक समय-खण्ड का निर्देश करती है, जबकि आधुनिकता विशिष्ट भावबोध और शैली का आधुनिकता में युग विशेष का गुण सन्निहित है, समसामयिकता में स्थिति-विशेष का गुण सन्निहित है ।

युग सन्दर्भ में यदि इन्हें देखें तो प्रत्येक युग की समसामयिकता और आधुनिकता दोनों एक नहीं होंगी । यही कारण है कि समसामयिकता की परिधि आधुनिकता के संदर्भ में सीमित है, इसीलिए यह एक ही युग में अनेक रूप में दिखाई देगी । जब कि आधुनिकता का फलक व्यापक होने

के कारण वह समग्रयुग संवेदन का द्योतक है । लक्ष्मीकान्त वर्मा इन दोनों के बीच की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि – “आधुनिकता युग विशेष का गुण है, समसामयिकता स्थिति विशेष का आयाम है । आधुनिकता एक ऐतिहासिक विश्लेषण है, जो हमें देस काल का बोध कराती है, समसामयिकता देशकाल के साथ सक्रियता की भी पुष्टि करती है ।”<sup>५३</sup>

### ❖ समसामयिकता और युगबोध :

युगबोध और समसामयिकता के बीच सन्देह इसलिए पैदा होता है कि, युग शब्दभी काल, समय के अर्थ को इंगित करता है । “युग सामयिक जनमानस की आन्तरिक चेतना की विकासप्रक्रिया का अवबोधक है ।”<sup>५४</sup>

प्राचीनकाल से लेकर आजतक समय-निर्धारण के लिए “युग” शब्द का प्रयोग होता रहा है । “युग” समय की सुदीर्घ परिव्याप्ति का सूचका है । इस अर्थ में युगबोध एक निश्चितसमयावधि से सम्पृक्त विचारबोध, जीवनानुभव, मूल्यबोध, संवेदना और समस्याओं के प्रति प्रतिबद्धता है । इस प्रकार युगबोध का समन्वित अर्थ हुआ, “युग की विवेक पूर्ण पहचान ।” स्पष्टतः काल-विशेष के बोधसम्पृक्त रचना युगबोध से युक्त मानी जाती है ।<sup>५५</sup>

“युग-बोध” में समसामयिकता होती है, इसलिए प्रत्येक युगका बोध भिन्न होता है । युग-बोध और समसामयिकता को इसी कारण एक समझने की भूल की जाती है । “समसामयिकता” युग-संदर्भ में सीमित दायरे में बँधी हुई चेतना है । युगबोध के समक्ष वह काल-खण्ड के व्यापक फलक पर उठने और मिटने वाली तरंग के समान है । ध्यान देने योग्य बात यह कि किसी युग विशेष की जो- जो भी परिस्थितियाँ, परिवेशगत समस्याएँ, मूल्य व मान्यताएँ होती हैं वे अन्तोगत्वा अपने सीमित फलक पर समसामयिकता ही कहलाती है ।



### ❖ समसामयिकता और समकालीनता :

“समसामयिकता” के पर्यायवाची रूप में “समकालीनता” शब्द व्यक्त हुआ है । अंग्रेजी में इनके लिए -

कोईवल (Coeval)<sup>५६</sup>

कॉन्टेम्पोरेरीनेस [contemporariness]<sup>५७</sup>

कॉन्टेम्पोरेनिट (contemporanty)<sup>५८</sup>

सिमलटेनियस” (simultaneous)<sup>५९</sup>,

- शब्दों का उल्लेख मिलते हैं । विभिन्न कोशकार भी इन्हें एक-दूसरे के पर्यायवाची बताते हैं । यहाँ तक कि इनका प्रयोग एक-दूसरे के स्थान पर बड़ी सुगमता से किया जा रहा है । साधारण बोल-चाल की भाषा में ये दोनों किसी प्रकार की पृथक्ता का संज्ञान नहीं करातीं । किन्तु कुछेक आधुनिक समीक्षकों ने इन दोनों के मध्य एक सूक्ष्म विभाजक रेखा खींचते हुए भिन्न-भिन्न अर्थ छायावाली संज्ञा घोषित किया है तथा आधुनिकता जैसा अर्थविस्तार दे दिया है ।

नवलेखन के दौर में “समसामयिकता” शब्द बहुत प्रचलित रहा है । परिणाम स्वरूप “समसामयिकता” शब्द धन्धला हो गया है । फिर नये शिरे से उठाया गया पर अन्तर विवेचन के साथ ।

मूलतः ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । दोनों एक ही प्रकार के अर्थबोधके सूचक हैं तथा दोनों की शाब्दिक एवं आर्थिक संरचना भी एक सी है ।

### ❖ समसामयिकता और तात्कालिकता :

“समसामयिकता” को भ्रान्तिवश कभी - कभी “तात्कालिकता” मान लिया जाता है । लेकिन “समसामयिकता”, तात्कालिकता भी नहीं है ।<sup>६०</sup>

अतः इनको अलगाना न केवल “समसामयिकता” के स्वरूप को समझने में सहायक होगा । “तत्कालीन” में तुरन्त शीघ्रता का बोध अन्तर्निहित है, अतः वह कालांश अपने से पूर्व के कालांश से निरन्तरता का आभास नहीं देता जब कि समसामयिकता में यह निरन्तरता विलुप्त नहीं होती, यह प्रच्छन्नरूप में रहती है ।<sup>६१</sup>

“तात्कालिकता” से अभिप्राय अभी भी इसी समय निर्मित घटना से है जो यह प्रतिपादित करती है कि इसका कुछ समय पूर्वघटित घटनासे कोई सम्बन्ध नहीं है । यह अपने आप में बिल्कुल निर्लेप होती है ।

“तात्कालिकता”, एक अस्थायी स्थिति है । अतः जो भी कारण हो, अपने अल्पजीवन के कारण वह अतीत की किसी घटना से जुड़ नहीं पाती है, न इसका किसी भी स्थिति में निर्वाह होता है । “समसामयिकता” की दृष्टि केवल वर्तमान पर केन्द्रित नहीं रहती, उसका व्यतीत घटनाओं से भी लगाव रहता है । “समसामयिकता” के विकास में अतीत का उतना ही योगदान है, जितना कि वर्तमान का है ।

“तात्कालिकता और “समसामयिकता” में समसामयिकता अधिक व्यापक है, क्योंकि तत्कालिकता जल्दी बदलती है । संक्षेप में कहें तो आधुनिकता का वर्तमान समसामयिकता है तो समसामयिकता का वर्तमान तात्कालिकता ।

## ❖ समसामयिकता और नवीनता :

“नवीनता”, “समसामयिकता” के बिल्कुल निकट पड़नेवाला मूल्य है । “नवीनता” का समसामयिकता से अनिवार्य सम्बन्ध है । जो समसामयिक है उसका नवीन होना आवश्यक है ।<sup>६२</sup>

समसामयिकता की परिधि का निर्धारण “नवीनता” ही करती है । वस्तुतः “नवीनता” तो समसामयिकता का अलंकरण है, जिससे वह इसके सहज आकर्षण का केन्द्र बन जाती है । “नवीनता” से समसामयिकता

तरोताजा रहती है । “वेबस्टर्स कोश के अनुसार ताजा से अभिप्राय उस नये पन से हैं जो अपने में जीवन्तता, सामर्थ्य और अछूतापन लिए हुए हैं ।<sup>६३</sup>

नवीनता से तात्पर्य है, जो पहले कभी उसी रूप में अस्तित्व नहीं रखनेवाला मूल्य, जिसका आविर्भाव अभी- अभी हुआ हो और चल पड़ा हो जो परम्परागत-मूल्य से बिल्कुल भिन्न हो और जो परम्परागत तो हो पर थोड़े बहुत परिवर्तन एवं संगोपन के साथ बिलक्षण छटा से प्रकट हुआ हो ।

साहित्य के सन्दर्भ में नवीनता लेखक की उन वैयक्तिक विशेषता को कहा जा सकता है, जो किसी अन्य लेखक में न हो । “समसामयिकता” की तरह नवीनता भी गतिशील रहती है, और इन दोनों के सामंजस्य से आधुनिकता विकासशील बनती है । हाँलाकि “समसामयिकता एक समग्र अवधारणा है वहीं नवीनता उसकी एक अतिरिक्त विशेषता है । अर्थात् वह साधन रूप या अंगरूप होती है । “समसामयिकता के संदर्भ में “नवीनता” की शक्ति और सीमा उसके साधन रूप होने में ही है ।<sup>६४</sup>

### ❖ समसामयिकता के विविध आयाम :

देशकाल के बोध से जो सक्रिय गतिशीलता जुड़ी रहती है, उसके प्रमाण हमें समसामयिकता से ही मिलते हैं । क्योंकि समसामयिकता स्थिति विशेष का आयाम है । शाश्वत मूल्यों और सत्यों को, परिस्थितियों के घात-प्रतिघात द्वारा जड़ता और असफलता से उबारने का कार्य समसामयिकता का ही है । इस समसामयिकता को आन्दोलित करनेवाले अनेक आयाम हैं, जो इसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करके एक नवीन विचारबोध और भावबोध को जन्म देते हैं ।

समसामयिकता के इन विविध आयामों का निम्नरूप से वर्गीकृत किया गया है –

- (१) सामाजिक आयाम
- (२) आर्थिक आयाम
- (३) राजनीतिक आयाम
- (४) सांस्कृतिक आयाम

**(१) सामाजिक आयाम :**

समाज शब्द का अर्थ है, “समुदाय, दल, समूह या सभा ।”<sup>६५</sup>

एक ही स्थान पर रहनेवाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करनेवाले वे लोग जो मिलकर अपना अलग समूह बनाते हैं, समाज कहलाता है । जैसे – आर्यसमाज, संगीतसमाज । सांप्रत युग के प्रखर चिन्तक श्री पाण्डुरंगशास्त्री आठवलेजी समाज” का व्युत्पत्तिपरक अर्थ समझाते हुए कहते हैं, “संस्कृत में “समज” और समाज” ऐसे दो शब्द हैं । “समजः पशुनां संघ” । “समज” शब्द पशुओं के समूह के लिए प्रयुक्त किया जाता है । मानव समूह के लिए “समाज” शब्द प्रयुक्त होता है, क्योंकि उसके पास ध्येय, विचार और कार्य है । ...अर्थात् जिस समूह में अनेक व्यक्ति होते हुए भी उन सब में ऐसी अहंकार की संवादिता प्रस्थापित हुई है, जिसमें वर्तमान सुख-दुःख, राग -द्वेष और भावि आशा-आकांक्षाएँ एक बनी हुई हैं और जिसका ध्येय एक ही है ऐसे सुव्यवस्थित, सुग्रथित और सुविचारी समूह को “समाज” कह सकते हैं ।”<sup>६६</sup>

समाज केवल मानव-समूह का नाम नहीं है । ऐसा मानव समूह तो हम किसी वारदात के समय, खेल के मैदान पर, जादूगर के खेलों को देखने के लिए एकत्रित किसी चौराहे पर पाते हैं । वहाँ पर एकत्रित मानव-समूह को “भीड़” कहा जायेगा । “समाज केवल भीड़ का पर्याय नहीं होता । “समानाअजन्ति” समान संचरणशील व्यक्ति-समूह ही समाज है ।”<sup>६७</sup>

प्रत्येक मनुष्य पैदा होते ही समाज में पलता है, उसी में पलकर बड़ा होता है, परम्परा एवं संस्कार को ग्रहण करता है । इस प्रकार मनुष्य समाज का आजीवन सदस्य बन जाता है । करीब-करीब सभी मनुष्य कुछ अंश तक समान होते हैं । कुछ व्यक्ति अपनी अलग पहचान बनाने में सफल होते हैं । समाज में रहनेवाले प्रत्येक प्राणी को पारस्परिक सहयोग, सम्बन्ध और सौहार्द की अपेक्षा रहती है । इनके अभाव में समानता, असमानता, सहयोग, संघर्ष, सहिष्णुता-असहिष्णुता जैसी परस्पर विरुद्ध भावनाएँ भी सम्मिलित रहती है । यही कारण है कि समाज फिर जाति, वर्ग, परिवार, समुदाय अलग-अलग इकाइयों में विभाजित होकर रह जाता है ।

विश्व की सभी संस्कृतियाँ आघात प्रत्याघात सहती हुई अपने रूप में परिवर्तन किया करती हैं । परिवर्तन की इस सामान्य प्रक्रिया में कोई क्षीण होती है तो कोई हावी । जैसे पाश्चात्य संस्कृति, विश्व की समस्त संस्कृति एवं मानव सभ्यताओं पर अपना प्रभाव एवं आधिपत्य जमाने में सफल रही है ।

“वैज्ञानिक आविष्कारों और ब्रिटेन की बर्षों की पराधीनता और उसके प्रभावने हमारे सामाजिक रहन-सहन और मानव- मूल्यों को प्रभावित किया है ।”<sup>६८</sup>

भारतीय सभ्यता और मूल्य इसके प्रभाव स्वरूप नये सिरे से पनप रहे हैं । नतीजा यह होता है कि मूलभूत जीवन प्रणाली, आचार-प्रणाली में युगानुरूप उतार-चढ़ाव एवं बदलाव होता रहता है । परिवर्तन का यह दौर सभी युगों, में समानुपात् परिलक्षित होता है ।

## (२) आर्थिक आयाम :

धर्मशास्त्र में अर्थशास्त्र की और अर्थशास्त्र में धर्मशास्त्र की चर्चा अनिवार्य है । अन्यथा दोनों अपूर्ण रह जाते हैं । दोनों में अपने-अपने विषय की प्रधानता है । प्राचीनकाल में समाज का नियमन धर्मशास्त्र करता था, फिर भी वहाँ राजनीति और नीतिशास्त्र को अर्थशास्त्र से विकसित होती दिखाया गया है । अर्थशास्त्र का क्षेत्र केवल धन या सम्पत्ति प्राप्त करनो के उपायों का विवेचन करना नहीं । इसमें मानव जीवन के सभी पहलू आ जाते हैं ।

मानव-समाज को समृद्धिशील बनाने हेतु अधिक समृद्धि पर बल देना आवश्यक है । यह एक ऐसी आवश्यकता है, जिसके अभाव में हमारी सारी योजनाएँ निष्फल हो जाती हैं । सच तो यह है कि अर्थतन्त्र ही शासन तन्त्र के संचालन का आधार है । इसके बिना राज्य निष्क्रिय एवं निष्प्राण हो जाता है । महाभारत के अनुसार –“कोश शून्यराजा बलविहीन हो जाता है ।”<sup>६९</sup>

इस उद्देश्य को सम्मुख रखकर प्राचीन भारतीय विचारकोने राज्य की समृद्धि हेतु कोश संचय पर विशेष बल दिया है । प्राचीन ग्रन्थों में राजस्व, राजकर प्रणाली, राजकीय सहायता, शुल्क, अनुदान आदि विषयों पर खूब विचार किया गया है । इस अर्थसंग्रह का उपयोग राजा अपने भोग विलास में नहीं कर सकता था । इसका उद्देश्य समाज कल्याण था ।

आधुनिक युग में पश्चिम के देशों में हुई औद्योगिकक्रान्ति के प्रभाव स्वरूप आजादी के बाद हमारे देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था की नींव पड़ी । “आजादी के बाद भी देश की आर्थिक स्थिति शोचनीय रही-औद्योगिक क्षेत्र में भी बड़े पूंजीपति घरानो का एकाधिकार रहा ।”<sup>७०</sup>

बड़ी आबादीवाला भारत देश अपनी प्राचीन मानसिकता से परित्रण पाकर दुनिया के सम्पन्न राष्ट्रों की भाँति वित्तोपार्जन की दिशा में छलांग

भरने लगा । समग्र विश्वको झकझोरने वाली पूँजीवादी व्यवस्था तथा साम्यवादी व्यवस्थाओं की बुनियादी खामियों को नजर समक्ष रखते हुए इनका समन्वित रूप अपनाया है । किन्तु आर्थिक सुधार उतना नहीं हुआ जितने की आवश्यकता थी ।

जगदीशनारायण के शब्दों में :-

“हमारे समाज का अर्धसामन्ती संस्कार और अर्धपूँजीवादी रवैयापूरी चालाकी में लगा हुआ है कि वर्तमान स्थिति— शीलता के विरुद्ध जो भी प्रामाणिक आन्दोलन चले, भीतर ही भीतर उनके मूलमुद्दों में तरतीम करके कुछ ऐसी स्थिति पैदा की जाय कि वह व्यवस्था के लिए खतरनाक होने के बजाय उसके पोषक तत्वों में बदल जाय ।”<sup>७९</sup>

इस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था निरन्तर पुष्टि पाती रही है । देश का बहुसंख्यक वर्ग रिश्वत चोरबाजारी, मंहगाई, गरीबी, बरोजगारी, भूखमरी एवं निर्धनता को चक्कियों में निरन्तर पिसता रहा है । देश के आर्थिक सुधार हेतुविभिन्न योजनाएँ भी भ्रष्टाचार और अनैतिकता के परिवेश में फलदायी नहीं बन सकीं । उद्योगों के विकास ने खेति हर कृषकों को मजदूर बनने के लिए विवश किया । समस्त समसामयिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं का सशक्त अंकन तत्कालीन साहित्य का प्रधान कथ्य- विषय रहा है ।

### (३) राजनीतिक आयाम :

राजनीति एक यौगिक शब्द है । “राज” तथा “नीति” दो शब्द के योग से “राजनीति” शब्द निर्मित होता है । जिसका अर्थ है— राजा की नीति । राज्य के शासन के सम्बन्धित सभी प्रकार का ज्ञान राजनीति की सीमा में आ जाता है । राजनीति का आशय शासन प्रणाली, शासनीति, नियम और विधान से हैं राजनीति के लिए अंग्रेजी शब्द “Politics” खास



प्रचलित है । हिन्दी शब्दसागर में राजनीति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, “राजनीति वह नीति है, जिसका सहारा लेकर शासक राज्य की रक्षा और शासन की पद्धति को दृढ़ करता है ।”<sup>७२</sup>

राज्यहीन समाज का अभ्युदय असम्भव है । राजनीतिक समाज के अभ्युदय में राजा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इसलिए राजा को जगत की वृद्धि का हेतु कहा गया है । राजा से गुरुत्तर अपेक्षा रखी जाती है कि वह शिष्टों का प्रतिपालन करे और दुष्टों का दमन । राजा दण्डविधान से सबको शासित करता है ।

“मनुस्मृति” के अनुसार प्रजा राजदण्ड के भय से स्वधर्म से विचलित नहीं होती, न्यायपथ से चलायमान नहीं होती । क्योंकि राजा कार्यपालिका एवं न्यायपालिका दोनों का प्रधान था ।<sup>७३</sup>

*“दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभि रक्षति ।*

*दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डधर्म विदुर्बुधाः ॥”*

(अर्थात् दण्ड सब प्राणियों पर राज करता है, और दण्ड ही सब प्राणियों की रक्षा करता है, सबके सोने पर केवल दण्ड ही जागता रहता है और पण्डित लोग दण्ड को ही धर्म कहते हैं ।) दण्ड करता न्यायपूर्वक दण्ड विधान करता है । दुष्ट, दमनकारी, शास्त्रज्ञान हीन, शासक को दण्ड धारण करनेकी शास्त्र आज्ञा नहीं देता ।

राज्य को स्मृतियों के आधार पर ही नीति ग्रन्थों ने सत अंगों वाला स्वीकार किया है । शुक्रनीति ने राज्य के अंगों की शरीर के अवयवों से नामतः उपमा दी है । तदनुसार – “राज्यरूपी शरीर का राजा सर है नयनमंत्री, श्रोत्रमित्र, मुख कोश और मन बल है दुर्ग-राष्ट्र इसके हाथ-पैर हैं ।”<sup>७४</sup>

प्राचीन भारतीय विचारकोंने राजपदमकर दैवी संस्था मानते हुए भी राजा के कर्तव्यों को एक विशिष्टता प्रदान करने की कोशिश की है ।

विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में उदात्त राजा के कार्यों का अध्ययन कर पी. वी. काणेजी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि – “राजा के मुख्य कार्य थे ।

(१) प्रजा का रक्षण या पालन । (२) वर्णाश्रम धर्म नियम का पालन  
(३) दुष्ट-दमन और न्याय ।”<sup>७५</sup>

किसी भी राजा के लिए यह आवश्यक होता है कि वह दानमान सत्कार से सदा प्रजा का रंजन करता रहे । उसके द्वारा समय समय पर पारित की गई योजनाएँ किस प्रकार कितनी मात्र प्रजा तक पहुँच सकी है तथा अपनी शासन कला से प्रजा संतुष्ट है या नहीं ? इन तथ्यों की जानकारी हेतु वह गुप्तवेश में नगर भ्रमण भी करता है । प्रजा का यथोचित पालन न करनेवाले प्रजा पीड़क, दुष्ट और शिष्ट परिपालन रूप अपने मूल कर्तव्य से रहित होने पर राजा की दुर्गति होती है, प्रजा की विद्रोहाग्नि उसे जलाकर खाक कर देती है ।

उत्तराधिकारी के लिए सामान्यतः नियम बना दिया गया कि राजा का ज्येष्ठपुत्र युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया जाए । शेष राजपुत्रों को भी षडयन्त्र आदि से दूर रखने के लिए राजा के विभिन्न सहायक पदों पर नियुक्त किया जाय । चूँकि उत्तराधिकारी तय करते समय परामर्श दाताओं (मन्त्री, धर्मगुरु) की सलाह अवश्य ली जाती है । विकलांग और योग्यताशून्य व्यक्ति राजा बनने योग्य नहीं समझा जाता था ।

यह निर्विवाद सत्य है कि प्राचीन भारत में राजतन्त्रात्मक शासनप्रणाली और गणतन्त्रात्मक शासनप्रणाली को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त थी । परन्तु कालान्तर में विविध प्रकार की शासन प्रणालियाँ अस्तित्व में आईं । आधुनिक भारत में प्रजातन्त्र या लोकतन्त्र शासन-प्रणाली उत्तम शासन-प्रणाली के रूप में कार्यरत है ।

#### (४) सांस्कृतिक आयाम :

“संस्कृति यदि साहित्य को जन्म देती है तो साहित्य संस्कृति के विकास में अपना सहयोग देता है । संस्कृति की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है । साहित्य के द्वारा संस्कृति का पोषण होता है ।”<sup>७६</sup>

“संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा के “सम्” उपसर्ग-पूर्वक “कृ” धातु से “सुत्” का आगम करके “क्तिन” प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है । “संशोधन करना, सुधारना, उत्तम बनाना, सुन्दर या पूर्ण बनाना, अथवा परिष्कार करना ।”<sup>७७</sup>

“संस्कृति” शब्द का सम्बन्ध मूलतः संस्कार से हैं । अंग्रेजी में इसके लिए कल्चर” (Culture)<sup>७८</sup> शब्द विख्यात है । संस्कृति अपने आप में बहुत व्यापक है, इसमें खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, आचार-विचार सभी बातें आ जाती हैं । संस्कृति में बाह्य आचारण की अपेक्षा आन्तरिक संघटन पर अधिक बल दिया जाता है । दोनों में मूलभूत अन्तर यह है कि पहला व्यावहारिक है तो दूसरा जीवन-मूल्यों से युक्त है ।

“संस्कृति किसी देश-जाति अथवा मानव के उन आन्तरिक गुणों की समष्टि का नाम है जो उसके आचार-विचार, कार्य-कलाप एवं जीवन-पद्धतियों में अभिव्यक्त होती है । मानव अपने सांस्कृतिक गुणो, मूल्यों के कारण एक-दूसरे से चरित्र, धर्म नैतिकता आदि में भिन्न व्यक्तित्व वाला होता है । प्रत्येक जाति, देश अथवा व्यक्ति के भी भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक मूल्य होते हैं । सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति हमारे भावों, विचारों एवं व्यवहारों द्वारा होती है । हमारी संस्कृति के गुण या मूल्य हैं - “दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति, सत्य, अहिंसा, परोपकार, आस्था, श्रद्धा, क्षमा, उदारता, विश्वबन्धुत्व की भावना, त्याग एवं संयम तथा सदाचार आदि ।”<sup>७९</sup>

भारत की अपनी संस्कृति की एक लम्बी परम्परा है । प्रत्येक युग संस्कृति को अपने ढंग से प्रभावित करता है । प्रत्येक युग की संस्कृति का एक विशिष्ट आयाम होता है, जो उस युग विशिष्टता को प्रतिध्वनित करता है । मध्यकालीन संस्कृति के मूल्य देवी-देवताओं की वन्दना और तीर्थयात्रा तथा सामाजिक आदर्शों के साथ जुड़े हुए थे । रीतिकालीन सामन्तीय संस्कृति मूल्यों का अस्वीकार करके राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्यों का उदय हुआ, लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् वे गरिमा खो बैठे । इसके साथ विदेशी संस्कृतियों के सम्पर्कमें आने से सांस्कृतिक मूल्यों में तेजी से विघटन हुआ, जिसकी प्रतिध्वनि समसामयिक साहित्य में सनाई देती है । संस्कृति मानवीय या प्राकृतिक वातावरण से प्रभावित समुदाय विशेष के जीवन चिन्तन, धर्मचिन्तन, समाजचिन्तन, साहित्यचिन्तन, और व्यवहार की आन्तरिक प्रवृत्ति है, जो समाज द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है ।<sup>६०</sup>

## (८) समसामयिकता :

### परिवर्तन के कारण :

परिवर्तन एक नैसर्गिक प्रक्रिया है । परिवर्तन की आँधी सभी स्थितियों, परिस्थितियों एवं मानव मूल्यों को प्रभावित करती है । परिवेश के परिवर्तन के साथ-साथ समसामयिकता का स्वरूप भी बदल जाता है । परिवर्तन के प्रसंग में यह ध्यानाकर्षक है : एक तो यह कि परिवर्तन स्वतः नहीं होता, उसकी कुछ प्रेरक शक्तियाँ होती हैं, जिनके कारण उसे गति मिलती रहती है, और दूसरा यह कि परिवर्तन का अर्थ यह कदापि नहीं कि सभी कुछ परिवर्तित हो जाता है । वस्तुतः क्रान्ति के काल में भी, जिसे हम आमूल परिवर्तन कहते हैं । सभी कुछ परिवर्तित नहीं होता । हाँ परिवर्तन की पहुँच गहरी अवश्य होती है ।<sup>६१</sup>

प्रत्येक युग और परिस्थिति में समसामयिक संचेतना व्याप्त होती है । यही तो कारण कि प्रत्येक काल-खण्डों एवं परिस्थितियों में समसामयिकता बदलाव पाती रहती है । किसी एक काल-खण्ड विशेष की समसामयिकता अन्य काल-खण्ड विशेष की समसामयिकता से अनुभूति के स्तर पर नितान्त भिन्न मालूम पड़ेगी । क्योंकि “समसामयिकता एक ही युग में अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती है ।”<sup>८२</sup>

समसामयिकता की वास्तविक पहचान के लिए उसी युग सन्दर्भ में देखना अधिक सुविधाप्रद होगा ।<sup>८३</sup>

समसामयिकता के बदलाव के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान के उदय को प्रमुखता दी जा सकती है । वस्तुतः विश्वफलक पर उभरनेवाली कोई भी घटना या विचारधारा, देश-विदेश के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक सभी परिवेशों को प्रभावित करती है । जैसे १९१७ में रुसी-क्रान्ति के पश्चात् जार शासन की समाप्ति और लेतिन के साम्राज्यवाद की स्थापना ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी को प्रभावित किया है । रुस ऐसा पहला देश बना जहाँ मजदूरों व किसानों को महत्त्व मिलना शुरू हुआ । कृषि को उद्योग का दर्जा मिला । किसानों और मजदूरों के अमानवीय शोषण का अन्त हुआ । चीन, पोलैन्ड, उत्तरी जर्मनी आदि देशों में साम्यवादी सरकारें बनीं । इस रुसी क्रान्ति ने विश्व परिदृश्य को बदलकर युगबोध के बदलाव का संकेत दिया है ।”<sup>८४</sup>

विज्ञान का उदय केवल भौतिक क्षेत्र को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि उससे मानव चेतना भी प्रभावित होती है । मध्यकाल में जीवन के केन्द्र में ईश्वर प्रतिष्ठित था । अतः उस समय के व्यक्ति की चेतना आस्था के पिण्ड से निर्मित हुई थी । नवल किशोरजी के शब्दों में – “विज्ञान के

उदयने पुरानी मान्यताओं के समक्ष गहरे प्रश्नचिन्ह लगा दिये थे और मनुष्य पहले जिन धर्म ग्रन्थों प्रणीत नियमों या आचार-विधानों को अन्तरात्मा की आधार भूमि मानता था, वे धीरे-धीरे निरर्थक हो चुके थे ।”<sup>८५</sup>

आधुनिक मनुष्य के केन्द्र में विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टि है । एक ओर तो मानवीय गरिमा के प्रति प्रबुद्ध चेतना उसके मन में उभरी और वह अपने आप को अकेला और निरर्थक भी अनुभव करने लगा । तो दूसरी ओर मनुष्य का यन्त्रीकरण हुआ है । ऐसी स्थिति में समसामयिकता भी नवीन स्वरूप धारण कर लेती है ।<sup>८६</sup>

वैज्ञानिक उपलब्धियों, तकनीकी ज्ञान और औद्योगिक उन्नतिने जीवन पद्धति में इतने द्रुतगामी परिवर्तन किए जो पहले कभी नहीं हुए थे । इसके परिणाम स्वरूप वर्तमान समय में मूल्य परिवर्तन की गति भी बड़ी तीव्र हो रही है । पहले मूल्य परिवर्तन कई युगों या पीढ़ियों बाद लक्षित किए जा सकते थे, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से अर्थात् महा युद्धोत्तर काल से तो यह मूल्य परिवर्तन इतनी क्षिप्र गति से हुआ है । समसामयिकता को परस्पर अलग पड़ती हुई हम स्पष्ट लक्षित कर सकते हैं ।

विज्ञान की बढ़ती प्रगति मानव के जीवन, आस्था, अनुमान, कल्पना, धर्म, दर्शन, साहित्य, मूल्यों सम्बन्धों, मान्यताओं, संस्कृति और सभ्यता को बुरी तरह झकझोरा है । साहित्य इस बात को प्रतिबिम्बित करता है, - “जिस प्रकार परिवार में एक नये बच्चे के पैदा होने से परिवार के सदस्यों के पूर्ववर्ती सम्बन्धों में कुछ परिवर्तन आ जाता है, उसी प्रकार विज्ञान का हर नया आविष्कार समाज के सम्बन्धों में कुछ न कुछ हेर फेरकर देता है । पुराने सम्बन्धों के स्थान पर नए सम्बन्ध पैदा ही नहीं होते बल्कि सम्बन्धों में एक दो धागे और बढ़ जाते हैं ।”<sup>८७</sup>

अन्त में हम इतना कहना चाहेंगे कि पूर्वोक्त सभी कारण जीवन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करते हुए युग-परिवर्तन की ओर बढ़ते हैं और इन कारणों से निर्मित नवीन बौद्धिक चेतना समसामयिकता के बदलाव का प्रधान कारण बनती है ।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

१. समकालीन कहानी : रचना मुद्रा - पुष्पपालसिंह पृ.२०
- २ संस्कृत -हिन्दी कोश, आप्टे पृ.१०६८
- ३ संस्कृत व्याकरण रचना तथा निबन्ध, डॉ. रामजी उपाध्याय, पृ.८७
- ४ संस्कृत -हिन्दी कोश, आप्टे पृ.१०६८
- ५ भगवद्गोमण्डल भाग '०६ पृ.८७१५
- ६ नालन्दा विशाल शब्द सागर, सं. श्रीनवलजी, पृ.१४३४
- ७ नालन्दा विशाल शब्द सागर, सं. श्रीनवलजी, पृ.१४३४
- ८ हिन्दीशब्द कोश, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.८०३
- ९ हिन्दीशब्द कोश, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.८०३
- १० नालन्दा विशाल शब्द सागर, सं. श्रीनवलजी, पृ.१४३४
- ११ मानक हिन्दी कोष, ५ खंड स. रामचद वर्मा, पृ.२८३
- १२ मानक हिन्दी कोष, ५ खंड स. रामचद वर्मा, पृ.२७८
- १३ बृहत् हिन्दी कोष स. कालिका प्रसाद, पृ.११६६
- १४ बृहत् हिन्दी कोष स. कालिका प्रसाद, पृ.११६८
- १५ शिक्षार्थी हिन्दी अंग्रेजी शब्द कोष डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.६५५
- १६ बृहत् हिन्दी अंग्रेजी भाग.१, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.३६४
- १७ बृहत् हिन्दी अंग्रेजी भाग.१ डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.३६४
- १८ व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश स. बदरीनाथ कपुर, पृ.२४१
- १९ व्यावहारिक हिन्दी अंग्रेजी कोश स. बदरीनाथ कपुर, पृ.२४१
- २० साहित्यिक पारिभाषिक कोश स. महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ.६६
- २१ भगवद गौमडी, पृ.८४६८
- २२ भगवद्गो मण्डल, पृ. ८५०७
- २३ बृहत् गुजराती कोशं खण्ड दो सं. केशवराम शास्त्री, पृ. २१७३
- २४ बृहत् गुजराती कोशं खण्ड दो सं. केशवराम शास्त्री, पृ. २१७६



- २५ सार्थ गुजराती वर्तनी कोश : गुजरात विद्यापीठ, पृ.८२०
- २६ सार्थ गुजराती वर्तनी कोश : गुजरातविद्यापीठ, पृ.८२२
- २७ न्यु वेबस्टर्स डिक्सनरी आफ द इंगलिश डीलेर, पृ.२१६
- २८ कॉलिन्स इंग्लीश डिक्शनरी, सं. पेट्रिकस हैकस, पृ.३२४
- २९ भार्गव इंग्लीश डिक्शनरी, सं. प्रो. आर. सी. पाठक, पृ.१०५
- ३० बृहत अंग्रजी-हिन्दी कोश :भाग-१ डॉ. हरदेवबाहरी, पृ.३६४
- ३१ बृहत अंग्रजी-हिन्दी कोश :भाग-१ डॉ. हरदेवबाहरी, पृ.३६४
- ३२ बृहत अंग्रजी-हिन्दी कोश :भाग-१ डॉ. हरदेवबाहरी, पृ.३६४
- ३३ भार्गव इंग्लीश डिक्शनरी, सं. प्रो. आर. सी. पाठक, पृ.५६५
- ३४ समकालिन हिन्दी नाटक: कथ्य चेतना, डॉ.चन्द्रशेखर, पृ.१०
- ३५ समकालिन हिन्दी कविता, डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, पृ. १६
- ३६ नयी समीक्षा: नये सन्दर्भ, डॉ. नगेन्द्र, पृ.६३
- ३७ “I therefore, often wonder if the term-contemporaneity Does not Better articulate the-concept of modernity” - modernity and Contemporary Indian Literature, P.5
- ३८ “विकल्प” कथा साहित्य विशेषांक-१९६८, ई.सं.शैलेष भट्टियानी, समकालिन कहानी में नयी संवेदना” ।
- ३९ “आभंग” चन्द्रकान्त बक्षी, पृ.१२३
- ४० जलते और उबलते प्रश्न, डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ.७१
- ४१ बेबस्टर्स, थर्ड इन्टरनेशनल डिक्शनरी, वोल्यूम-१ पृ.४६१
- ४२ समकालिन हिन्दी कविता में आम आदमी, मृदुला जोषी
- ४३ उपन्यास का आँचलिक वातायन, डॉ. रामपत यादव, पृ.४२
- ४४ उपन्यास का आँचलिक वातायन, डॉ. रामपत यादव, पृ.४२
- ४५ नयी कविता के प्रतिमान, डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.२६४
- ४६ समकालिन हिन्दी कविता में आम आदमी, मृदुला जोषी, पृ.१

- ४७ उपन्यास का आंचलिक वातायन, डॉ.राममत यादव, पृ.५०
- ४८ दिनकर के काव्य में परंपरा और आधुनिकता, डॉ. जयसिंह, पृ.४४
- ४९ बृहत हिन्दी कोश-सं.कालिका प्रसाद, पृ.१३
- ५० आधुनिकता: एक संकुल संप्रत्यय, बिपिन आशर, पृ.१६
- ५१ “कल्पना”, अगस्त-सितम्बर, १९६६, नवलेखन विशेषांक-१, संपादकीय
- ५२ नयी कविता के प्रतिक्रमान, डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ.२६४
- ५३ दृष्टव्य-हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास बदलते युग-बोध के परिपेक्ष्य में, प्रेमचन्द माहेश्वरी, पृ.४७
- ५४ द ओक्सफोर्ड डिक्शनरी, वोल्युम, XII
- ५५ भार्गव इंग्लीश डिक्शनरी, सं. प्रो.आर.सी.पाठक, पृ.१०५
- ५६ बृहद अंग्रेजी-हिन्दी कोश:भाग-१, डॉ.हरदेव बाहरी, पृ.३६४
- ५७ बृहद अंग्रेजी-हिन्दी कोश:भाग-१, डॉ.हरदेव बाहरी, पृ.३६४
- ५८ भार्गव इंग्लीश डिक्शनरी, सं. प्रो.आर.सी.पाठक, पृ.५६५
- ५९ समकालिन कहानी की पहचान (प्रस्तावना), डॉ. नरेन्द्रमोहन, पृ. ७
- ६० समसामयिक नाटको में वर्ग-चेतना, पृ.६४
- ६१ दिनकर के काव्य में परंपरा और आधुनिकता, डॉ. जयसिंह “नीरद” पृ.५२
- ६२ वेबस्टर थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी, पृ.१५२२
- ६३ दिनकर के काव्य में परंपरा और आधुनिकता, डॉ. जयसिंह “नीरद”, पृ.५३
- ६४ राजपाल हिन्दी शब्द कोश, डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.८०५
- ६५ विजिगीषु जीवनवाद (हिन्दी), प्र-श्री पाण्डुरंगशास्त्री आठवले, पृ. ४
- ६६ मेरे प्रियनिबंध(साहित्यकार:व्यक्ति और समष्टि), ले.महादेवी, पृ.२३
- ६७ आंचलिक कथा : दशा और दिशा, मैत्रीपुष्पा, ३ मई से, १९६२,
- ६८ भार्गव इंग्लीश डिक्शनरी, सं.प्रो.आर.सी.पाठक, पृ.४६७

- ६६ हिन्दी शब्द सागर (भाग-८), सं.श्यामसुंदरदास, पृ.४५१
- ७० “मनुस्मृति” सरल टीका, पंडित रामेश्वर, पृ. १५४
- ७१ “शुकनीति”, शुकाचार्य, पृ. १/६१
- ७२ हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, २५ अप्रैल, १९६०
- ७३ समकालिन कविता पर एक बहस, जगदीश नारायण श्रीवास्तव, पृ.१२२
- ७४ साहित्यशास्त्र, डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. १०
- ७५ कल्याण-हिन्दु संस्कृति, अंक, पृ. २४
- ७६ भार्गव इंग्लीश डिक्शनरी, सं. प्रो.आर.सी.पाठक, पृ.४६७
- ७७ बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक, डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत  
पृ.७८
- ७८ आधुनिकता: एक संकुल संप्रत्यय, बिपिन आशर, पृ. २७
- ७९ हिन्दी खंडकाव्यों में युगबोध, डॉ. राजबाला भारद्वाज, पृ.३५
- ८० मानवतावाद और साहित्य, नवलकिशोर, पृ. २०-२१
- ८१ आधुनिक साहित्यबोध, डॉ. नामवरसिंह, पृ. ४४
- ८२ समकालिन हिन्दी कविता के विविध आयाम, अंजनीकुमार दुबे
- ८३ सारिका, अंक - ३०१, पृ. २२
- ८४ साठोत्तरी हिन्दी नाटको की सामाजिक चेतना, डॉ. जयश्री शुक्ला  
मुखपृष्ठ से उद्धृत
- ८५ रंगमंच (लेख), शंकरशेष रचनावली, खंड: पाँच, सं. डॉ. विनय,  
प्रकाशन वर्ष १९६६, पृ.३६२
- ८६ नाट्य निबंध, दशरथ ओझा, पृ. २०३
- ८७ रंगमंच की भूमिका और हिन्दी नाटक, रघुवर दयाल वाष्णीय, पृ.३६४



तृतीय अध्याय  
डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में  
सामाजिक परिवेश

- ❖ स्वातंत्र्योत्तर युगीन भारतीय समाज
- ❖ मध्यमवर्गीय जीवन और मानसिकता
- ❖ उच्चवर्गीय जीवन की मानसिकता
- ❖ निम्नवर्गीय जीवन की मानसिकता
- ❖ उपन्यासकार मनमोहन की सामाजिक संलग्नता
- ❖ “बदलती करवटें” (१९६७) –
  - ‘बदलती करवटें’ में समाज व्यवस्था
  - सामाजिक सम्बन्ध
  - साम्प्रदायिकता
  - भाग्यवाद में आस्था
  - जातिवाद
  - पीढ़ी अन्तराल
  - निष्कर्ष

❖ “एक और रक्तबीज” (१९८४)

- ‘एक और रक्तबीज’ में समाज व्यवस्था
- सामाजिक समस्याएँ
- आरक्षण की समस्या
- अस्पृश्यता की समस्या
- जातीय संघर्ष
- बेरोजगारी की समस्या
- मद्य-निषेध की समस्या
- सुधारवादी दृष्टिकोण
- युवा पीढ़ी में चेतना का संचार
- रूढ़िवादी परम्पराओं का विरोध
- अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन
- साम्प्रदायिक एकता
- निष्कर्ष

## तृतीय अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में सामाजिक परिवेश

### ❖ स्वातंत्र्योत्तर युगीन भारतीय समाज

स्वातंत्र्यता के पश्चात् हमारे सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक मूल्यों में जो विघटन हुआ है उसके फलस्वरूप पुराने स्थिर सत्य अधिकांश झूठे दिखाई देने लगे ।

नई सामाजिकता तथा बदले हुए परिवेश की विकास चेतना एवं पारस्परिक जीवनगत मूल्यों में भारी उथल-पुथल मची थी । “संयुक्त परिवारों का टूटना दाम्पत्यजीवन एवं वैयक्तिक जीवन धारा में अनेक परिवर्तनों के साथ साथ भारतीय समाज अनेक विसंतियों, विषमताओं एवं कुरीतियों से मुक्त नहीं हो सका था । एक सुनिश्चित जीवन दृष्टि से जीवन यापन करना कठिन होता जा रहा था । वर्ग-भेद, जातिभेद, धार्मिककुलषता अन्धविश्वास रूढ़िवादिता ने जीवन को अशान्त, असुरक्षित और अस्थिर बना दिया था ।”<sup>१</sup>

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज व्यवस्था में परिवर्तन आने का महत्वपूर्ण कारण शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार है । आज आम आदमी ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त कर रहा है जिससे उसका चिन्तन विकसित हुआ है । स्त्री-पुरुष दोनों को ही विकास के समान अवसर प्राप्त हो रहे हैं और इसी कारण नारी भी आज धर की चार दीवारी में कैद नहीं बल्कि अपने अधिकारों, अपने व्यक्तित्व निर्माण, अपनी स्वतन्त्रता के प्रति सजग हैं । शिक्षा ने उसे आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बना दिया है । अब वह किसी के आश्रय की आवश्यकता अनुभव नहीं करती इस लिए अपनी स्वतन्त्रतापर

आक्रमण होने पर आज की नारी विद्रोहिणी बन जाती है। विष्णुप्रभाकर के नाटक (युगे युगे क्रान्ति) की शारदा नारी जीवन में नवोन्मेष की प्रतीति कराती हुई मुक्ति की घोषणा करती है – “स्त्रियाँ घर में रहने के लिए नहीं होती। वे दिन अब बदल गए। क्या तुम नहीं जानते कि आदि शक्ति, महाचण्डी, महामाया, महाकाली, ये सभी स्त्रियाँ थी। इन्होंने ही अनाचारी दानवों को मारकर सृष्टि की रक्षा की थी।”<sup>२</sup>

शिक्षा के प्रसारने प्राचीनकाल से चली आ रही संयुक्त परिवार प्रथा को भी झकझोरा है। चूँ कि संयुक्त परिवार में व्यक्ति को किसी न किसी अधिकार में रहना पड़ता है, जिससे उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास नहीं हो पाता। शिक्षित व्यक्ति यह सहन नहीं कर पाता और विद्रोह कर उठता है। पाश्चात्य सांस्कृतिक प्रभाव, नौकरी की समस्या, आर्थिक परिस्थिति आदि ने संयुक्त परिवार को छोटे-छोटे से परिवार में बदल दिया है। संयुक्त परिवार में विघटन का प्रमुख कारण पुरानी तथा नई पीढ़ी के विचारों में अन्तर है – “पीढ़ियों का यह संघर्ष केवल व्यक्तियों का संघर्ष नहीं, मान्यताओं, मूल्यों का संघर्ष भी है। पुरानी पीढ़ी आदर्श को, नई पीढ़ी यथार्थ को पुरानी पीढ़ी ने नैतिकता और नई ने आकांक्षा को लेकर अपने-अपने लिए जो बन्द घेरे बना लिए हैं, उससे वे एक दूसरे के लिए इतने संदर्भहीन, निरर्थक और निर्मूल हो जाते हैं कि वे एक-दूसरे को समझ नहीं पाते।”<sup>३</sup>

इसके साथ ही साथ शिक्षित – अशिक्षित के रहन-सहन, खान-पान विचारधारा आदि में साम्य न होने के कारण संयुक्त परिवार में रहना मुश्किल हो गया और एकाकी परिवार प्रमुखता प्राप्त करते गये। फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आया।

जहाँ एक ओर शिक्षा ने व्यक्ति चेतना में सहजता उत्पन्न की है वहीं दूसरी ओर व्यक्ति को निराशा भी प्रदान की है क्योंकि आज की शिक्षा न

तो व्यावहारिक है और न ही रोजगारोन्मुख अपितु सैधान्तिक अधिक है । इसलिए आज लाखों शिक्षित युवक – युवतियाँ बेरोजगार हैं ।

इसके साथ ही औद्योगीकरण ने भी सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित किया । औद्योगीकरण के कारण ग्रामीण व्यक्ति गाँव छोड़कर नौकरी के लिए शहर की ओर प्रयाण करने लगे । गाँव से नगर तक सीधा सम्पर्क जुड़ा है और परिवर्तन की गति तेज हुई है । इन परिवर्तनों के कारण हमारा नैरन्तर्य टूट गया है और जिन्दगी उखड़ गई है, जीवन के अनगिनत तौर – तरीके, जिनकी जड़े दूर तक गड़ी हुई थीं, आज अन्तिम रूप से टूट चुकी हैं ।”<sup>x</sup>

इस स्थिति अपने परिवार को साथ रखना उन्हें सुविधाजनक लगा और संयुक्त परिवार प्रथा टूटने लगी । संयुक्त परिवार टूटने से बच्चे सिर्फ अपने माता-पिता तक ही सीमित रहें, अन्य रिश्तों को भूलते गये, पारस्परिक सद्भाव समाप्त होता गया और अहंम की भावना ने व्यक्ति में विकास पाया । व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्ध टूटने लगे और व्यक्ति चेतना स्वकेन्द्रित हो गई ।

औद्योगीकरण के बढ़ते चरणों के कारण जाति-व्यवस्था में भी परिवर्तन आया है । वर्ण व्यवस्था पर आधारित पेशों पर आश्रित रहना दुष्कर है । शहरों के होटल, मिल, कारखानों में कार्य करने से, एक साथ उठने बैठने के कारण खान-पान आदि नियमों का निर्वाह नहीं हो पाता । इधर शिक्षा के प्रसार के कारण विकसित व्यक्ति-चेतना ने भी जाति व्यवस्था का विरोध किया है । परिणाम स्वरूप जाति-व्यवस्था समाप्ति पर है । “भारतीय वर्णव्यवस्था भारतीय सामाजिक संगठन का महत्त्वपूर्ण आधार रहा है । आज वह लगभग टूटने के कगार पर है । भारत में वर्णव्यवस्था वैदिक संस्कृति की देन है । जिसमें जीवन और समाज को सुव्यवस्थित करने की व्यवस्था थी । कालान्तर में इसमें परिवर्तन आया । वर्ण, जातियों



और उपजातियों में विभाजित होता गया । इन जातियों और उपजातियों ने अपने-अपने विश्वासों और मान्यताओं के रक्षार्थ अपना पृथक - पृथक संगठन बनाना शुरू किया और आधुनिक काल तक आते-आते यह एक प्रथा के रूप में विकसित होकर समाज को अत्याधिक विशृंखलित करने में सफल हुई ।”<sup>५</sup>

वर्ण, जातियों और उपजातियों का स्थान विभिन्न व्यवसायों पर आधारित वर्गों ने ले लिया है, जैसे सामंतवर्ग, पूँजीपतिवर्ग, श्रमिक वर्ग, और मध्यमवर्ग । वर्ग बन जाने से एक वर्ग से दूसरे वर्ग में दूरी बढ़ी है और व्यक्ति चेतना एक-दूसरे का खुलकर विरोध कर रही है । इसी कारण हड़ताले, नारेबाजी आज की समाज-व्यवस्था में सर्वाधिक दिखाई पड़ते हैं । “किसी भी विकसित समाज के लिए मानव का जाति एवं वर्ग में बंटवारा अच्छी बात नहीं कही जा सकती है । समाज में व्यक्ति के चरित्र, गुण, मनीषा, साधना और तपस्या की अपेक्षा जन्मगत सम्मान उसके उन्नति के पथ पर हमेशा बाधक होता रहा है । ऐसा समाज किसी भी प्रकार उन्नति के पथपर अग्रसर नहीं हो सकता ।”<sup>६</sup>

धार्मिक स्थिति के परिवर्तनने नैतिकता के मानदण्डों को बदल दिया है । व्यक्ति, जिस पर पहले धर्म का नियन्त्रण था अब स्वतन्त्र एवं निर्भीक है । विज्ञान और भौतिक उन्नति ने धर्म की अधिकांश मान्यताओं को ध्वस्त कर दिया । डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त का मानना है “सामाजिकता में धर्म के पर्यवसान ने नये-नये प्रश्नों को उत्पन्न किया है । ..... धर्म की निर्धारण शक्ति क्षीण होती जा रही है । पुजारी और पुरोहित आज जनता और ईश्वर के मध्यस्थ नहीं रह गए हैं । व्यक्ति की क्रियाएँ उसके अपने द्वारा संचालित एवं निर्धारित होती हैं । जीवन में धार्मिक आदर्शों की अवैध घुस पैठ पर विज्ञान ने रोक लगा दी हैं ।”<sup>७</sup>

मानववाद के साथ ही सारी नैतिकता का केन्द्र ईश्वर की जगह मानव बन गया । प्राचीन समय में व्यक्ति समाज-विरोधी कार्य करता था तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था, परन्तु आज व्यक्ति सामाजिक बन्धन स्वीकारने के लिए तैयार नहीं क्योंकि वह उन्हें व्यक्तित्व के विकास में बाधक मानता है । परम्पराएँ और रीत-रिवाज उसे प्रभावित नहीं करते । फलतः वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में परम्परा-मुक्त व्यक्ति-चेतना ने विकास पाया है ।

बदलते परिवेश में, बदली हुई स्थिति में नैतिकता और पवित्रता की धारणाओं एवं मान्यताओं ने धार्मिक सीमाओं से निकलकर पवित्रता और नैतिकता को मानवीय सन्दर्भ दिया । विवाह जैसे परम्परागत पवित्र बन्धन ढीले पड़ गए हैं । प्राचीनकाल में विवाह कोई समस्या नहीं थी, परन्तु आज परिवर्तित विचारधाराने विवाह-संस्था को ही निरर्थक घोषित किया है । विवाह के सम्बन्ध में प्रायः ऐसे सुर उठते हैं कि, जो शादी करते हैं वे अपने आपके साथ मजाक करते हैं । “विवाह माने खुद को समाप्त करना है ।”<sup>८</sup>

आधुनिक नवयुवक-नवयुवती विवाह के सम्बन्ध में स्वयं निर्णय लेना पसन्द करते हैं । यदि परिवार अथवा समाज उसमें बाधा उपस्थित करता है तो व्यक्ति कानून का आश्रय लेकर सामाजिक मान्यताओं की अवहेलना करता है और व्यक्ति में विद्रोह की भावना विकसित होती है । डॉ. विमला शर्मा के अनुसार - “स्त्री का मूल्य जो अब तक यौन पवित्रता पर आँका जा रहा था, धीरे-धीरे अब शिथिल होने लगा है और स्त्री के सामाजिक मूल्यों को निर्धारित करने के लिए उसके अन्य आन्तरिक, व्यावहारिक तथा सामाजिक गुणों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाने लगा है । नारी सम्बन्धी यौन प्रतिबन्ध के कड़े बन्धन ढीले पड़ते जा रहे हैं और इस प्रकार वह

प्राचीन सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह करके नवीन मान्यताओं को स्थापित करने के लिए प्रयत्न शील दिखाई देती है।”<sup>१८</sup>

सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में अस्थिरता आयी है। प्राचीनकाल में बालक माता-पिता की आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे परन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने हमारी सामाजिक स्थिति को परिवर्तित किया है। वर्तमान समय में बालक के लिए माता-पिता के आदर्शों के खिलाफ आचरण करना “धर्म” है, शिक्षार्थी के लिए शिक्षक का अनादर करना” उसकी खिल्ली उड़ाना धर्म है” अनुशासन हीनता धर्म है। स्पष्ट है कि वर्तमान समय में नैतिकता के मान मुल्यों में भारी गिरावट आयी है।

आर्थिक स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए स्त्रियों ने पुरुषों से टकराना शुरू किया उसे पुरुष समाज सहन नहीं कर सका। इसी कारण स्त्री-पुरुष के परम्परागत सम्बन्ध विघटित हुए हैं। “आज वह टूटन महसूस कर रहा है और बाह्य परिवेश की कटुता से भी स्वयं ही टूटकर बिखर रहा है।”<sup>१९</sup>

इस प्रकार पारिवारिक सम्बन्धों (भाई, बहिन, पति - पत्नी आदि) में भी परिवर्तन आया है। शिक्षा व स्वतन्त्रता के इस युग में नारी पुरुष के बन्धन से मुक्त है। पुरुष किसी दूसरी नारी से सम्बन्ध रखता है तो नारी किसी पर पुरुष से। “अगर वे साथी बदलते हैं, तो इसमें हर्ज क्या है।”<sup>२०</sup>

इसी कारण व्यक्ति - चेतना में वैवाहिक जीवन के प्रति अनास्था और अविश्वास उत्पन्न होता जा रहा है। समाज की इन विषम परिस्थितियों और समस्याओं के लिए कारणभूत घटक तत्त्वों में वर्तमान शिक्षा, स्वतंत्रता, बुद्धिवादी दृष्टि वैज्ञानिकता आदि के विकास ने सामाजिक स्थिति के परिवर्तन में महत्वपूर्ण योग दिया है। परिवर्तित सामाजिक स्थिति से व्यक्ति-चेतना प्रभावित एवं विकसित हुई है, उसने समाज के महत्त्व को

मानने से इन्कार कर दिया है । यह समसामयिक स्थिति स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में भी उपलब्ध है ।

भारतीय समाज व्यवस्था राजाओं और सामंतों के चंगुल से मुक्त होकर उच्चवर्ग के आधीन हो गई है । उच्चवर्ग में राजा, जमींदार, साहूकार, पूँजीपति उद्योगपति, गाँव का मुखिया, मील मालिक, नेता, नवधनाढ्य वर्ग और ऊँचे होद्दे पर आसीन अफसर आदि सामिल हैं, जो एक ओर सामंती संस्कारों से ग्रसित है, तो दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता की अन्धी दौड़ने लोगों को पीड़ित कर दिया है । इनमें से तो कुछ तो ऐसे हैं, जो अपनी जन्मजात कुलीनता, वंश परम्परा, अभिजात संस्कार का निर्वाह जीवन पर्यन्त करते हैं ।

### ➤ *मध्यमवर्गीय जीवन और मानसिकता :*

समसामयिकता आधुनिक साहित्य की संवेदना का प्रमुख केन्द्र बिन्दु बना हुआ है । ग्रामीण समाज में आधुनिकता और शहरीकरण के वस्तुगत एवं भावगत संघात की प्रक्रिया से जो परिवर्तन हुए उसके अनेक संदर्भ समसामयिक साहित्य की कथावस्तु बने । “हिन्दुस्तान में मध्यमवर्ग का उदय ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना और अंग्रेजी व्यवस्था के विस्तार के साथ हुआ ।”<sup>१२</sup>

### ➤ *उच्चवर्गीय जीवन की मानसिकता :*

उच्चवर्ग के सान्निध्य से मध्यमवर्ग के अन्दर कुछ लालसाएँ जागी हैं । उसकी अपनी सीमाएँ, विवशताएँ और संस्कार थे । परिणाम स्वरूप यह उच्चवर्ग के साथ समायोजन न साध सका, किन्तु अपने आधार को छोड़ देने के कारण वह अपने वर्ग से भी कट गया है । मानसिक रूप से मध्यमवर्ग प्राचीन पुरातन खोखली मान्यताओं एवं प्रथाओं से लिपटा होता

है । सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक शोषित एवं उपेक्षित वर्ग निम्नवर्ग कहलाता है । समाज में सम्पत्तिवान और सम्पत्तिहीन वर्ग आदिकाल से विद्यमान रहे हैं । ऐतिहासिक दौर में निम्नवर्ग कभी दास, कृषिदास, श्रमिक, सर्वहारा तथा भारतीय समाज में कभी शूद्र आदि संज्ञाओं से अभिहित होता रहा है । निर्धनता, अशिक्षा, निम्नजीवन स्तर इसके लक्षण माने जाते हैं । “बहुत से लोगों की मान्यता है कि यह वर्ग धृणित लोगों का समूह होता है । क्षुद्र चरित्र, निम्न नैतिकता, अपराध, अयोग्यता, बुद्धिहीनता, साधनहीनता, आलस्य, आकांक्षा का अभाव आदि से ग्रस्त होता है ।”<sup>१३</sup>

### ➤ निम्नवर्गीय जीवन की मानसिकता :

भारतीय निम्नवर्ग समाज की आधारशिला है । मजदूरी करके वे अपने परिवार को पोषते हैं । मजदूर अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुकर ऐसी विषम परिस्थितियों में कहीं भागकर नहीं जा सकता । वे अपनी सरलता, ईमानदारी और जीवनशैली की सत्यता से पूर्णरूपेण बंधे रहते हैं । वे अनेक प्रकार के कष्टों को सहना अपनी नियति मानते हैं । हाड़तोड़कर, भूखे रहकर, मार कर खाकर भी वे रात-दिन काम करते हैं । इस आशा से कि उनका परिवार कम से कम एक समय अपना पेट तो भर ले । भले उनके शरीर पर ग्रीष्म, वर्षा शीत के प्रकोप से बचने के लिए आवश्यक वस्त्र न हों, इसकी उन्हें चिन्ता भी नहीं रहती ।

### ❖ उपन्यासकार मनमोहन की सामाजिक संलग्नता

समकालीन कथालेखन चाहे वह उपन्यास हो या कहानी के दो ही मुख्य सरोकार हैं, अपने समय की चलती विषम समस्याओं से रचनात्मक स्तर पर साक्षात्कार जिनसे उन समस्याओं के प्रति स्वस्थ सोच विकसित हो सके और मानवीय सम्बन्धों की बारीक रेखाओं की सूक्ष्म पकड़ ही मुख्य

प्रवृत्तियाँ कथा- कृतियों को सामाजिक और वैयक्तिक धाराओं में वर्गीकृत कर देती है। किन्तु विशेषतः उपन्यास के संदर्भ में वे ही कथा कृतियाँ अधिक सफल होती हैं जिनमें दोनों कथा - प्रवृत्तियाँ सही अनुपात में विद्यमान होती है।

उपन्यास एक बड़ी कथा विधा है जिसमें दोनों प्रवृत्तियों को सही रूप में अनुस्यूत करने का अवसर उपस्थित रहता है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में वे ही शीर्ष कृतियाँ हैं जिनमें अपने समय की चिन्ताएँ या मानवीय सम्बन्धों का सुन्दर रागात्मक विश्लेषण हुआ है। हर्ष का विषय है कि डॉ. मनमोहन सहगलजी के उपन्यासों से गुजरते हुए यह अनुभव होता है कि उन्होंने सामाजिक प्रश्नों और चिन्ताओं को तो अपनी औपन्यासिक कृतियों में स्थान दिया ही है, यही उनके उपन्यासों की मुख्य- कथा-भूमि या आधार-भूमि है। किन्तु इसके साथ ही मानवीय सम्बन्धों, विशेषतः प्रेम सम्बन्धों को भी वे अपनी कृतियों में उसी प्रकार चित्रित कर सके हैं जिस प्रकार यह जीवन में एक आवश्यक प्रवृत्ति के रूप में विद्यमान है।

डॉ. सहगलजी से हिन्दी संसार उनके शोधक और समीक्षक रूप से अधिक परिचित है किन्तु उनका उतना ही श्रेष्ठ रूप एक उपन्यास सर्जक का है। गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों दृष्टियों से उनका उपन्यासकार हिन्दी में एक विशेष स्थान का अधिकारी है। सन् १९६५ ई. में प्रकाशित अपने प्रथम उपन्यास “जिन्दगी और जिन्दगी” से लेकर सन् १९८६ ई. में प्रकाशित “अन्ना पासवान” के साथ वे अपनी औपन्यासिक कला- यात्रा में बीस- इक्कीस वर्ष की अवधि पूरी करते हैं। समकालीन लेखन में अपने को निरन्तर चर्चा में बनाए रखने के लिए किसी भी लेखक के जीवन में निरन्तरता अनिवार्य है, आज एक दो रचनाएँ देकर कोई भी लेखक “गुलेरी” या अध्यापक पूर्णसिंह नहीं बन सकता। इस दृष्टि से भी डॉ. सहगलजी का उपन्यास निरन्तर क्रियाशील रहा है।

“जिन्दगी और जिन्दगी”, जिन्दगी और आदमी”, “बदलती करवटें”, कश्मीर की कसक”, “गरुलाधारे, मानव छलागया”, “एक और रक्तबीज” उनकी इस लम्बी कथा-यात्रा के विभिन्न पड़ाव हैं । उनके उपन्यासों का एक अत्यन्त सबल पक्ष यह है कि उपन्यास लेखन के वक्ती दौर से उन्होंने अपने को पूर्ण अप्रभावित रखा है । सन् १९६५ से सन् १९८६ तक हिन्दी उपन्यासने अपने को अनेक दौर से गुजरते देखा है, कभी उसमें देहवादी दृष्टि से उपन्यास लेखन हुआ तो कभी गन्दी बस्तियाँ तो कभी विभाजन की विभीषिका, कभी किसी आँचल विशेष की क्षेत्रीयता या आँचलिकता तो कभी राजनीतिक प्रभावों को आकलित करनेवाला लेखन हुआ, किन्तु इस सबसे अप्रभावित रहकर डॉ. सहगलजी का उपन्यासकार अपने को सामाजिकता से गहरे और गहरे रूप से संलग्न करता चला गया । आरम्भ के दोनों उपन्यासों की वैयक्तिकता से लेखक बहुत शीघ्र उबरकर अपने को सामाजिक सरोकारों से प्रतिबद्ध करता है । यह उपन्यासकार की रेखांकित की जानेवाली विशेषता है कि वह अपनी ही बनायी रूढ़ियों को तोड़कर अपने लेखन का अगला कदम उठाता है ।

“जिन्दगी और जिन्दगी” (१९६५) उनकी प्रथम औपन्यासिक कृति है, जिसकी कथा को दो खण्डों में रखकर चित्रित किया गया है । शिल्पस्तर पर उसमें किसी भी रचनाकार की आरंभिक कृति की अपूर्णताएँ भी हैं, किन्तु कथ्य-स्तर पर उसमें एक विशेष परिपक्वता है । यथार्थ-चित्रण का जो मुहावरा इस दौर में विकसित हुआ, उससे अलग हट कर इस उपन्यास में जिन्दगी को “जैसी है वैसी” रखने की निष्ठा एक सही प्रतिबद्धता के रूप में प्राप्त होती है । नवयुवक दीपक जिस जीवन को संघर्षमय रूप में जीता है, वह अत्यन्त प्रेरक और प्रामाणिक है । दीपक की जिन्दगी, जिन्दगी के संघर्ष में हिम्मत पस्त अनेक नवयुवकों के लिए प्रेरणाप्रद है । किन्तु कहीं भी कथा आदर्श का चोला नहीं पहनती । जिन्दगी की यथा तथ्यता में

स्वतः ही आदर्श के समीकरण आ गए हैं । दिल्ली की ऐकेडमियों की खाक छानता दीपक एक दिन वह बनकर दिखाता है जो उसका प्राप्य था, लक्ष्य था । दीपक की दृष्टि और आचरण एक पल के लिए भी अपने इस लक्ष्य से हटती नहीं है, विचलन के अनेक अवसर आते हैं किन्तु वे उसे पद-च्युत नहीं कर पाते हैं । प्रथम खण्ड की कथा दीपक की योग्यता अर्जित करने, एम. ए. पास करने, वहभी इतनी विषम परिस्थितियों में, तक की कथा है । जिसके कुशल निर्वाह की प्रशंसा करनी पड़ेगी । अपनी शिष्या दीप्ति के प्रति पहले नवयुवक अध्यापक दीपक का सहज आकर्षण, फिर इस आकर्षण का प्रेम में पर्यवसान, प्रेम का सामाजिक भय, मर्यादाओं और प्रेमेतर अन्य कारणों से वैवाहिक बन्धन में न बँध पाने की विवशता, आदि, प्रारम्भ से लेकर अन्ततक लेखक अत्यन्त सही कलम से चित्रित कर सका है ।

दीपक और दीप्ति के सम्बन्धों और व्यवहार में अनेक ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं, जब दोनों शरीर स्तर पर उतर कर प्रेम-क्रीड़ा में उलझ सकते थे किन्तु उपन्यास में यथार्थ और कल्पना की मिक इतनी सुनयोजित है कि लेखक के हाथ से कथा-सूत्र छूटता नहीं है । यह वास्तविक स्थिति भी है कि आकर्षण होते हुए भी नवयुवक अध्यापक किसी लड़की के प्रति अपनी भावनाओं को पूर्ण ईमानदारी से व्यक्त नहीं कर सकता क्यों कि उसका (अध्यापक), अध्यापक से सामाजिक अपेक्षाएँ आदि आडे आती है । दीपक इसी संघर्ष पूर्ण मनःस्थिति से गुजरता है । दीप्ति की माँ के सामने दीप्ति से अपने बहिन के सम्बन्ध और भीतर प्रेमी की जलन, हाथ से अवसर गवाँ देने की कसक, आदि उपन्यास की अत्यन्त स्वाभाविक स्थितियाँ हैं जिन्हें किसी भी उपन्यासकार की प्रथम कृति में रोमानी बोध से ग्रस्त होने के पूरे खतरे विद्यमान थे किन्तु उपन्यासकार उन सभी से अपनी कथा को पूर्ण सुरक्षित निकाल ले आता है । यहाँ कथा के लिए सबसे बड़ा



खतरा उसके शरीर-स्तर पर उतर आने का था, वे दोनों भी “नदी के द्वीप” के भुवन और रेखा में तब्दील हो सकते थे किन्तु वह “जिन्दगी और जिन्दगी” के उपन्यास को काम्य नहीं था । वह तो इस प्रेम कथा की पूर्णतः प्रासंगिक रखकर दीपक के जीवटपूर्ण जीवन और उसकी दुर्धर्ष जीवन-शक्ति को सामने लाना चाहता है जिसमें वह पूर्ण सफल हुआ है । अध्यापक और शिष्या के प्रेम सम्बन्धों को स्वीकारने का साहस और अध्यापकीय आदर्शों की रक्षा उपन्यासकार ने बहुत कुशलता से की है ।

इस उपन्यास का दूसरा खण्ड नवयुवक दीपक के जीवन में स्थिर होने, अर्से बाद एक ढंग की नौकरी लगने और विवाह – सूत्र में बँधने की कथा कहता है । फिर इस उपन्यास का आकर्षक पक्ष यह लगता है कि इसमें भी जीवन की कल्पित स्थितियाँ बहुत कम या प्रायः है ही नहीं अपितु एक ऐसी प्रामाणिकता है जो उपन्यास में यथार्थकन का प्रतिमान बन सकती है । निम्नमध्यमवर्गीय परिवार के नवयुवक की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि वह पत्नी रूप में जिन आदर्शों को पाले रखता है, उसके वे स्वप्न यथार्थ से टकराकर कर बुरी तरह चकनाचूर हो जाते हैं । मन में दीप्ति जैसी सुघड़ सुशीला है तो यथार्थ में उभरे दाँतोवाली संस्कार हीन ज्योति है । उपन्यासकार के दीपक को इसरूप में जिन्दगी की जिस विसंगति को भोगना पड़ता है, उससे इसवर्ग के हजार-हजार युवकों की जिन्दगी को शब्द मिल जाते हैं ।

लेखकीय ईमानदारी यह है कि वह ज्योति को उसी रूप में प्रस्तुत करता है जैसी वह है, न तिलभर घटाकर और न बढ़ाकर । दीपक का वैवाहिक जीवन किसी भी प्रकार के लेखकीय आग्रहों से ग्रसित नहीं है । यही यथार्थ दृष्टि टाँडा उडमऊ के ग्रामीण जीवन के चित्रण में देखी जा सकती है । ग्रामीण युवतियों की छेड़-छाड़, बाहर से आकर रह रहे व्यक्तियों के प्रति व्यवहार, ग्रामीण समाज के यौन-सम्बन्ध सभी कुछ का

लेखक बेबाक चित्रण कर सका है। इसमें अपनी पत्नी से भी दीपक के जो सम्बन्ध हैं वे भी यथार्थ की दृष्टि लिए हुए हैं। दीपक वैवाहिक – सम्बन्धों की फिसली गाड़ी को पुनःपुनः पटरी पर बिठाने की चेष्टा करता है किन्तु विशेष प्रकार के संस्कारों में पत्नी ज्योति की हठधर्मिता उसकी एक नहीं चलने देती। उस पत्नी के साथ दीपक का जीवन दूभर हो गया है, जो पति के अंग-संग को अपवित्र और अप्राकृतिक मानती है, जो उसके चुम्बन को स्वास्थ और, हाइजीन” की परिभाषों में परीक्षित करती है। दीपक पीड़ा लिए हुए भी अपनी सामाजिकता का निर्वाह करता है। इस रूप में निश्चय ही दीपक हमारी सहानुभूति का पात्र हो उठता है। इस वैवाहिक जीवन से निजात दीपक की सुदूर स्थान नागपुर में लगी नौकरी दिला पाती है। इस प्रेम चित्रण में ज्योति का व्यवहार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रकाश में भी खरा उतरता है।

“जिन्दगी और जिन्दगी “उपन्यास की अगली कड़ी के रूप में डॉ. सहगलजी का दूसरा उपन्यास “जिन्दगी और आदमी” (१९६६ ई.) आता है। इस उपन्यास में सभी पात्र वे ही हैं जो पिछले उपन्यास में हैं और वे अपनी आगे की जिन्दगी यहाँ जीते हैं। ज्योति की ओर से टूटे और फिरे मन :स्थिति में नागपुर में ही दीपक से उसकी पूर्व प्रेमिका दीप्ति अपने इंजीनियर पति के साथ आकर मिलती हैं। दीप्ति का पति उसके जीवन को कटु बना देता है, वह एक मुक्त जीवन जीने का आदी है और समझता है कि दीपक और दीप्ति के बीच अभी भी कुछ है जबकि ये दोनों अपने –वर्तमान को स्वीकार करने की चेष्टा में हैं। वे किसी भी रूप में अपने अतीत को वर्तमान में नहीं लाना चाहते। दोनों को एक दूसरे के वर्तमान से दूख होता है किन्तु फिर भी वे अपने ही द्वारा खड़े किये गये आदर्शों के लिए जीना चाहते हैं।

इसी बीच दीपक की नियुक्ति गुजरात में सौराष्ट्र शिक्षा विभाग में राजकोट के एक कोलेज में हो जाती है । यहाँ अपने कथा नायक को पहुँचाकर उपन्यासकार की दृष्टि गुजरात के सामाजिक जीवन का अंकन करने में प्रमुख हो उठती हैं । दीपक का यहाँ भी अपनी एक छात्र सरोज से प्रेम करा कर लेखक गुजराती समाज के अंतरंग में प्रवेश करता है । सरोज का प्रेम, कॉलेज के सांस्कृतिक उत्सव, पदमाबेन और भारती का सान्निध्य आदि के द्वारा सौराष्ट्र का सामाजिक परिदृश्य पाठक के सम्मुख जीवंत हो जाता है । विवाह से पूर्व भारतीय समाज में नारी को जो वरण की स्वतन्त्रता, वर और कन्या के मिलन की इच्छा का महत्त्व, आदि उत्तर भारत के लिये पूर्ण अपरिचित स्थितियाँ हैं । भारती और उसके होनेवाले पति के उन्मुक्त मिलन और उसकी सामाजिक स्वीकृति, सभी कुछ को बहुत प्रामाणिकता से उकेरा गया है । भारती को विवाह के बाद जो तिरस्कार अपने ससुराल पक्ष से मिलता है, उसको लेकर उपन्यासकार बहुत सुन्दर ढंग से इस प्रश्न को उठाता है कि भारतीय सामाजिक संदर्भों में विवाह से पूर्व नारी की कितनी स्वतन्त्रता किस सीमा तक स्वच्छंदता देय है । वहाँ उसने इस प्रश्न के श्वेत-श्याम पक्षों पर बड़ा प्रखर चिन्तन प्रस्तुत किया है, जिसमें गुजरात का देखा - भोगा समाज निकष बनकर आया है । कॉलेज के उत्सव के बहाने वहाँ का भवई नृत्य, शरद रितु के उत्सव, आदि अत्यन्त कुशलता से अपने पूर्ण विवरणों में अंकित हुए हैं । वस्तुतः यह इस उपन्यास का सर्वाधिक सशक्त पक्ष है । जहाँ तक उपन्यास की कथा का प्रश्न है दीपक नौकरी की दृष्टि से तो जीवन में सुस्थिर हो ही जाता है किन्तु प्रेम और वैवाहिक सुख की दृष्टि से वह अपने को बहुत छुछा अनुभव करता है । वस्तुतः उसकी प्रेम - कथा की परिणति जिस रूप में होती है, उसे दीपक उपन्यास के अंत में अपने मित्र निर्मोही को लिखे गये इन शब्दों में प्रकट करता है “तुम जानते हो कि दीपकने तुम्हारी को ठुकरा

कर गलत पत्नी के चुनाव से इतने वर्षों तक प्रेम वंचित जीवन बिताया है । दीप्ति की सहानुभूति का कुछ सहारा यदि मिल भी जाता, तो उसका कटु परिणाम वह भोग रही है । यहाँ किसी की सहानुभूति को प्रेम समझकर हाथ बढ़ा बैठा था, उत्तर में भरपूर प्रेम प्राप्त भी किया, ऊँचै वचन – वायदे भी मिले, किन्तु प्यार और वफा के वास्ते फिर अकस्मात् ताश के महलों की तरह ढक गए ।” वस्तुतः इसी कृम में उसके जीवन की व्यथा— कथा यही है, “दीप्ति ने मुझे सहारा देने से इंकार ही कर दिया, यह कोई गुजराती लड़की, जिस पर मुझे अभिमान होने लगा था ऐसी बताएगी, इसकी मुझे आशा न थी । कहीं ऐसा संकेत भी तो न था ।”<sup>१४</sup>

इस प्रकार कथा नायक की हताशा में ही जिन्दगी और आदमी उपन्यास का अंत होता है ।

ऊपर डॉ. सहगल के प्रथम उपन्यास “जिन्दगी और जिन्दगी” की शिल्पगत अभाव की इंगिति दी गयी थी । “जिन्दगी और आदमी” भी इसी उपन्यास की दूसरी कड़ी के रूप में सामने आता है, इसीलिए इसमें भी वह शिल्पगत अभाव बना रहता है । अत एव यह एक साथ दोनों उपन्यासों की उस शैल्पिक-न्यूनता की चर्चा की जा रही है । उपन्यासकार के पास कल्पना और यथार्थ की सही मिकदार प्रस्तुत करने की एक अत्यन्त सशक्त दृष्टि है किन्तु फिर न जानें क्यों उसने अपने उपन्यास को बहुत अधिक आत्मकथात्मक बना दिया है । यद्यपि उपन्यासों में बहुत सचेष्ट दृष्टि से यह मुद्रित है कि इस उपन्यास के सभी पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं किन्तु उपन्यासकार को निकट या बहुत निकट से जाननेवाले लोग जानते हैं कि लेखक ने अधिकांशतः अपने जीवन को ही प्रस्तुत किया है । स्थानों और पात्रों के नाम बहुत ही सुविधा पूर्वक बदले जा सकते थे । डॉ. सहगल के परममित्र “निर्मोही” (भगवानदास-निर्मोही) को उपन्यास में बिल्कुल उसी रूप में उनके पूर्ण “भौगोलिक परिचय” के साथ रखा गया है । दिल्ली और

टाँडा उडमऊ का परिवेश भी बहुत-बहुत लेखक की जिन्दगी से मेल खाता है । नागपुर और गुजरात के जीवन को भी इसी दृष्टि से देखा जा सकता है । वस्तुतः रचना में अनुभव को आनुभूति के रूप में पर्यवसित होने का अवसर मिलना चाहिए । ऐसा नहीं हो पाया है जबकि डॉ. सहगल के उपन्यासकार के लिए अत्यन्त सुकर था । यद्यपि यह अभाव उस पाठक के लिए कोई अर्थ नहीं रखता और उसके तर्ज यह अभाव है ही नहीं जो उपन्यासकार के विगत से परिचित न हो ।

“बदलती करवटें” डॉ. सहगल की उपन्यास यात्रा का अगला प्रौढ़ कदम है । कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से यह उपन्यास पिछले दोनों उपन्यासों से अधिक परिपक्व है । यहाँ तक आते-आते लेखक वैयक्तिक विवरणों से मुक्त हो पूरी तरह अपनी सामाजिक संलग्नता स्थापित करता है उसके उपन्यासों में अब व्यक्तिगत समस्याएँ न होकर सामाजिक समस्याएँ प्रखर रूप में सामने आता है । जब साहित्यकार की चेतना स्वयं से हटकर अपने परिवेश पर टिकती है, जब से सामयिक प्रश्नों और चिन्ताएँ झिझोड़ती हैं तो वह व्यक्ति और उसके सरोकारों को विस्मृतकर सामाजिक सरोकारों की रचना कर देता है । साहित्यकार की यह सामाजिक संश्लिष्टता “बदलती करवटें” में पूर्णतः विद्यमान है । यहाँ उपन्यासकार ने व्यक्ति, कर्मचन्द्र- महिन्दर और इन्दर-रानी, की कथा के माध्यम से हिन्दु-सिक्ख एकता तथा पंजाब-हरियाणा के भाषा के आधार पर अलग राज्य बनाने के प्रश्न को विभिन्नकोणों से उठाया है । यह उपन्यास सन् १९६६-१९६७ में प्रकाशित हुआ है किन्तु इसके हिन्दु - सिक्ख समस्या के पहलू आज भी पंजाब के वर्तमान सामाजिक - राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में पूर्ण प्रासंगिक और सार्थक हैं ।

साहित्यकार समय का ही चितेरा नहीं होता अपितु वह आगत का, भविष्य का द्रष्टा और प्रहरी भी होता है । पंजाब- हरियाणा के विभाजन

के समय उठे हिन्दु-सिक्ख एकता के सवाल आज और भी बड़े सवाल या निशान बन गये हैं । “बदलती करवटें” उपन्यास का पठन पंजाब के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य में और भी सार्थक तथा प्रभावी लगता है । पंजाब- हरियाणा के अलग-अलग राज्यों के रूप में अस्तित्व में आने के समय पुलिस ने जो बर्बरता का कहर ढाया उसका भी अत्यन्त प्रामाणिक वर्णन उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । इस सदर्भ में ऐतिहासिक सत्य को साहित्य का सत्य बनाने की उपन्यासकार के पास भरपूर कला है, एक ससद सदस्य का २ अप्रैल, १९६६ को समाचार पत्रों में दिया गया भाषण बड़ी कुशलता से उपन्यास में अनुस्यूत किया गया है । इस प्रकार राजनीतिक धटनाओं उथल- पथल को बड़ी ईमानदारी से लेखक “बदलती करवटें” में प्रस्तुत करता हुआ भाषावार प्रातों के निर्माण के प्रश्न पर अपना प्रखर चिंतन प्रस्तुत करता है । केवल “साम्यवादी दल” की भूमिका के सम्बन्ध में उपन्यासकार कटु हो गया है । जहाँ कहीं भी अवसर मिला है उपन्यास में साम्यवादियों की भरपूर निन्दा की गई है । लगता है इस दल के प्रति लेखक की पूर्वग्रह पूर्ण दृष्टि है जो यहाँ एकाधिक बार देखी जा सकती है, यथा “साम्यवादी शक्तियाँ अपना उल्लूसीधा करने के लिए सिक्खों और हरियाणवी नेताओं को भड़का रही थी । किन्तु उपन्यासकार का सबल पक्ष यह है कि वह हिन्दु-सिक्ख दोनों के अभावों की पूर्ण तटस्थ दृष्टि से मीमांसा करता है, उसकी दृष्टिपूर्णतः कबीर की तरह हो गयी है, इन दोनों को राह नपाने के लिए वह खुलकर फटकारता है । लेखक के हिन्दु-सिक्ख एकता सम्बन्धी विचारों का लाभ आज का समाज भी उसी रूप में उठा सकता है जिस रूप में इस उपन्यास में काम्य है । हिन्दु-और सिक्खों की नई पीढ़ी उपन्यास में साम्प्रदायिक कट्टरता की नहीं अपितु मानवीय एकता की हामी है, उपन्यास के अन्त में कर्मचन्द और महीन्दर कौर तथा इन्दर

और रानी का वैवाहिक बन्धन इस उद्देश्य की पूर्ति को प्रामाणित करता है ।

“कश्मीर की कसक” (१९७३) उपन्यास जम्मू-कश्मीर के जन-जीवन का दस्तावेजी रूप प्रस्तुत करता है । इस लघु उपन्यास में लेखक ने जिस संक्षिप्तता और कुशलता से राजनीतिक घटनाओं, परिस्थितियों और इतिहास को कथा के कलेवर में संगुणित किया है वह दर्शनीय है । एक अत्यन्त पेचीदा समस्या “कश्मीर समस्या” को उसके सभी पहलुओं में कथा रस की रोचकता से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया जा सका है । वर्तमान की सत्य और इतिहास – प्रसिद्ध घटनाओं को उपन्यास की कथा में बाँधना एक गम्भीर संकट का सामना है । अपने को पूर्ण तटस्थ रखते हुए समस्या को उसके सही परिप्रेक्ष्य में रखना एक गम्भीर रचना धर्मिताके लिए ही सम्भव हो पाता है । “कश्मीर की कसक” में जम्मू-कश्मीर का जन-जीवन अपनी पूर्ण सच्चाईयों में चित्रित हो सका है । विवेच्य उपन्यास सितम्बर, १९६५ ई. में हुए भारत पाक युद्ध की प्रष्टभमि से प्रारम्भ होता है किन्तु उपन्यास की विशेषता यह है कि अपने लघुकलेवर में इसमें सन् १९४७ ई. से लेकर अपनी प्रकाशन अवधि तक के जम्मू-कश्मीर के जन-जीवन की सही तस्वीर है । न केवल स्वातंत्र्योत्तर युग के जन-जीवन का लेखा-जोखा यहाँ प्रस्तुत हुआ है, अपितु सन् १९३१ तक की अवधि का साँगोपाँग विवरण प्राप्त हो जाता है । यह उपन्यासकार का कौशल है कि उसने उपन्यास के इतने संक्षिप्त कलेवर में सन् १९३१ से १९७० ई. तक के जम्मू-कश्मीर के जीवन को प्रस्तुत किया है । प्रस्तुत उपन्यास में चार अध्याय हैं—“आक्रमण”, “जम्मू”, “श्रीनगर”, एवं “पुनर्वास” । “आक्रमण” नामक प्रथम शीर्षक में सितम्बर”, सन् १९६५ ई. के पाक-आक्रमण का वर्णन है । लेखक ने बड़ी बारीकी से यह बताने का प्रयत्न किया है कि पाकिस्तान ने छम्मजौरियाँ तथा राजौरी नामक स्थानोंसे ही भारत पर

आक्रमण करने का निश्चय क्यों किया, पाकिस्तानी अफसर जानते थे कि यहाँ मुस्लिम बहु संख्या होने से घुस पैठियों को न केवल छिपने को सुरक्षित स्थान मिल सकेगा बल्कि वहाँ की दुर्बल स्थिति से लाभ उठाकर राजौरी से प्रविष्ट होने वाली पाकिस्तानी सेनाएँ आसानी से पुंछ को घेरती हुई छम्बजौरियों, अखनूर से बढ़नेवाली सेना को चेनाँव के पुलपर मिल सकती है । और वे ही फौजें दोगुनी शक्तियों से बढ़ती हुई बाद में पठानकोट जम्मू – कश्मीर की सड़क पर कब्जा भी कर सकती हैं । इस प्रकार यदि आक्रमण योजना पूर्णतः सफल हो जाय तो भारतीय सेनाओं को कुमुद पहुँचने से पूर्व ही जम्मू-कश्मीर उपत्याका को पाकिस्तानी पंजे में लिया जा सकता है ।<sup>१६</sup>

सामाजिक महत्त्व के इस मुद्दे को कथा के माध्यम से लेखक अपने पाठक तक पहुँचाकर उसकी राजनीतिक समझ कोभी समृद्ध करता है । युद्ध की मुख्य कथा के बीच एक अन्य कोमल तन्तु भी है, राजौरीवासी चरणदास की पुत्री प्रेमो की कथा जिसके यौवन-धन पर उस क्षेत्र के गुण्डे और घुसपैठियों की सहायता से आतंक फैलाने वाले महमूद की कुदृष्टि है । यह कथा युद्ध की विभीषिका के एक और पक्ष को उद्घाटित करती है । भारतीय सेना का डॉ. कैप्टिन रजनीश उसका उद्धार करता है ।

“जम्मू” नामक द्वितीय अध्याय में उपन्यासकार अपने कथा नायक चरणदास के साथ हमें जम्मू के युद्ध कालीन जीवन का साक्षात् दृष्टा बनाता है । अस्पताल से छिपकर भागा घायल चरणदास जम्मू पहुँचता है । यह चरणदास के भाग्य की विडम्बना है कि जम्मू की जिस घरती पर वह अपने अच्छे समय में पैर नहीं रखना चाहता था, आज दुर्दिन में वहीं के एक शरणार्थी शिविर में खड़ा है । जम्मू चरणदास की ससुराल थी किन्तु पाकिस्तानी भेड़ियों द्वारा जब उसकी पत्नी का शील-भंग हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप उसने आत्महत्या कर ली थी, तो इस घटना के पश्चात्



चरणदास की अपनी ससुराल वालों को मुँह दिखाने की हिम्मत नहीं रही थी, किन्तु अब नियति ने जब उसे वहाँ जाने के लिए विवश किया तो उसने अपनी ससुराल के न जाने का निश्चय किया क्यों कि वह यह नहीं बताना चाहता था कि उसकी पत्नीके साथ घटने वाली घटना अब उसकी पुत्री के साथ दुहरा दी गई । उसके ससुर ने उसे राजौरी जाने से रोका था कि वहाँ मुस्लिम-बहुल प्रदेश और वातावरण में ज्यादादिन रहना सम्भव न हो सकेगा किन्तु उस समय तक चरणदास को हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य क्या होता है इसका भान तक नहीं था । इसलिए वह अपने पुस्तैनी घर-बार को छोड़ने को तैयार नहीं हुआ था । इन्हीं सब कारणों से वह अपनी ससुराल जाने के बजाय शरणार्थी शिविर में चला गया था किन्तु यहाँ भी उसके भाग्य की विडम्बना कि उस पर उसके साले चन्द्रशेखर की दृष्टि पड़ती है जो जम्मू के राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ का प्रमुख कार्यकर्ता था और उस कैम्प में सेवाकार्य का प्रमुखव्यवस्थापक था फिर शरणार्थी शिविर में ही चरणदास को अपनी बाल-प्रेयसी रचनी मिलती है और उसके माध्यम से एक और प्रेम कथा पल्लवित होने लगती है । यहीं लेखक ने ऐसे अवसर निकाल लिए हैं कि सरकारी तंत्र की बखिया उथेड़ी है कि उसने किसप्रकार शरणार्थी -समस्या को साम्प्रदायिक रंग देकर उपेक्षापूर्ण ढंग से हल करना चाहा है ।

श्रीनगर” नामक अध्याय में आकर कथानक में कुछ विचित्र संयोगात्मक स्थितियाँ हैं किन्तु फिर भी कथारस क्षत नहीं होता है । चरणदास का घायल अवस्था में अपनी पुत्री प्रेमोंसे मिलना, कैप्टिनरजनीश और प्रेमो का विवाह-सूत्र में बँधना, आदि ऐसी ही कल्पित संयोगात्मक स्थितियाँ हैं किन्तुइन घटनाओं के मध्य हिन्दु-मुस्लिम दंगों का स्वरूप विश्लेषित करना और श्रीनगर के राजनीतिक जीवन का अन्तरंग चित्रण इस कथा खण्ड की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं । “पुनर्वास” नामक चतुर्थ शीर्षक में

यह वर्णित किया गया है कियुद्धोपरान्त जब जीवन सामान्य हो आया तो राजौरी के मूल निवासी पुनः इधर-उधर से आकर अपने घर-वार बसाने लगे । चरणदास भी जब राजौरी इसी उद्देश्य से पहुँचता है तो वह फिर अपने को महमूद और उसके साथियों के सम्मुख खड़ा पाता है । अबकी बार उन्होंने उसके घर दुकान पर भी कब्जा कर रखा है वे जब चरणदास को रचनी के साथ देखते हैं तो चालीस को छूती रचनी का ढलता सौन्दर्य उन्हें ऐसा ही पिपासु बनाता है जैसा प्रेमो के सौन्दर्य ने उन्हें बहशी बना दिया था किन्तु इस बार चरणदास उनके चक्कर में नहीं आया । वह रचनी के साथ महमूद के भाई के यहाँ चला गया जो महमूद से विपरीत स्वभाव का था । यहाँ लेखक यह भी प्रस्थापित करना चाहता है कि सभी मुसलमान बुरे नहीं होते, व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर होता है, मानवीयता साम्प्रदायिकता से कहीं ऊपर है । यहाँ उपन्यासकार अपने उपन्यास को फिर एक सशक्त पक्ष व्यवस्था और तन्त्र के धिनौने रूप को उद्घाटित कर प्रदान करता है । चरणदास ने अनेक प्रयत्न किये किन्तु उसके – जो घर दुकान महमूद को एलाट किए जा चुके थे ।” वह उन्हें प्राप्त न कर सका ।

सारे शासन तन्त्र पर महमूद और उसके गुन्डे साथियों का आतंक छाया हुआ था । इसलिए प्रशासन ने यह बहाना बताया कि जब पिछले अक्टूबर मास में अलाटमेंट हुई थी तो “चरणदास जीवित था ।” यह प्रमाणित होना चाहिए, किन्तु जीवित, साबुत, चरणदास सरकारी कागजों में यह सिद्ध नहीं कर पाया कि पिछले अक्टूबरमास में वह जिन्दाथा बेघर बार होते हुए भी उसका जीवन और रचनी का रूप कुछ भी तो राजौरी में सुरक्षित नहीं था । इस प्रकार चरणदास के माध्यम से उपन्यासकार ने कश्मीर में “चोटखाते” चरणदास और “पनपते” महमूद का अत्यन्त सशक्त

चित्रण प्रस्तुत किया है । क्या आज भी पूरे देश की यही अवस्था नहीं है ।

“कश्मीर की कसक” उपन्यास की उपलब्धि यह है कि यह उपन्यास जम्मू-कश्मीर के जन-जीवन का अन्त-रंग और प्रामाणिक दस्तावेज है । पढ़ा-लिखा भारतीय इस प्रदेश के विषय में समाचार पत्रों “सरकारी प्रकाशनों आदि के द्वारा जो जानकारी प्राप्त करता है ।” वह कितनी अपूर्ण और अधकचरी है ।” इसका सही अहसास “कश्मीर की कसक” को पढ़कर सहज ही हो जाता है । “आक्रमण” नामक प्रथम अध्याय में मुख्य कथानक के साथ ही लेखक ने यह भी चित्रित किया है कि कश्मीर के सामान्य भारतीय मुसलमान की भावना का देश भारत नहीं पाकिस्तान है । जब युद्ध के कारण वहाँ भगदड़ मची तो “हिन्दु लोग, जो संख्या में आटे में नमक के समान थे । पुन्छ की ओर भाग रहे थे, जब कि मुसलमानों का रुख पाकिस्तानी अधिकृत प्रदेश था । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भारतीय मुस्लिमजो आज तक अपने को भारतीय होने का दावा करते थे, अकस्मात घुसपैठियों के आतंक से घबराकर तथा अपने संरक्षकों को असमर्थ पाकर पाकिस्तानी संरक्षण ओढ़ लेना चाहते थे ।”<sup>१७</sup>

डंके की चोट मुसलमानों के इस अभाव को उजागर करने में लेखकने अत्यन्त साहस का परिचय दिया है, अन्यथा तो साहित्य में तो मुसलमान भी आर्दश रूप में ही चित्रित हुए हैं । उपन्यासकार केवल वस्तु-स्थिति को बताकर नहीं रह गया है, अपितु उन कारणों के मूल में गया है जिन्होंने दोनों जातियों को सिर्फ “हिन्दु” या “मुस्लिम” होने का अहसास करा दिया है । उसका मत है कि हिन्दु-मुस्लिम के बीच यह विष- वमन डोंगरों “ प्रजा परिषद” तथा मुसलमानों की “मुस्लिम कान्फेस” द्वारा किया गया है । इस समस्या का एक और अन्जाना पक्ष हमारे सामने उद्घाटित होता है । पाकिस्तानी सेना ने भारतीयों को बुरी तरह रौन्दा लेकिन मुख्यतः सम्पत्ति

एक विशेष सम्प्रदाय की नष्ट की गई, मुसलमानों के घर-वार सुरक्षित रह गए। “जम्मू” शीर्षक में लेखक ने जो घटना-क्रम चित्रित किया है, उससे यह तथ्य सामने आता है कि “धर्मनिरपेक्ष राज्य” का झण्डा उठानेवाली कश्मीर सरकार किस प्रकार जम्मू और कश्मीर को देखने के लिए जुदा-जुदा आँख और दृष्टि रखती है। सरकार एक ओर तो जम्मू में आने वाले शरणाथियों से ऐसा व्यवहार करती है कि “सीमा प्रदेश से भागकर आनेवाली शरणार्थी यहाँ की ही न हो, तो दूसरी ओर हाजी-पीर के विजित इलाके में यही सरकार मुफ्त राशन, आदि बँटवाती है।”

डॉ. गुलाम हैदर जैसे सच्चे भारतीय मुसलमान भी जब सरकार के इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानेवाले प्रतिनिधि-मण्डल में जाते हैं तो लौटने पर उन पर जो हमला किया जाता है, तो सरकार का एक और ही रूप प्रकट होता है। उपन्यासकार ने यहाँ बड़े विशाल परिप्रेक्ष्य में शरणार्थी समस्या को देखा-परखा है। यह उपन्यास की कथा-योजना का कौशल है कि अपने अत्यन्त संक्षिप्त कलेवर में उसने जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक, सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं को बड़ी बारीकी से आँका है। उपन्यास को पढ़कर हमें लेखक के इस कथन से सहमत होना पड़ता है कि जम्मू कश्मीर क्षेत्र में घटित राजनीतिक घटनाओं को उसने साहित्यिक न्याय देने का प्रयास किया है। हिन्दु-मुस्लिम सौहार्द के नाम पर साहित्य में अनेक कथा-रचनाएँ प्रकाश में आयीं जिनमें मानवता का सही रूप चित्रित किया गया किन्तु क्या साहित्यकार का यह दायित्व नहीं की जो कुछ देखे उसे ईमानदार होकर साहित्य में चित्रित करे। क्या हिन्दुओं की कश्मीर सरकार द्वारा उपेक्षा को अभी तक इसलिए हिन्दी कथासाहित्य नहीं अपना पाया कि ऐसा कहने से “साम्प्रदायिक” विशेषण मिलने की जोखिम है। किन्तु साहित्यकार को यह खतरा भी उठाना ही पड़ेगा। पीढ़ियों तक जम्मू-कश्मीर की अन्यायसे पिसती चली आ रही जनता के दुःख दर्द को

इसी लिए वाणी न देना कि ऐसा करना मुसलमानों की भावना को ठेस पहुँचाना होगा, कुछ न्याय-संगत नहीं लगता । जम्मू-कश्मीर में बसे हिन्दुओं का अपराध इतना था कि वे “हिन्दु” हैं और भारत में बहुसंख्यक हिन्दु हैं, किन्तु क्या हिन्दु इस उत्तरी सीमान्त पर लड़े जाने वाले युद्ध में हरबार उजड़ने के लिए ही अभिशप्त है ।

विवेच्य उपन्यास में हिन्दुओं के इस दर्द को प्रथमवार पूर्ण साहसिकता से वाणी ही नहीं दी गई है अपितु इस क्षेत्र में फैली साम्प्रदायिकता की समस्या को भी सही परिप्रेक्ष्य में रख कर देखा गया है । इस समस्या को चित्रित करने में लेखकीय दृष्टि पूर्णतः पूर्वाग्रह विमुक्त है । न उसने किसी हिन्दु की ढाल बनने का काम किया है और न किसी मुसलमान को अनावश्यक रूप से किसी घटना के लिए जिम्मेदार ठहराया है । मुख्यरूप से तो उसने सरकारी मशीनरी को ही हिन्दु-मुस्लिम के बीच विष वमन करने का दोषी ठहराया है । डॉ. गुलाम हैदर का यह कथन लेखक के “हिन्दु, मुस्लिम, और भारतीय” के प्रति दृष्टिकोण को समझने में बड़ा सहायक सिद्ध होता है, “सीमाओं से भाग कर आनेवाले पहले इन्सान है फिर वे मेरे देश के अंग हैं । इसलिए मेरे भाई हैं । अगर मुसलमान या हिन्दु होने से इन्सानियत का नाता टूट जाता है तो मैं मुसलमान या हिन्दु होने से मुनकिर हूँ ।”<sup>१८</sup>

उपन्यासकार इस खोयी इन्सानियत की तलाश में हिन्दु-मुस्लिम समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में देखता है । परमेश्वरी जिस मानवता को स्वीकार कर इस हाक से प्रेम करती है, उसमें – हिन्दु या मुसलमान की संज्ञाएँ बेमानी हैं । इस प्रेम प्रसंग में लेखकने बड़े बेबाक तरीके से साम्प्रदायिक दंगे फैलाने का दायित्व मुख्यतः हिन्दु कैम्प पर डाला है, यह भी उसके उदार और निष्पक्ष दृष्टिकोण का परिचायक है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लेखक ने मन-मस्तिष्क में हिन्दु-मुसलमान के चरित्र का कोई खास बना

बनाया खाका नहीं हैं, उसके लेखे मानवता का अनुकरणीय रूप हिन्दु-मुसलमान दोनों में हो सकता है। इस प्रकार डॉ. सहगल का यह सशक्त उपन्यास अत्यन्त कौशल से एक बहुत नाजुक समस्या का चित्रण करता है। इस कथ्य पर आधारित वह हिन्दी के गिने-चुने उपन्यासों में से एक है। डॉ. सहगल ने पंजाब के मध्यकालीन साहित्य का तो विशेष किया ही है, सिक्ख-गुरुओं की वाणी का अध्ययन, इस सांस्कृतिक थाती को हिन्दी जगत के सम्मुख प्रस्तुत करने का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य भी किया है। जब गुरु तेगबहादुर की पाँचसौवीं जन्म-जयन्ती पर विभिन्न साहित्यिक समारोह उनके महान कार्यों को प्रकाश में लाने के लिए किये जा रहे थे तो उनकी औपन्यासिक प्रतिभा ने स्वतः ही गुरु तेगबहादुर के जीवन और कार्यों से प्रेरित हो, “गुरु लाधा रे” उपन्यास की रचना की इस कृति में उन्होंने अत्यन्त कुशलता से उनके जीवन की विविध घटनाओं, कार्य-कलापों और सिद्धान्तों का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। उनका यह उपन्यास इस रूप में ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में है। जिसमें कल्पना का अत्यन्त न्यून प्रयोग कर उसे इस रूप में नियोजित किया गया है कि वह कहीं भी ऐतिहासिकता को क्षति न करती हुई, इस महान गुरु का चरित्र जीवन्त रूप में प्रस्तुत करती है। यह उपन्यास अपने ऐतिहासिक कलेवर में भी इंगित रूप में वर्तमान को प्रश्न उठाता है और गुरु तेगबहादुर की शिक्षाओं के प्रकाश में उनका समाधान संकेतित करता है।

“मानव छला गया” में डॉ. सहगल की औपन्यासिक प्रतिभा गम्भीर औपन्यासिक शिल्प की चुनौती को स्वीकार करती है। काव्य, नाटक, और गीति नाट्य के क्षेत्र में तो मिथक का प्रयोग अत्यन्त सशक्त रूप में प्राप्त होता है किन्तु उपन्यास के क्षेत्र में ऐसे प्रयोग बिरले ही हैं।

मिथक कला की शक्ति इसी बात में है कि वह अतीत की कथा मात्र न रहकर वर्तमान युग-जीवन और युग-सत्यों की संवाहिका बन सके,

यदि ऐसा नहीं होता है तो मिथक एक पौराणिक कथा निभर रहे जाता है । यह प्रयोग कर्ता की कल्पना और क्षमता पर निर्भर करता है कि वह कितनी सफलता पूर्वक पुरातन कथा को वर्तमान में प्रक्षेपित कर पाता है । “मानव छला गया” में उपन्यासकार अपने इस प्रयोग में पूर्ण सफल रहा है । “स्कंदपुराण” का पौराणिक आख्यान को वर्तमान युगीन संदर्भों में विश्लेषित करने का स्तुत्य प्रयत्न विवेच्य उपन्यास में किया गया है । ऋषिमार्कण्डेय की तपस्या पृथ्वी के मनुष्य की तपःपूत साधना है जिसकी उपलब्धियों से देवलोक को भी ईर्ष्या होती है और इस ईर्ष्या के वशीभूत देवलोक वासी सरस्वती को पृथ्वी पर मार्कण्डेय की साधना भ्रष्ट करने के लिए भेजते हैं । देवलोक को सुख समृद्धि का, पूँजीपतियों की उपलब्धियों का प्रतीक है । पूँजीपति मनुष्य सामान्य मनुष्य को, नारी और रोटी-सुख-भोग के साधना से ही भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं । इस प्रकार अतीतकालीन देव, मनुज, संघर्ष वर्तमान में साधना सम्पन्न पूँजीपति और सर्वहारा मनुष्य का संघर्ष बन जाता है जिसकी ध्वनि और्व के इस कथन में देखी जा सकती है, “सभा में चुपचाप बैठे हुए और्व को ऐसा अनुभव हुआ, कि उसके द्वारा प्रसारित घृणा, ईर्ष्या, अव्यवस्था तथा तनाव को भी मानवलोक चुनौती दे रहा है । उसे आश्चर्य हुआ कि मनुष्य की अन्तात्मा जाने किस पदार्थ से बनी है निरन्तर भ्रष्ट किए जाने पर भी उसकी सहज ही सद्भावना की हत्या नहीं हो पाती ।” वस्तुतः यही इस उपन्यास की मूल विचारधारा है कि मनुष्य अविजेय है । सरस्वती मनुष्य के विवेक का प्रतीक है, उसकी दिशा बोधक है । सम्पूर्ण उपन्यास देवलोक की लक्ष्मी-आश्रित व्यवस्था आज की भ्रष्ट-व्यवस्था का तीव्र स्वर से विरोध करता है । यह लक्ष्मी-आश्रित व्यवस्था आज की भ्रष्ट व्यवस्था से कुछ अलग तो नहीं है । “इन्हीं विलाश सभाओं में देवों के काले धन्धे तय होते हैं - संकेतों की भाषा बोली जाती है एवं सहज प्रहरियों के सरक्षण में

देवराज के नेत्रों में धूल झोंककर, तस्करी की नित्य नवीन योजनाएँ बनती हैं । लक्ष्मीपति देवादिदेव, कुबेर, अर्थलक्ष्मी, पार्वतीनन्दन आदि देवता इन योजनाओंमें गोपनीय सहयोग देते एवं अन्ततः धनराशि का लाभ उठाते हैं ।

इस प्रकार उपन्यास अपने वर्तमान संदर्भ में अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है । सरस्वती की धारा के विलुप्त होने को भी बौद्धिक चिन्तन प्रदानकर कथा को नवीनरूप में मोड़ दिया गया है, इससे उपन्यास अपनी मिथकीय क्षमता को द्विगुणित रूप में उजागर कर सका है । मानव सदैव देवलोक जैसी व्यवस्था, भ्रष्ट व्यवस्था के द्वारा छला जाता रहा है । उपन्यासकार का सही निष्कर्ष है यह !

“एक और रक्तबीज” (१९८४) डॉ. सहगल का देश के शिक्षा संस्थानों के यथार्थ के एक विशेष पहलू को उजागर करता उपन्यास है । रचनाकार को नयी कृतियाँ तभी सार्थक होती हैं जब वह हर रचना के साथ अपने साहित्यिक कथ्य को आगे जाये ।

डॉ. सहगल का यह उपन्यास इस कसौटी पर पूरी तरह खरा उतरता है । यह उनका अब तक प्रकाशित सर्वाधिक सशक्त उपन्यास कहा जा सकता है जहाँ उनकी उपन्यासकला अत्यन्त प्रौढ़ और परिष्कृत है । अपने समय के सर्वाधिक ज्वलन्त प्रश्नों में से एक आरक्षण की समस्या को लेखक ने इसमें अपना विवेच्य बनाया है । लेखक इस समस्या के बहुआयामी रूप को अत्यन्त सुचिन्तित ढंग से उपन्यास के कलेवर में प्रस्तुत करता है ।

उपन्यासकार की मूल प्रस्थापना है कि आरक्षण न केवल सवर्णों के लिए अपितु जिनके लिए हैं उन पछात जातियों के लिए भी श्रेष्ठ नहीं है । आरक्षण को बनाये रखकर वास्तव में उत्कृष्ट योग्यता तथा प्रतिभा की मूल संवेदना पर ही कुठार चला रही है – “एक भी प्रतिभा का सही मूल्यांकन नहीं, दूसरे की प्रतिभा संजोने की अपेक्षा नहीं ! भला यह भी कोई दूरदर्शिता है ? देश की प्रतिभा को ही कुण्ठित किया जा रहा है ।”<sup>१९</sup>



आरक्षण से शेड्यूल्ड कास्ट पिछड़ी जातियाँ भी मानसिक स्तर पर पीड़ित हैं । नवयुवक किरण को हर कार्य में पिछड़ी जाति होने का प्रमाण-पत्र दिखाने में कोफ्त होती थी । बी.ए. में प्रथम स्थान प्राप्त कर वह आरक्षण की भिक्षा स्वीकार नहीं करना चाहता अपितु अपनी प्रतिभा का लोहा दिखाना चाहता है । उपन्यासकार के अध्यापक ने यहाँ यह आस्था प्रकट की है कि युवाशक्ति कभी गलत नहीं होती अपितु उसे व्यवस्था की भ्रष्टता गलत दिशा देती है । राजनीतिक लोग न्यस्त स्वार्थों के लिए उसका दुरुपयोग करते हैं । युवा शक्ति के स्खलन का जो जुगुप्ति-षड्यन्त्र व्यवस्था कराती है उसे लेखक ने बड़े ही अच्छे ढंग से उपन्यास में बेनकाब किया है ।”<sup>२०</sup>

भ्रष्ट युवती माला को भी लेखक सद्कोटि में परिणत कर यही सिद्ध करना चाहते हैं कि युवा शक्ति की भटकन को चाहे वह किसी भी स्तर तक क्यों न पहुँच गई हो उचित दिशा से जा सकती है । माला बाद में एक स्कूल चला कर एक भद्र युवती के रूप में जीवन जीती है । लेखक का यह औपन्यासिक कौशल ही कहा जायेगा कि उसने राजनीतिक कथा में प्रेम-कथा के अवसर खोजकर कथा-प्रसंग की रोचकता में अभिवृद्धि की है । इसके साथ ही मानव-स्वभाव की विवृत्ति के अनेक अवसर लेखकने उपन्यास में निकाल लिए हैं । जहाँ वह अपने चरित्रों के माध्यम से सामान्य मानव स्वभाव के विषय में बड़ी अनुभव-सिद्ध बातें कहता है । इस अनुभव-सिद्ध का चरमरूप उपन्यासकार की सूक्तियों में देखा जा सकता है । “राजनीति किसी की सगी नहीं होती कूटनीति इसका अभीष्ट अस्त्र है ।”

“नीति का मूल्यांकन, पुनरावलोकन होता है किन्तु राजनीति तो केवल वोट- छीनना और अधिकार बनाना होता है ।” चर्तुभुज के लिए एक

स्थान पर कहा गया है, “उसने संस्कार तो देखे थे, सत्कार नहीं देखा था ।”

इस प्रकार उपन्यास के क्षेत्र में सर्वथा अछूती समस्या को “एक और रक्तबीज” में कथा-आधार बनाकर लेखक जिन्दगी को उसके विविध वर्णों संदर्भों में देख सका है । राजनीतिक समस्या का गहरे जाकर विश्लेषण करनेवाला इस दशम् का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपन्यास सिद्ध होगा – “एक और रक्तबीज ।”

“अन्ना पासवान” सन् १९८६ में प्रकाशित हुआ । डॉ. सहगल अपने इस उपन्यास में एक नया प्रयोग करते हैं । जिसे वे स्वयं “ऐतिहासिक रोमांस” (जो उपन्यास में रोचक, रोमांचक और रोमानी होती है) कहते हैं उनके इस विधागत नये नाम के झण्डे तले इस कृति को न परखते हुए मैं इसे एक “ऐतिहासिक उपन्यास” के रूप में देखना चाहूँगा । “ऐतिहासिक उपन्यास” के रूप में यह कृति ज्यादा सार्थक और चुनौतीपूर्ण लगती है । सामान्य पाठक के लिए आज ऐतिहासिक उपन्यास में विशेष रस नहीं है, इसीलिए आज ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखे जा रहे हैं । “अन्ना पासवान” उपन्यास मुझे इसी लिए विशिष्ट लगता है कि उसमें ऐतिहासिक कथा की इतनी मनोरम प्रस्तुती है कि वह अन्त तक अपने पाठक को बाँधे रखता है । उसमें गजब की पठनीयता और रम्यता है । ऐतिहासिक उपन्यासों में प्राप्त घटना बोझिलता से “अन्ना पासवान” अपने को पूरी तरह मुक्त रखता हुआ तत्कालीन जीवन परिवेश को अत्यन्त जीवन्त रूप में प्रस्तुत करता है । ऐतिहासिकता के बीच कथा-रस को कहीं भी उपन्यासकार क्षत नहीं होने देता । उनकी दृश्य-नियोजन क्षमता अद्भुत है, चाहे वह दीवान खाने में चिलमन को मरमरो हाथों में उठाता एक गोरा स्वस्थ पाँव है । चाहे शहजादा परवेज के नेतृत्व में बढ़ती फौज है, चाहे खानाबदोश राजपूतों के पड़ाव है, चाहे बिजखाँ का हरम है, चाहे जोधपुर

का अन्तःपुर, बिजखाँ द्वारा राजपूत लड़कियों का सामूहिक हरण – कोई भी दृश्य क्यों न हो उपन्यासकार उस स्थिति का ऐसा चित्रात्मक और विम्वग्राही वर्णन प्रस्तुत किया है कि पाठक सहज ही उपन्यास के पृष्ठ पर पृष्ठ पलटता चला जाता है। हिन्दी के बहुत कम ऐतिहासिक उपन्यासों में यह गुण इतनी प्रचुर मात्र में प्राप्त होता है।

उपन्यास की कथा – भूमि लेखक के लिए “दूसरी जमीन” है किन्तु आश्चर्य होता है कि किस प्रकार उसने राजस्थानी नव-जीवन का इतना सूक्ष्म अंकनकर उसमें नृत्य, लोकगीत, लोकाचारों आदि का जीवन्त वर्णन किया है। लीला कुँवरि और सखियों का नृत्य तथा गानका चित्रण उस दृष्टि से विशेष सुन्दर बन पड़ा है।

जोधपुर के साहित्य- कला प्रेमी महाराज जसवंतसिंह के काव्यात्मक दाद को उपन्यास के विभिन्न घटना-प्रसंगों में अनुस्यूत करना, वह भी इस रूप में कि कहीं भी यह आभासित न पाये कि ऐसा गहन उपन्यासकार अपने कथा-नायक के काव्य-कौशल को प्रकट भर करने के लिए कर रहा है, उनकी कथात्मक चेतना के कुशल निर्वाह का ही पुष्ट प्रमाण है।

### ❖ “बदलती करवटें” (१९६७) :

मनमोहन सहगल कृत उपन्यास ‘बदलती करवटें’ एक सामाजिक-राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें इतिहास के उस काल का बोध है जिसे पाकिस्तान कहा जाता है। यह काल खण्ड परिस्थितियों के वशीभूत किस प्रकार उत्पीड़ित समूह की त्रासदी का कारण बना, किस प्रकार भाषा और धर्म का शिकार हुआ – उसकी ओर इंगित करना ही उपन्यासकार का मूल उद्देश्य रहा है। क्योंकि उपन्यासकार उस भूमि से जुड़ा हुआ है जहाँ विभाजन का नृशंस खेल खेला गया। उसने यह सब देखा और भोगा है। अतः जहाँ इसमें एक और आयातीत विचारों से हटकर अपने ही देश की

मिट्टी और अपने ही वतन के लोगों के सुख-दुःख को एक नयी अभिव्यक्ति, संवेदना एवं मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत देखने की कोशिश की गई है, वहाँ दूसरी ओर अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में वैश्विक जीवन पद्धतियों, इन्सानियत, इमानदारी, स्वार्थपन, जातपात, रंगभेद, साम्प्रदायिकता, धर्म और राजनीति के खोखले आदर्शों को भी नया आयाम देने की कोशिश की गई है ।

डॉ. सहगल के उपन्यास-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे कथा की संचरना दृष्टि-विशेष को आधार बनाकर करते हैं । यही कारण है कि उनके उपन्यास मन की गहराइयों से कथा की धारा को आगे बढ़ाकर जीवन-दर्शन के अच्च शिखरों पर आरोहण कराते हैं । यह आरोहण मानवात्मा की समग्रता, समता और एकता रहस्य दूर्गों में पाठक का प्रवेश करवाता है । फलतः डॉ. सहगल के उपन्यासों का मनोरंजन पक्ष उथले जीवन स्रोत तक सीमित नहीं रहता अपितु गहरे आत्मिक आन्नद में परिवर्तित हो जाता है । वे मानव विकास की निरन्तर प्रगतिशील सांस्कृतिक जीवन-धारा में अपने पाठक को अवगाहन कराते हैं । सामाजिक समस्याओं का सफल संयोजन करके वे इतिहास के दिशा-निर्देश में सहयोग देते हैं ।

यह उपन्यास राजनीति के जहाँ कच्चे चिटटे खोलता है वहीं धर्म, अर्थ और प्रेम को भी रेखांकित करता है । एक अर्से से राजनीति इस उप-महाद्वीप पर बड़ी सीमा तक सामाजिक आर्थिक स्थितियों पर हावी रही है । देश के आजाद होने के बाद प्रायः हर समस्या का राजनीतिकरण हुआ है या फिर समस्या ही राजनीतिक कारणों से पैदा हुई है । यह काल-खण्ड परिस्थितियों के वशीभूत जिस उत्पीड़ित समूह की त्रासदी का कारण बना, किस प्रकार भाषा और धर्म का शिकार हुआ उसकी ओर इंगित करना ही उपन्यासकार का मूल उद्देश्य कहा जा सकता है । इसमें उपन्यासकार ने समाज की व्यवस्था, उसके नियमों और रीति-रिवाजों से जुझते व्यक्ति की

समस्याओं को दर्शाया है कि किस प्रकार व्यक्ति को समाज में रहकर उसकी व्यवस्था और उसके नियमों का पालन करना होता है ।

कर्मचन्द इस उपन्यास का नायक है । कर्मचन्द के अतिरिक्त महिन्द्र, रानी, इन्दरसिंह, अर्जुन सिंह, महीप सिंह, भूपेन्द्र सिंह, सुरिन्दर, प्रभा देवी, ब्रह्म स्वरूप, हरी सिंह, सम्पूर्णा सिंह आदि पात्र इस कथा की वृत्ति के दूसरे ऐसे जीवंत चरित्र हैं जो कर्मचन्द के संघर्ष में प्रेरक और सहायक की भूमिका निभाते हैं ।

कर्मचन्द को माध्यम बनाकर उपन्यासकार ने पाकिस्तान विभाजन के समय की सारी स्थितियों-परिस्थितियों और घटनाओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है । धर्म और भाषा के आधार पर अंग्रेजों द्वारा बोये गए बीजों के परिणाम स्वरूप भारत-पाक विभाजन होता है । कर्मचन्द पर्दे के पीछे से अपनी आँखों से अपने पिता, छोटे भाई, बहन का कत्ल और गर्भवती माँ के पेट पर मुसलमानों द्वारा चोट करते हुए देखता है । बाद में माँ और बेटा रात के अन्धेरे में बचकर निकल भागने में सफल हो जाते हैं । अमृतसर होता हुआ कर्मचन्द माँ तथा रानी बहन के साथ हिसार में बस जाता है । माँ की नाक में बची रह गई हीरे की तीली बेचकर कर्मचन्द “रानी जनरल स्टोर” नाम से एक छोटी सी दुकान खोल लेता है । दुकान खोलने की रस्म और दूसरे सभी कार्य गुरु ग्रन्थ साहिब के अनुसार सम्पन्न होते हैं । महिन्द्र की माँ सिख धर्म से होते हुए भी हनुमान को मानती है और मंगलवार को प्रसाद चढ़ाती है । फिर भी दोनों के प्रेम के रास्ते में कर्मचन्द का पंजाबी खत्रीपन और महिन्द्र का सिख धर्म आड़े आता है । साईकिल दुर्घटना में जहाँ कर्मचन्द और महिन्द्र नजदीक आते हैं वही महिन्द्र के घरवालों की आँख में कर्मचन्द की इज्जत भी बढ़ जाती है । उधर कर्मचन्द का मित्र इन्दरसिंह ऊपर डीवीजन क्लर्क की नोकरी पा लेता है । इन्दरसिंह और रानी आपस में प्रेम करने लगते

हैं । इन्दरसिंह हरियाणवी है और रानी पंजाबी खत्री, एक बार फिर धर्म और जात-पात प्रेम के रास्ते में खड़े होते हैं । यही स्थिति महिन्दर की बहन सुरिन्दर तथा इन्दरसिंह के भाई भूपेन्द्र के प्रेम में भी देखी जा सकती है । यहाँ भी सिख और हरियाणवी परिवार बिरादरी में नाक कट जाने से डरते हैं । उनका विचार है कि यदि शिक्षा प्राप्त करके खेत और खलिहान से हट जाते हैं ।

देश का वातावरण यों भी भाषा और धर्म के आधार पर तनावपूर्ण है । मास्टर तारा सिंह पंजाबी सूबे के लिए अनशन करते हैं तो हिमाचली और हरियाणवी अपने अपने सूबों की माँग करने लगते हैं । हिन्दु सिख की भावना जोर पकड़ने लगती है । यह तनाव धीरे धीरे लोगो के मनो के ऊपर भी छाता जाता है । पंजाबी सूबा प्रदेश के लोग सम्पत्ति लूटने, स्त्रियों से बलात्कार करने और मार-काट करने की कल्पनाएँ करने लगते हैं । कर्मचन्द और महिन्दर, भूपेन्द्र और सुरिन्दर व इन्दरसिंह तथा रानी की शादियों में जात-पात के अतिरिक्त राजनीति भी प्रवेश करने लगती है । महिन्दर की माँ पंजाबी सुबे के हक में बात करती है तो इन्दर सिंह रानी से उपेक्षा इसलिए करने लगता है चूँकि उनका हरियाणा बनने वाला है । वह चाहता है कि वह पंजाबी रानी की जगह किसी अमीर हरियाणी लड़की से शादी कर अपना भविष्य अधिक सफल बना सकता है । उधर कामरेड ब्रह्मस्वरूप जहाँ सम्पूर्णसिंह मिस्त्री को रानी के बलात्कार के लिए भेजता है वहीं कर्मचन्द की दुकान में आग भी लगवा देता है । कर्मचन्द की दुकान तो जल जाती है पर रानी की इज्जत इन्दरसिंह द्वारा बचा ली जाती है । सम्पूर्णसिंह तथा ब्रह्मस्वरूप पकड़े जाते हैं । तारासिंह का अनशन एक तनावपूर्ण स्थिति को जन्म देकर बिना पंजाबी सूबा लिये समाप्त हो जाता है । प्रतिक्रिया स्वरूप अमृतसर में हिन्दी विज्ञापितियों पर कोलतार लगा दिया जाता है । पुलिस को अधिक अधिकार मिलने पर हिन्दुओं पर ज्यादातियाँ

बढ़ जाती है। इसी प्रकार के जलूस में महिन्दर के भाई को गोली लगने पर कर्मचन्द बचा लेता है। उपन्यासकार इस तरह धर्म और जात-पात से ऊपर उठकर मनुष्यता के नाते का संदेश देता है। कर्मचन्द और महिन्दर की शादी के संयोग घने होने लगते हैं। कर्मचन्द को नई दुकान के लिए जगह मिल जाती है। उधर आन्दोलन अपना रुख तेजकर अमृतसर, लुधियाना, जालन्धर तथा अम्बाला आदि क्षेत्रों में अपना प्रभाव डालने लगते हैं। इस सारे राजनीतिक और साम्प्रदायिक परिवेश में हिन्दु पंजाबी दुःखी होते हैं। इसी बीच सुरिन्दर और भूपेन्द्र भागकर शादी कर लेते हैं। इधर इन्दरसिंह और रानी की शादी धूमधाम से होती है तो उधर सुरिन्दर और भूपेन्द्र भी उनके साथ बैठकर समाज के सामने शादी करते हैं। अन्त में कर्मचन्द और महिन्दर की शादी भी हो जाती है। चौधरी के घर से दो डोलियों को उठना देख लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में राजनीति, धर्म और जात-पात से ऊपर उठकर इन्सानी मूल्यों हृदय परिवर्तन को पैनी दृष्टि से देखा, आंका गया है। इस प्रकार उपन्यासकार ने जात-पात, धर्म और राजनीति, समाज और देश, पार्टी प्रतिबद्धता की विस्तृत व्याख्या की है। उपन्यासकार ने समाज और उसमें रहने वाले व्यक्तियों के संघर्ष का बड़ी पैनी दृष्टि से मूल्यांकन किया है कि किस तरह समाज की इस व्यवस्था के अनुसार कई बार व्यक्ति को अपनी इच्छाओं का गला घोटना पड़ता है या फिर समाज से संघर्ष करना पड़ता है।

### ➤ **‘बदलती करवटें’ में समाज व्यवस्था :**

‘बदलती करवटें’ उपन्यास में डॉ. सहगल ने समाज-व्यवस्था के अन्तर्गत जिन सामाजिक समस्याओं का उल्लेख किया है वे निम्नलिखित हैं :

### ➤ **सामाजिक सम्बन्ध :**

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्यों से ही समाज का निर्माण होता है और समाज से मनुष्यों के विकास की दिशा तय होती है। समाज में रहते हुए मनुष्य अनेक लोगों से सम्बन्ध जोड़ता है। इसका कारण उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सकता है और पारस्परिक प्रेम, सोहार्द एवं भातृभाव सम्बन्ध भी। सारा समाज एक परिवार होता है और उसमें रहने वाले लोग भाईयों की तरह – फिर चाहे वे हिन्दु धर्म को मानने वाले हों, या सिक्ख धर्म को – इससे कोई सरोकार नहीं होता। विवेच्य उपन्यास में डॉ. सहगल ने कर्मचन्द और महिन्दर के साथ-साथ रानी एवं इन्दर की कथा के माध्यम से हिन्दु-सिक्ख एकता के इन्हीं सामाजिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। एक स्थान पर कर्मचन्द कहता है – “इन्दरसिंह तुम पंजाब के जाट हो, मैं पंजाबी हिन्दु और वह सिक्ख है। हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारे पूज्य महापुरुष हमारे आचरण सब एक से हैं। हम सबका मूल एक है। फिर पत्तों और शाखाओं से जुदा होने से हम एक-दूसरे के प्रति असहिष्णु क्यों होते जा रहे हैं।”<sup>२९</sup>

इस उपन्यास में हिन्दु सिक्ख एकता और भाईचारे को प्रमाणित करने के लिए अनेक उदाहरण हैं जैसे – जब महिन्द्र का भाई रणजीत सिंह घायल हो जाता है तब हिन्दु कर्मचन्द उसके लिए अपनी जान की बाजी लगा देता है। इसी कर्मचन्द की बहन रानी इन्दरसिंह के लिए महान त्याग का आदर्श प्रस्तुत करती है। कर्मचन्द, महिन्दर की उस समय भी सहायता करता है जबकि उसकी साड़ी साइकिल में फँस जाती है। आज की युवा पीढ़ी अत्यन्त जागरूक है। हर बात को तर्क और बौद्धिकता की कसौटी पर कसकर परखने के कारण उसमें कट्टरता एवं हठधर्मिता धीरे-धीरे कम होती जा रही है। यही कारण है कि अन्त में कर्मचन्द-महिन्दर का ही नहीं वरन् इन्दर-रानी का परस्पर वैवाहिक बन्धन में बंध जाना सामाजिक



सम्बन्धों की जड़े मजबूत करता है । उपन्यासकार ने बार-बार इस बात पर ही बल दिया है कि पंजाब के सभी हिन्दु और सिक्ख एक से ही हैं । उनमें पूजा-पाठ, रहन-सहन, खान-पान, वैवाहिक सम्बन्ध आदि में मूलभूत एकता और समता है । उन्हें अलग नहीं किया जा सकता । एक हाथ की पांच उंगलियों का एक ही शरीर से सम्बन्ध है, उसका एक ही कार्य व एक ही जीवन-दशा है । हमारे बुजुर्ग भी तो हिन्दु थे । अब भी मंगल के दिन हनुमान जी के मन्दिर में प्रसाद चढ़ाने की प्रथा हमारे घराने में चली आ रही हैं ।

सच्चाई तो यह है कि भारतीयों का रक्त कहीं न कहीं मूल रूप में एक ही उत्स फूट कर आया प्रतीत होता है । यही कारण है कि समस्त भेद-भाव केवल ऊपरी तथा बाहरी हैं क्योंकि हमारे आचारों-विचारों, रीतियों-रिवाजों, नीतियों, प्रथाओं-परम्पराओं में कहीं भी कोई तात्त्विक अन्तर न पहले कभी इतिहास के किसी काल में रहा है और न ही कहीं आज नज़र आता है । यह बात और है कि आज हमारे देश में एवं समाज में से यही मानवतावादी दृष्टि लुप्त होती चली जा रही है । डॉ. सहगल ने बार-बार स्पष्ट किया है कि पंजाब की एक पंजाबी संस्कृति है, उसे तोड़ना ठीक नहीं । वे कहते हैं - “हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारे पूज्य महापुरुष, हमारे आचरण सब एक से हैं । हम सबका मूल एक है, फिर पत्तों और शाखाओं से जुदा से हम एक दूसरे के प्रति असहिष्णु क्यों होते जा रहे हैं ।”<sup>२२</sup>

### ➤ साम्प्रदायिकता :

डॉ. सहगल के अनेक उपन्यासों में इस विचारधारा को अभिव्यक्ति मिली है कि समाज के स्वस्थ विकास के लिए जाति-पाति के बन्धनों को कम करना होगा, वर्ग-भेद को मिटाना होगा और विभिन्न सम्प्रदायों में सदभाव स्थापित करना होगा । इसके लिए व्यवहारिक रूप यह है कि

हमारा युवा वर्ग ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाकर अपनी पसन्द के जीवन-साथी का चयन कर लें और परिणय बन्धन में बंध जाएँ । “ निम्नजाति की रानी और गाँव के जमींदार के बेटे सुधेश का अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न करवाकर लेखक ने समाज को अप्रत्यक्ष रूप से दिशा-निर्देश देते हुए अपने साम्प्रदायिक सदभाव को प्रकट किया है । ”<sup>२३</sup>

मूल रूप से ‘सम्प्रदाय’ शब्द का अर्थ संकीर्णतासूचक नहीं है । प्रारम्भ में, गुरु द्वारा सम्यक् रीति से प्रदान किये गये उपदेश का पालन करने वाले व्यक्तियों के समूह को ‘सम्प्रदाय’ कहा जाता था, किन्तु कालान्तर में सम्प्रदायों के अनुयायियों में विकृतिवश संकीर्णता और कट्टरता आ जाने से ‘सम्प्रदाय’ शब्द का अर्थ भी संकुचित हो गया । परिणाम स्वरूप आचार्य कृपलानी के अनुसार – “जब एक ही विचारधारा किसी धार्मिक आग्रह या मत-विशेष पर आरूढ़ होकर अंध-आग्रह को अपना प्राण बना बैठी तो वह ‘साम्प्रदायिकता’ कहलाने लगी । ”<sup>२४</sup> आजकल तो साम्प्रदायिकता का स्थान आतंकवाद ने ले लिया है । आजकल साम्प्रदायिकता से अभिप्राय है – किसी सम्प्रदाय, धार्मिक मतवाद के प्रति इतना अविचल आग्रह, जो असहिष्णुता को जन्म देता है, अन्य धार्मिक मतों को सहन नहीं कर सकता । यहाँ तक कि उनका मूलोच्छेद तक कर देना चाहता है । डॉ. बचनदेव कुमार ने ठीक ही लिखा है – “साम्प्रदायिकता वह विष-विल्ली है, जो हमारे सामूहिक जीवन पर छा कर सर्वनाश का समार्वतन करने वाली है । साम्प्रदायिकता हमारे राष्ट्रीय विकास के रथ को रोकने वाली राक्षसी है । यह प्रगति की उषः बेला पर छाने वाली कुञ्जटिका है, यह एकता की मजबूत डोर को काटने वाली कौंची है, यह भ्रातृत्व की गर्दन पर चलने वाली तेज छुरी है, यह उदारता की गाड़ी को काल कोठरी में धकेल देने वाली संकीर्णता की दुहिता है । यह उस भुकम्प की माया है, जो सामाजिक संरचना की गाँठों को निर्ममता से अस्त-व्यस्त कर देती है । ”<sup>२५</sup>

हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य के समान ही हमारे पंजाब प्रदेश में भी हिन्दु-सिक्ख वैमनस्य का अपना एक इतिहास सा बन गया है। पंजाब में जन्में, पले और कार्यरत डॉ. सहगल की पंजाबी मानस में गहरी पैठ है। यही कारण है कि हिन्दु-सिक्ख वैमनस्य का काँटा भी उन्हें सदैव सालता रहा है। वे कहते हैं कि “यह हिन्दु-सिक्खों में भेदबीज तो कुछेक नेताओं की स्वार्थलब्धि का परिणाम है – विश्वास मानें प्रस्तुत झगड़े में एक प्रतिशत भी जनसंख्या की रुचि नहीं। परन्तु बलिहारी है दोनों पक्षों के तथाकथित नेताओं की, जो लोकमानस को उकसाने की कला में खूब प्रवीण हैं।” देखा जाए तो हमारा इतिहास क्या कहता है ? इतिहास तो यही बताता है कि “हिन्दु और सिक्ख कभी जुदा थे ही नहीं। दशमेश ने किस धर्म की रक्षा के लिए औरंगजेब से लोहा लिया था ? हिन्दु धर्म के लिए न। हिन्दुओं और सिक्खों का धर्म, संस्कृति, महापुरुष तथा तीर्थस्थल एक ही तो हैं।”<sup>२६</sup> विवेच्य उपन्यास में उपन्यासकार सहगल ने हिन्दु-सिक्खों के आपसी टकराव, द्वेष, वैमनस्य और घृणा, जातियों की पारस्परिक धार्मिक-साम्प्रदायिक संकीर्णता को भारतीय जनमानस से समूल उखाड़ फेंककर साम्प्रदायिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता की पुनर्स्थापना का प्रयास किया है। डॉ. सहगल के ही शब्दों में – “अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति का मूल मन्त्र रहा है। यही कारण है कि यहाँ शताब्दियों से भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय अपनी अलग पहचान बनाये रखकर भी राष्ट्र-निर्माण में सहयोग देते हैं। रही साम्प्रदायिकता की बात, भई, साम्प्रदायिकता तो एक ऐसा पाप है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं। हिन्दु सिक्ख और मुसलमान तीनों भारत माता के पुत्र हैं और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से सहोदर हैं।”<sup>२७</sup>

प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित हिन्दु-सिक्खों की नयी पीढ़ी साम्प्रदायिक कट्टरता की ही नहीं अपितु मानवीय एकता की हामी है। उपन्यास के अन्त में कर्मचन्द और महिन्दर तथा इन्दर और रानी का वैवाहिक बन्धन

उपन्यासकार के इसी उद्देश्यों की पूर्ति को प्रमाणित करता है । ‘एक ओर रक्तबीन’ में भी उपन्यासकार ने अपनी इसी मान्यता को पुनर्स्थापित किया है कि मजहबों-जातियों के घेरे प्रेम ने कभी भी नहीं माने । विवेच्य उपन्यास में इन्दरसिंह कर्मचन्द को बातों-बातों में इस दृष्टिकोण का परिचय देता है – “मुझे क्या डाक्टर ने बताया है कि लड़की जाटों की ही हो ? मैं इस सम्बन्ध में पक्का मानवतावादी हूँ । मुझे लड़की चाहिए, उसमें उपरोक्त गुण चाहिए, फिर वह किसी भी जाति, धर्म या सम्प्रदाय की हो, चलेगी ।”<sup>२८</sup>

दूसरी ओर यदि देखा जाए तो साम्प्रदायिकता का मूल कहीं न कहीं धर्म ही है । जब मानव खुद को सीमित सीमाओं में आबद्ध कर लेता है तो उसके विचारों में संकीर्णता आ जाती है, ऐसे में धार्मिक क्रियाएँ साधन न रहकर साध्य बन जाती हैं । परिणामतः प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना ईश्वर लिए घूमता है तथा एक-दूसरे से दूर होता चला जाता है । मानव की संकीर्ण विचारधाराएँ ही उसे ऊपर नहीं उठने देती तथा धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठती है, जिसमें मानवता का कोई स्थान नहीं रह जाता है ।

### ➤ **भाग्यवाद में आस्था :**

भाग्य में विश्वास करना सदियों से भारतवासियों की नियति रहा है । भारत एक कृषि प्रधान देश है । अतः प्राकृतिक शक्तियों के प्रति आत्म समर्पण की भावना स्वाभाविक है ।

प्राकृतिक प्रकोप से बचने का उपाय न होने के कारण सुरक्षित जीवन सम्भव न था । प्रकृति से हार स्वीकार कर वह जीवन के प्रति उदासीन, निराशावादी तथा भाग्यवादी बन गया । प्रत्येक धर्म ईश्वर को सृष्टि का नियन्ता मानता है । अतः व्यक्ति अपना विश्वास खोकर ईश्वर की शक्ति को सर्वोपरी मानता है । उसका विश्वास है कि पिछले जन्म में जैसे जिसने कर्म किए होंगे वैसा ही फल मिलेगा या व्यक्ति जो कुछ अपने भाग्य में

लिखवाकर लाता है उसे वैसा ही भोगना पड़ता है या जो जैसा करेगा वैसा ही फल उसे मिलेगा आदि । कहने का भाव यही है कि कर्मशील बनकर जीवन में कुछ अर्जित करने की अपेक्षा, परिस्थितियों एवं विवशता से जूझने की बजाए केवल भाग्य के भरोसे ही जीवन नैया पार उतारने के आकांक्षी हैं । यदि सब भाग्य का ही खेल होता या अपने आप ही सब कुछ प्राप्त होना सम्भव होता तो हर व्यक्ति निठल्ला एवं आलसी ही बन जाता है । विवेच्य उपन्यास में उपन्यासकार ने जहाँ एक ओर कर्म को अपना अपना मानने वाले पात्रों की सर्जन की है वहाँ ऐसे पात्रों की भी कमी नहीं है जो कर्म तो करते हैं लेकिन भाग्य में भी उतनी आस्था रखते हैं । उपन्यास का मुख्य पात्र कर्मचन्द यद्यपि तर्कशील विचारों वाला एवं युवा-पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र है तथापि वह भी भाग्य पर विश्वास करता है । वह अपने दोस्त इन्दर से अपनी बहन रानी के शादी-ब्याह की बात करते हुए कहता है - “मजाक नहीं, मैं सच्चे दिल से ऐसा चाहता हूँ । आगे भाग्य को क्या स्वीकार होगा, मैं कह नहीं सकता ।”<sup>२९</sup> विवेच्य उपन्यास में पात्रो न केवल भाग्यवाद में ही आस्था रखते हैं बल्कि पुनर्जन्म, कर्मफल वाले हिन्दु दर्शन के सिद्धान्त में भी आस्था रखते हैं । अधिकतर पात्र पुरानी रूढ़िवादी धारणाओं में विश्वास रखते हैं जो आजकल के समय में सार्थक सिद्ध नहीं होती । अगर सभी बातों का निपटारा भाग्य, पुनर्जन्म या कर्मफल के भरोसे ही होना है तो मानव, जीवन में बिना कुछ किए ही सब कुछ पा सकता है क्योंकि अगर भाग्य अच्छा है या किस्मत साथ दे रही है तो कुछ भी पाना असम्भव नहीं । लेकिन आज का युग वैज्ञानिक युग है । अतः दार्शनिक बातों को न मानते हुए कर्मशील बनकर ही हम जीवन में बहुत कुछ पा सकते हैं, जीवन को सुखमय एवं एश्वर्य सम्पन्न बना सकते हैं ना कि भाग्य के भरोसे रहकर ।

### ➤ जातिवाद :

भारत एक धर्म प्रधान देश है, समय के साथ-साथ धर्म ने कई करवटें बदली । जितनी करवटें बदली, उतनी ही जातियों का निर्माण होता चला गया । जहाँ पहले केवल मानवता का नाथा था तथा एक ही जाति थी - मनुष्य जाति, वहाँ अब कई जातियाँ सिर उठाने लगी । कोई हिन्दु, कोई मुस्लिम, कोई सिक्ख, कोई ईसाई इत्यादि । धीरे-धीरे धर्म के सीमित घेरो में बांधती हुई जातियाँ राजनीतिक फलक पर विस्तार पाने लगी । परिणामतः समाज का ढांचा विकृत होने लगा । जातीयता एवं साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला तथा सांझी संस्कृति का रूप विखण्डित होने लगा ।

विभाजन से पहले हिन्दु-मुसलमान दोनों ही जातियों के लोग एक विशेष ओर सांझी संस्कृति का अंग बनकर ही जी रहे थे । हिन्दु - सिक्ख - मुसलमानों की परस्पर टकराहट, संकीर्ण साम्प्रदायिकता एवं जातिवाद की एक ऐसी लम्बी विष बेल बो गई, जिसके दुष्फल आज तक भारतवासी भुगत रहे हैं । और जिसका परिणाम पंजाब का बार-बार खण्डित होना है । “आखिर पंजाब का बार-बार विभाजन क्यों ? क्या यह किसी संस्कृति की मांग है ?”<sup>३०</sup>

वास्तव में जातिवाद को बढ़ावा देने का श्रेय हमारे राजनेताओं को ही है । निश्छल एवं अविरल गति से चल रहे सामाजिक परिवेश रूपी समुद्र में जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता के अवरोधक इन्हीं नेताओं ने ही लगाए । जिस तरह गाँव में विभिन्न निम्नोच्च जातियाँ एक-दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आगजनी, बलात्कार, मार-घाड़ और हत्या प्रयासों में संलग्न रहती हैं जहाँ गाँव के रूढ़िबद्ध पिछड़ेपन के यथार्थ को उभारती है, वहाँ सरकारी अराजकता भी सामने आती है । परिणामतः जातीयता की समस्या इतनी गम्भीर हो गई कि एक जाति के लोग दूसरी जाति या सम्प्रदाय के लोगों के लिए हऊया बन गया ।

### ➤ पीढ़ी अन्तराल :

प्रत्येक नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से अधिक प्रगतिशील दृष्टिकोण रखती है, जिस कारण वह पुराने रीति-रिवाजों, परम्पराओं का त्याग करके नई विचारधारा से सोचती है। आज की युवा पीढ़ी परिवार, समाज तथा वर्ग का विद्रोह करती है क्योंकि रूढ़िवादी मान्यताओं में वह जकड़े रहना नहीं चाहती। वह समाज की इस पूरी व्यवस्था को ही बदल देना चाहती है। पुरानी पीढ़ी, पुराने संस्कारों एवं रूढ़ियों में बंधी हुई है जबकि युवा पीढ़ी जीवन एवं जीवन मूल्यों को नए अर्थ देते हुए पुरानी रूढ़ियों एवं मान्यताओं का त्याग कर जीवन में बहुत कुछ पाने की आकांक्षी है। नई पीढ़ी के सोचने विचारने एवं कार्य करने की पद्धति पुरानी पीढ़ी से भिन्न है। यही कारण है कि दोनों पीढ़ियों में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। जो कभी-कभी अनचाहे झगड़े का कारण भी बन जाती है। विवेच्य उपन्यास में नई एवं पुरानी पीढ़ी के इसी अन्तराल एवं तनाव को दिखाने का प्रयास किया गया है। कर्मचन्द युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है तथा साम्यवादी नेता ब्रह्मस्वरूप पुरानी पीढ़ी का। पीढ़ी अन्तराल एवं विचारों की भिन्नता के कारण दोनों बात-बात पर झगड़ते रहते हैं। एक स्थान पर ब्रह्मस्वरूप कहता है – “चार पैसे क्या कमा लिए, बड़ा बुद्धिमान बन बैठा है। दूसरों की बुद्धि मोटी दिखती है ..... कभी-कभी लाइब्रेरी में पढ़ने क्या लगा है, अपने बराबर किसी को समझता ही नहीं। ससाला, गली-गली मांगता ना दिखा तो कहना।”<sup>३९</sup> विचारों में भिन्नता तथा पीढ़ी अन्तराल का परिणाम यह निकलता है कि पूरा समाज इस अमानवीय विडम्बना का शिकार बनता है – कहीं आग लगा दी जाती है तो कहीं बलात्कार होने लगता है। पीढ़ी अन्तराल के क्षोभ का यह बहुत ही भयानक रूप है।

नई पीढ़ी सुशिक्षित होने के कारण जाति के बन्धनों में नहीं बंधना चाहती । जब इन्दर अपने पिता चौधरी साहिब से पंजाबी हिन्दु लड़की रानी से विवाह की बात करता है तो चौधरी साहिब यह सब सहन नहीं कर पाते क्योंकि ऐसा करने पर शायद उन्हें बिरादरी की नाराज़गी का भय था कि कहीं बिरादरी से अलग होकर जीना दूभर न हो जाए । परन्तु इन्दर कहता है कि आज बदल रहे युग में जात-बिरादरी का कोई भेद नहीं – “जात बिरादरी क्या ? अब दुनिया बदल रही है । हमारी नई पीढ़ी इन रुकावटों को टुकराती चलती है उनमें एक ही जाति है – मानव जाति ।”<sup>३२</sup>

नई पीढ़ी व पुरानी पीढ़ी की सोचने, विचारने की पद्धति में बहुत अन्तराल है । जहाँ पुरानी पीढ़ी जात-बिरादरी से डर कर रहती है, वहाँ नई पीढ़ी इन सब मान्यताओं का त्याग करती है । शिक्षा के प्रसार, नव-चेतना एवं जागृति के कारण युवा पीढ़ी उन सभी पुरानी मान्यताओं एवं रूढ़ियों का त्याग करने को तत्पर है जो समाज के उत्थान में बाधक बनती हैं, आज के युग में समाज को उन्नत करने के लिए यह आवश्यक है कि इन रूढ़िवादी मान्यताओं का त्याग कर समाज की व्यवस्था में परिवर्तन किया जाए ।

### ➤ निष्कर्ष :

इस प्रकार बदलती करवटें उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है जिसमें युवा पीढ़ी द्वारा समाज की व्यवस्था की रूढ़िवादी मान्यताओं और विचारधाराओं का कड़ा विरोध किया गया है । यह उपन्यास एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसमें धर्म और जात-पात से ऊपर उठकर इन्सानी मूल्यों, हृदय-परिवर्तन को पैनी दृष्टि से आंका गया है । सामाजिक सम्बन्ध, साम्प्रदायिकता की संकीर्ण मानसिकता, जातिवाद, धर्म, राजनीतिक स्वार्थ आदि ऐसे पहलू हैं जो



समाज को बनाने तथा बिगाड़ने में सहायक बनते हैं । यह भेद-भाव संकीर्णता का अभिशाप है । यह उपन्यास आज के समय की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है क्योंकि आज जो सामयिक हैं आज जो ज्वलन्त है, आज जो भ्रमित है, आज जो दुश्मन हैं – उसको बहुत पहले ही लेखक की पैनी दृष्टि में उतार लिया था । इसके साथ ही लेखक ने हिन्दु-सिक्ख दोनों ही समुदायों, सम्प्रदायों के लोगों बीच जातिवाद की भावना को समाप्त कर प्रेम मार्ग को दिखाया है कि किस प्रकार हिन्दु और सिक्ख समय पड़ने पर एक दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहते हैं । एक अर्से से राजनीति इस उप-महाद्वीप पर एक बड़ी सीमा तक सामाजिक, आर्थिक स्थितियों पर हावी रही है । देश के आजाद होने के बाद प्रायः हर समस्या का राजनीतिकरण हुआ है या फिर समस्या ही राजनीतिक कारणों से पैदा हुई है । साहित्य पर भी राजनीति और व्यवस्था इस कदर हावी रही कि समाज व्यवस्था विरोधी उपन्यास कम मात्रा में ही प्रकाशित हुए । परन्तु इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने जागृत युवा पीढ़ी द्वारा जातिवाद, धर्म, साम्प्रदायिकता, ऊँच-नीच के विरुद्ध आवाज उठा कर समाज की इस व्यवस्था को बदलने की चेतावनी दी है ।

### ❖ “एक और रक्तबीज” (१९८४) :

मनमोहन सहगल कृत ‘एक और रक्तबीज’ एक सामाजिक-राजनीतिक उपन्यास है । इस उपन्यास में भी उन्होंने समाज-व्यवस्था की समस्याओं की ओर ध्यान आधर्षित किया है । इसमें सन्देह नहीं कि मनमोहन सहगल के उपन्यास समाज, उसकी व्यवस्था और समस्याओं के भयावह यथार्थ को उभारते हैं और उन उपायों की ओर संकेत करते हैं जिससे उन समस्याओं से निपटने की ताकत अर्जित की जा सकती है । समस्यात्मकता उनके

उपन्यासों की रीढ़ की हड्डी है । इसे दृष्टि से ओझल करने से उनके उपन्यासों का शीराजा ही बिखर जाएगा ।

यह बात सही है कि इधर के अधिकतर उपन्यास समस्या निर्भर न होकर स्थिति निर्भर हैं । वे समस्याओं को बाकायदा स्थूल रूप में नहीं उठाते बल्कि परिवेशजन्य स्थितियों के रूप में उठाते हैं । समस्या कब स्थिति का रूप ले लेती है और स्थिति कब समस्या में ढल जाती है, यह औपन्यासिक विधान का एक जटिल और दिलचस्प पहलू है । उनके उपन्यासों में स्थिति के कथानक बनने की प्रक्रिया को लक्षित किया जा सकता है । ये सब बातें मनमोहन सहगल के उपन्यास 'एक और रक्तबीज' के सन्दर्भ में विशेष रूप से कही जा सकती हैं ।

'एक और रक्तबीज' डॉ. सहगल का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें एक साथ अनेक समस्याओं को उजागर किया गया है । इसमें समाज के उस वर्ग की वास्तविक स्थिति का बोध कराया गया है जिसका सम्बन्ध विश्वविद्यालय से हैं । इसके साथ ही इस उपन्यास में परम्परावादी रूढ़ियों, बन्धनों की समस्या को दिखाया गया है और यह भी दिखाया है कि युवा पीढ़ी किस प्रकार समाज-व्यवस्था में व्याप्त इन रूढ़ियों व परम्पराओं को तोड़ देना चाहती है । वह इनके बन्धनों में जकड़े रहना नहीं चाहती ।

यह उपन्यास एक विशिष्ट प्रान्त एवं विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होते हुए व्यापक सन्दर्भों की प्रतीति कराता है । युग चेतना की वास्तविकता को अनेक सन्दर्भों में यथार्थ एवं कल्पना के धरातल पर प्रस्तुति प्रदान करता है । बुद्धिजीवी वर्ग के साथ युवा-शक्ति की वास्तविक स्थिति को इसमें लेखक ने नया आधार दिया है । वह समाज के ऐसे लोगों को बेनकाब करता है जो स्वार्थ-पूर्ति के लिए घटिया हथकण्डे अपनाते हैं । जातीय, संकीर्ण साम्प्रदायिकता के स्थान पर यह भारतीय एवं साम्प्रदायिक सौहार्द का पक्षधर लेखक है । अनुसूचित जाति के आरक्षण, बेरोजगारी, जातिवादिता की

समस्याओं से जूझने का मार्ग सुझाया है । युवा-शक्ति पर लेखक को पूर्ण विश्वास है । वह मानता है कि युवा-शक्ति संगठित होकर इस दूषित व्यवस्था को बदल सकती है – यही इस उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य है । यथा – “नयी रोशनी की तीखी किरणों से घबराकर रूढ़ियों के अन्धेरे छिपे में मुंह छिपा लेने वाले सामाजिक घटकों ने सुधेश को मार्ग से हटा दिया, किन्तु रक्तबी कभी मरा है ! सुधेश के लाखों उत्तराधिकारी बिहार के विश्वविद्यालयों में जीवन पा रहे हैं और बढ़-चढ़कर सामाजिक जागृति का आह्वान करते हैं । वर्तमान आन्दोलन सुधेश की आत्मा की आवाज है ।”<sup>३३</sup>

वर्ग संघर्ष की दृष्टि से विवेच्य उपन्यास महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता है । उच्च वर्ग तथा निम्न वर्ग का संघर्ष, जमींदार और मजदूर का संघर्ष, शहर तथा गाँव के मजदूरों का संघर्ष – समस्याओं की सही पहचान कराते हैं । इसमें वह ऐसे सूत्र वाक्य यथास्थान प्रस्तुत करता है जिससे उसकी मूल्यपरक अन्वेषी दृष्टि का परिचय मिल जाता है । यथा – “रक्त की रंगत ही क्रान्ति का आह्वान करती है ।”<sup>३४</sup> भारतीय संस्कार मूलतः आस्थावादी है – गरीबों की एक ही जाति होती है – वे शहरी या ग्रामीण नहीं होते । वे मेहनतकश होते हैं और केवल गरीब कहलाते हैं । ऊँची-नीची जाति की दीवारें उनके गिर्द नहीं होती ।”<sup>३५</sup>

उपन्यासकार ने विश्वविद्यालय एवं समाज के अन्य क्षेत्रों में जूझती पीढ़ी तथा आधुनिकता का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया गया है । आज हमारे देश के कर्णधार विभिन्न क्षेत्रों में युवा पीढ़ी का आह्वान करते हैं, उस देश के नव निर्माण की आधारशीला देश की निर्मात्री शक्ति आदि सम्बोधनों से अभिहित करते हैं किन्तु सत्य यह है कि युवा पीढ़ी को स्वार्थ साधन का खिलौना ही बनाया जाता रहा है । उनका उपयोग राजनीतिक लड़ाई में अस्त्र रूप में किया गया है, यही कारण है कि उस युवा पीढ़ी

के मन में समाज की इस व्यवस्था के प्रति आक्रोश है । ऐसा नहीं है कि सदैव समाज अथवा शास ने युवा शक्ति के साथ खिलवाड ही किया हो । अनेक नीतियाँ सद्उद्देश्य से भी निर्मित हुई किन्तु समय-समय पर उन नीतियों की उपलब्धियों और त्रुटियों पर विचार किया जाना चाहिए था जो नहीं किया गया फलतः उनमें अनेक दोष भी उत्पन्न हो गए । सरकार की आरक्षण नीति भी एक ऐसी ही नीति है ।

‘एक और रक्तबीज’ की कथावस्तु युवा पीढ़ी से सम्बद्ध है । डॉ. सहगल ने इस उपन्यास के नायक सुधेश को एक प्रबद्ध युवक के रूप में चित्रित किया है । वह पढ़ा-लिखा, विचारवान तथा विद्रोही वृत्ति का युवक है । उसमें नेतृत्व-शक्ति है । उसका स्पष्ट दृष्टिकोण है कि जाति के नाम पर अनाधिकारी का पोषण नहीं होना चाहिए । उसे यह देखकर अत्यन्त क्षोभ होता है कि भारत की स्वतन्त्रता के अनेक दशक बीत जाने पर भी शासन द्वारा जातिगत अन्तर को उभारा जा रहा है और आर्थिक स्तर की उपेक्षा की जा रही है ।

डॉ. सहगल का दृष्टिकोण अत्यन्त मानवतावादी है । उन्होंने सुधेश, रानी, किरण और चतुर्भुज जैसे सजीव चरित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किए हैं जो आधुनिक युवा पीढ़ी से परिचित व्यक्तियों के लिए न केवल यथार्थ हैं, वरन् वास्तविक और प्रतिनिधि चरित्र हैं । ये चारों एक ही गाँव के रहने वाले हैं । सुधेश जमींदार की सन्तान है । उसे धन, भोजन और वस्त्र का अभाव कभी नहीं रहा । यह आरक्षण की व्यवस्था का घोर विरोधी है । चतुर्भुज अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण परिवार में जन्मा एक युवक है जो निर्धनता, भूख और मिथ्या दम्भ के साथ संघर्ष करता हुआ किसी तरह विश्वविद्यालय तक पहुँचा है । उसे जातिवाद के मूल से ही चिढ़ थी । उसके मन में समाज की उस व्यवस्था के प्रति गहरा रोष था जो आवश्यकता जाने बगैर एक को देते अघाती नहीं ओर दूसरे के सन्तोष पर

सन्तुष्ट है । यह इस बात से काफी परेशान था कि समाज की यह व्यवस्था निर्धनता पर चोट करने की अपेक्षा लोगों की बाहर से ओढ़ी बातों, जातिवाद, वर्गवाद तथा सम्प्रदाय की बात करती है । अभाव की घुटन, आर्थिक दशा के भीतर की टूटन और ब्राह्मणत्व के मिथ्या दंभ का बोझ उसके लिए असह्य हो रहा था । उसका सहपाठी कोरी टीले का किरण चन्द्र है । वह अत्यन्त मेधावी छात्र है और उसे किसी प्रकार की आर्थिक समस्या भी नहीं है । वह भी आरक्षण नीति का विरोधी है । यद्यपि वह स्वयं अनुसूचित जाति का होने के नाते आरक्षण की सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकारी है । किन्तु वह यह अनुभव करता है कि बैठे-बिठाए अकारण सुविधाएँ मिलने लगे तो व्यक्ति कर्म विमुख हो जचता है, इसलिए वह इस आरक्षण की ओर से मिलने वाली आर्थिक सहायता को भीख समझता था । वह एक स्थान पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहता है – “मैं परिश्रम करता हूँ, प्रत्येक परीक्षा में उच्च प्राप्तांकों से उत्तीर्ण होता हूँ । श्रेष्ठ योग्यता और उत्तम परीक्षाफल के कारण जो मेरा अधिकार बनता है, वही मुझे भीख ओर सुविधा के रूप में प्रदान किया जाता है । ऐसी स्थिति पर कोई भी क्षुब्ध होगा, मैं भी तिलमिलाकर रह जाता हूँ ।”<sup>३६</sup> उसका विश्वास है कि सरकार शीघ्र ही आरक्षण नीति का संशोधन करें, अन्यथा सुयोग्य नई पीढ़ी आलसी और कुण्ठित हो जायेगी ।

रानी कोरी टीले के बी.डी.ओ. की बेटी थी । निम्न जाति की होने पर भी वह अन्य कुलीन लड़कियों से इक्कीस थी । इसे भी अपनी पढ़ाई के दौरान मिलने वाली आर्थिक सहायता से चिढ़ थी । उसका मत है कि किसी जाति को बौद्धिक रूप से ही न मान लेना अवैधानिक और अनीतिकर है । आर्थिक अभाव किसी भी जाति के लोगों में हो सकता है । आरक्षण अभाव ग्रस्त लोगों को सुविधा जुटाने के लिए है, इसलिए किसी अनुसूचित जाति के लिए आरक्षण का प्रश्न उठाकर समूची जाति की

ही बौद्धिक अवमानना करने की अपेक्षा अभावों में पले आर्थिक रूप से दुर्बल लोगों को आरक्षण की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। रानी हरिजनों को दी जाने वाली आरक्षण सुविधाओं को अपनी हेठी समझती है। अनुसूचित जाति की होने पर भी उसने विश्वविद्यालय में आरक्षण नीति के विरोध में अपने तन-मन को समर्पित कर दिया। उसका मूल नारा था - आरक्षण जातिगत नहीं, अभावार्थ होना चाहिए। वह अत्यन्त गम्भीरता से अनुभव करती है कि जो जाति वाल्मीकि सरीखे ऋषि और कवि पैदा कर सकती है, रविदास जैसे पहुँचै हुए सन्त उपजा सकती है, डॉ. अम्बेडकर जैसे वैज्ञानिक बना सकती है, उसे पिछड़ा हुआ कहकर समूची जाति को अपमानित करने का षडयन्त्र सरकार स्तर पर किया गया है, अतएव उसे निरस्त किया जाना चाहिए।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने साम्प्रदायिक एकता का भाव जगाने का भी सतुल्य प्रयास किया है। इधर कुछ वर्षों से हिन्दु और सिक्खों के मध्य भेदभाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से अनेक बातें प्रचलित की जाती रही हैं, इस परिप्रेक्ष्य में सुधेश तथा रानी का गुरुद्वारे जाकर गुरु ग्रंथ साहिब के सम्मुख माथा टेकना और श्रद्धा व्यक्त करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वहीं संयोग से उन्हें सरला मिल जाती है जिसको एक सिक्ख दम्पति ने बेटी मानकर अपने घर में रख लिया था। जब चतुर्भुज सरला से विवाह करने को उद्यत हो जाता है तो सरदार जी उससे जिज्ञासा करते हैं कि उसे सिक्ख पद्धति से विवाह करने में कोई आपत्ति तो नहीं है। इस पर चतुर्भुज उत्तर देता है - “इन्सान का मजहब इन्सानियत है, बाकी तो परमात्मा की पूजा करने की विधियाँ हैं। विवाह में भी परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करना होता है, किसी भी विधि से प्राप्त कर लो। गुरुओं की दी इस परमादरणीय विधि से विवाह रचाने में आपत्ति कैसी? मेरा तो इसमें गौरव है।” अन्ततोगत्वा गुरुद्वारे में ही सरला और चतुर्भुज

विवाह-बन्धन में बंध जाते हैं। एक सिक्ख दम्पति का यह वात्सल्य ओर वह भी हिन्दु कन्या के प्रति, इस तथ्य का प्रमाण है कि विचारों की संकीर्णता ओर घृणित साम्प्रदायिकता अभी सौभाग्य से बहुत सीमित दायरे में ही है।

डॉ. सहगल ने मुख्य पात्रों तथा अन्य पात्रों के माध्यम से युवा पीढ़ी के आक्रोश को अत्यन्त सशक्त स्वर प्रदान किया है ओर एक प्रकार से सार्वभौमिक प्रश्न को ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। आज सम्पूर्ण विश्व में युवा पीढ़ी इन तथाकथित व्यवस्थाओं के विरुद्ध विद्रोह के झंडे खड़े कर रही है। भारत भी इस लहर से अछूता नहीं है। जिस युवा पीढ़ी को नकारा जाता है, वह यदि अपने अस्तित्व की आवाज़ बुलन्द करे और सामाजिक, राजनैतिक तथा नैतिक व्यवस्थाओं को नकारे तो हम उसे दोष देने के अधिकारी नहीं हैं। किन्तु यह तो समस्या मात्र है, उसके समाधान की खोज में हमारी दृष्टि बुद्धिजीवियों विशेषतः साहित्यकारों की ओर जाती है। हमारे साहित्यकार का दायित्व है कि वह राजनीतिक विधियों में भटकती हुई युवा पीढ़ी को इस भय, संत्रास और अनास्था से छुटकारा दिलाए। यदि राजनीतिक प्रपंच मनुष्य को तोड़ता है तो साहित्य स्नेह से उसे जोड़ा सकता है।

डॉ. सहगल ने इस उपन्यास में यह संकेत भी दिया है कि आज की युवा पीढ़ी रूढ़िवादी मान्यताओं में अपने को जकड़े रहना उचित नहीं समझती। युवा चेतना समाज की बनावटी सीमाओं को समाप्त करना चाहती है। क्योंकि उनका विश्वास है कि इन सीमान्त रेखाओं के छूटने से जीवन का रंग ही बदल जाएगा। रानी एक स्थान पर कहती है – ‘मनुष्य पहले मनुष्य होता है, फिर उसमें जाति, वर्ग तथा ऊँच नीच की स्थापना होती है।’ उसके और उसके अन्य साथियों ने विश्वविद्यालय में सवर्ण और अवर्ण की बात बिल्कुल मिटा दी थी। सामाजिक बेड़ियों में जकड़े बी. डी.

ओ. साहब अथवा चोधरी साहब के गले सुधेश और रानी का अन्तर्जातीय विवाह भले ही न उतरे किन्तु आज का प्रबद्ध, आदर्शवादी और रूढ़िवादी बन्धनों को तोड़ने के लिए कृत संकल्प युवक क्या सोचता है, यह सुधेश के शब्दों से स्पष्ट है – “नई पीढ़ी को टीके-दहेज नहीं, जीवन के सही मूल्यों को ब्याहना है। लड़की तो लड़की होती है। कोरी, बांहमण तो उसे हम बनाते हैं। नौजवानों में इसी जाग्रति की अपेक्षा है, ओर आज का युवक इस दिशा की ओर प्रकाश ग्रहण कर रहा है।”<sup>३७</sup> मन्दिर के पुजारी का बेटा चतुर्भुज भी बदलती हुई युवा चेतना का उत्साही मूर्त रूप है। वह सरला के अवांछित अतीत की उपेक्षा कर उसे पत्नी रूप में अपनाने को सहर्ष उद्यत हो जाता है। निश्चय ही चतुर्भुज का त्याग और साहस एक युवक की अदम्य भावना ही है जो रूढ़िवादी समाज को बदलने के लिए कटिबद्ध है।

डॉ. सहगल जागरूक उपन्यासकार हैं। उनके इस उपन्यास में समाज की व्यवस्था की विविध समस्याओं, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्रश्नों के सहज चित्रण द्वारा युग चेतना के तार स्पन्दित हो उठे हैं। चरित्र शिल्प की दृष्टि से भी प्रस्तुत उपन्यास उल्लेखनीय है।

डॉ. सहगल ने एक ओर भीरु, सहिष्णु, परम्परावादी पुरानी पीढ़ी का चित्रण किया है, दूसरी ओर उद्धत, असहिष्णु निशंक तथा निर्भीक पीढ़ी के चरित्रों की अवतारणा है। सभी पात्र सजीव तथा स्वाभाविक हैं।

इस उपन्यास के द्वारा डॉ. सहगल ने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य को उजागर किया है कि युवा पीढ़ी एक रक्तबीज के समान है। वह कभी मिटती नहीं। उसका संघर्ष अपने आगे जाने वाली पीढ़ी से नहीं, उस पीढ़ी की देन भ्रष्टाचार, कुनबा, जात, रूढ़िवादी परम्पराओं आदि से उनका विरोध है। रूढ़ियों के अन्धेरे छिद्रों में मुंह छिपा लेने वाले सामाजिक घटक भले ही नयी रोशनी की तीखी किरणों से घबराकर किसी एक युवक को



मार्ग से हटा दें किन्तु आज की युवा पीढ़ी जुझारु है । यदि एक युवक हटेगा तो उसका स्थान लेने सैकड़ों आ खड़े होंगे । यही रक्तबीज की प्रतीकात्मकता है जिसका संकेत उपन्यास के शीर्षक 'एक और रक्तबीज' से मिलता है ।

➤ ***'एक और रक्तबीज' में समाज व्यवस्था :***

अपने उपन्यास 'एक और रक्तबीज' में डॉ. सहगल ने समाज व्यवस्था में व्याप्त सामाजिक समस्याओं को उठाने का प्रयास किया है और फिर इन समस्याओं के सुधारवादी दृष्टिकोण को भी दर्शाया है ।

➤ ***सामाजिक समस्याएँ :***

अपने को सुरक्षित एवं हर तरह से पूर्ण बनाने का मनुष्य ने जैसे-जैसे प्रयास किया है, वैसे-वैसे ही समाज का निर्माण होता चला गया । परन्तु समय के साथ-साथ इसमें अनेक विकृतियाँ आ गई और इस समाज रूपी सर्प ने सामाजिक समस्याओं रूपी जहरीले दंशों से उसे ऐसा डसना शुरू किया कि अन्ततः मनुष्य ने अपनी सुरक्षा हेतु समाज का निर्माण किया, उसी समाज में उभरने वाली समस्याओं ने उसे अपना ग्रास बना लिया । कुछ ऐसी ही सामाजिक समस्याएँ, जो सारे समाज पर काले बादलों की तरह मंडरा रही हैं, उपन्यासकार ने विवेच्य उपन्यास 'एक और रक्तबीज' में उठाने का प्रयास किया है ।

➤ ***आरक्षण की समस्या :***

शुरू-शुरू में कर्म के आधार पर समाज में केवल चार श्रेणियाँ थी – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । परन्तु धीरे-धीरे यह श्रेणियाँ सवर्ण एवं अनुसूचित जातियों में तबदील हो गई तथा अहम् के कारण दोनों जातियों में संघर्ष उत्पन्न हो गया । इतिहास साक्षी है कि अनुसूचित कही जाने वाली

जातियों पर सवर्ण हिन्दुओं की ओर से काफी अत्याचार होते रहे हैं । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् महात्मा गांधी के उदार दृष्टिकोण तथा स्वतन्त्र भारत की मानसिकता के कारण इस देश में पहली बार यह अनुभव किया गया कि निम्न जाति के लोग भी मानवता का अधिकार रखते हैं । अतः उन्हें न केवल मनुष्य होने का हक दिया गया बल्कि उनके प्रति सवर्ण घृणा को भी अवैध ठहराया गया । प्रशासन ने निम्न वर्ग के लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए, उनके लिए पढ़ाई-लिखाई, नौकरी तथा कौशल के क्षेत्र में प्रतिशत पद आरक्षित कर दिए । सरकार ने युगों से दलित वर्ग की उन्नति के लिए उचित साधनों व सुविधाओं को जुटाया, ऐसा करना आवश्यक भी था क्योंकि इस वर्ग को आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से ऊपर उठाना सरकार का धर्म है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या अनुसूचित जाति को दी जाने वाली सुविधाओं का प्रयोग सही ढंग से हो रहा है ? समाज के विभिन्न वर्गों में अनुसूचित जाति को दी जाने वाली सुविधाओं के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही है ? आरक्षण की उभर रही इस समस्या का सामाजिक पक्ष उजागर करने के लिए डॉ. सत्यपाल जैसे खुले विचारों के विद्वान कहते हैं कि – “मैं यह नहीं मानता कि उन्हें इस प्रकार उबारने की जरूरत नहीं थी, आर्थिक और सामाजिक दृष्टियों से उन्हें उत्थित करना किसी भी सरकार का धर्म कहा जाना चाहिए । जो कुछ सुविधाएँ उनके लिए जुटायी गई, वे अनिवार्य थीं । युगों से दलित वर्गों की उन्नति के लिए इस प्रकार के इनसेंटिव सहज थे । उनका विरोध स्वार्थवश है । हर आदमी का हक उसे मिलना ही चाहिए ।”<sup>३८</sup> वहीं दूसरी ओर आरक्षण नीति के विरोधी, विद्यार्थियों के परामर्शदाता, मित्रवर भी हैं क्योंकि आरक्षण नीति के विरोध में उनका भविष्य भी सम्बद्ध है – “उनकी प्रजाति में हमें कहाँ आपत्ति है ? पहले उनकी मानसिक और बौद्धिक तरक्की होनी चाहिए । तब उनकी उच्चतर

नियुक्तियाँ भी हमें अमान्य नहीं है । आन्दोलन का लक्ष्य बस इतना ही है कि सरकार के कान में इतना भर डाला जा सके कि जातिगत आरक्षण कुण्ठा का कारण बन रहा है, आरक्षण आर्थिक पक्ष से पिछड़े लोगों को मिलना चाहिए, ओर वह भी केवल नियुक्ति में, उन्नति में नहीं । वहाँ योग्यता और कार्य-दक्षता को ही महत्त्व दिया जाना होगा ।”<sup>३९</sup> वहीं दूसरी ओर आरक्षण नीति का समर्थन करने वाले रानी के पिता बी. डी. ओ. साहेब, विद्यार्थी सत्येन्द्र जैसे लोग भी हैं जो यह मानते हैं कि “घर की लक्ष्मी को लात मारकर उनमें से कोई खुश नहीं रह सकता ।”<sup>४०</sup> वह तो यहाँ तक कहने से भी नहीं चूकते कि “शताब्दियों से हम लोग जातिवाद की चक्की में पिसते रहे हैं, ऊँची जाति के लोगों ने हम पर अमानवीय अत्याचार किए हैं, हमें मानवता के अधिकारों से वंचित रखा है, आज यदि कुछ सुविधाएँ किसी तरह हमें मिल पाई है तो इन सवर्ण लोगों का पेट दुखता है ।”<sup>४१</sup> बी. डी. ओ. साहिब तो यहाँ तक कहते हैं – “हमारी सैंकड़ों पीढ़ियों को सवर्णों द्वारा वंचित किया गया था, लाभ उठाने की सुविधा तो अभी एक-दो पीढ़ियों को ही मिली है । क्या सैंकड़ों वर्षों का मल ३०-३५ वर्षों में धुल सकता है ? हमारे बच्चों में किरण और रानी जैसे कितने प्रतिशत योग्य बालक बन पाए हैं अभी ? समता और सन्तुलन लाने के लिए कम से कम सौ वर्ष तो वर्तमान नीति का प्रचलन अपेक्षित है ।”<sup>४२</sup>

परन्तु देखा जाए तो इस नीति का शिकार या आरक्षण की नीति की ओट में पिस रहा है आज का युवा छात्र । इस नीति ने केवल सवर्ण छात्रों में ही नहीं वरन अवर्णों में भी निराशा एवं कुण्ठा पैदा कर दी है । एक ओर प्रतिभावान सवर्ण युवक यह सोचकर क्षुब्ध है कि ८० प्रतिशत अंक पाने पर भी वह पद केवल इसलिए नहीं प्राप्त कर सकेगा क्योंकि वह अनुसूचित जाति का नहीं है तथा दूसरी ओर अनुसूचित जातिका युवक यह

सोचकर अकर्मण्य हो जाता है कि “सरकार के दामाद हैं, ३५ प्रतिशत अंक भी ले लिए तो कैरियर बन जाएगा।”<sup>४३</sup> किरण के शब्दों में “विद्यार्थी होने के नाते अपने पक्ष की मांगों से आप सब परिचित ही हैं। मुझे तो आरक्षण-नीति के विरोध में अपने अनुभव बताने हैं। मैं परिश्रम करता हूँ, प्रत्येक परीक्षा में उच्च प्राप्तांकों से उत्तीर्ण होता हूँ। श्रेष्ठ योग्यता और उत्तम परीक्षा-फल के कारण मेरा जो अधिकार बनता है, वही मुझे भीख और सुविधा के रूप में प्रदान किया जाता है। ऐसी स्थिति पर कोई भी क्षुब्ध होगा, मैं भी तिलमिलाकर रह जाता हूँ।”<sup>४४</sup>

आज का युवक – चाहे वह सवर्ण हो या अवर्ण – सरकार की इस आरक्षण नीति का विरोध कर रहा है क्योंकि वह जानता है कि आर्थिक अभाव किसी भी जाति के लोगों में हो सकता है। चूंकि आरक्षण अभाव ग्रस्त लोगों को सुविधा जुटाने के लिए हैं, इसलिए किसी अनुसूचित जाति के लिए आरक्षण का प्रश्न उठाकर समूची जाति की बौद्धिक अवमानना करने की अपेक्षा अभावों में पले-आर्थिक रूप से दुर्बल लोगों की ही आरक्षण प्रदान की जानी चाहिए।

### ➤ *अस्पृश्यता की समस्या :*

समाज-व्यवस्था में अस्पृश्यता की समस्या सदियों से चली आ रही है। सदियों से यही परम्परा चली आ रही है कि उच्च जाति के लोग निम्न जाति के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं उनके हाथ का छुआ हुआ खाना तो दूर रहा, यदि अज्ञानतावश वे उनसे छू भी जाए तो उच्च जाति के लोग अपने को अपवित्र समझने लगते हैं तथा पवित्र होने के उपक्रम ढूंढते हैं। विवेच्य उपन्यास में इस समस्या से ग्रस्त केवल पुरानी पीढ़ी ही नहीं है वरन आज की युवा पीढ़ी में भी यह बात कहीं न कहीं किसी गहरे में बैठी है। रूढ़ियों तथा परम्पराओं का विरोध करने वाले

युवाओं के मन में ऐसा ख्याल आना सर्वथा अनुचित सा लगता है, यह बात अलग है कि बाद में वे शर्मिन्दगी महसूस करते हैं। चाहे चौधरी हो या कथानायक सुधेश या फिर कोरी जाति की रानी ही क्यों न हो – एक पल के लिए इस भाव से कोई अछूता नहीं। रानी के अस्पृश्य होने के कारण चौधरी साहिब उसके हाथ का छुआ खाना नहीं चाहते परन्तु उसके सदव्यवहार एवं सेवा-भाव को देखकर उसे आशीर्वाद देने से नहीं चूकते। दूसरे शब्दों में, ऊपर से भले ही समाज के डर से या अपने अहम को बनाए रखने के लिए इसे घृणित मानते हों लेकिन दिल से वे इसे स्वीकार करते हैं और उनकी दृष्टि में दूर कहीं रानी में बहु का प्रतिरूप घिर आता है। रानी भी इस बात को महसूस करती है – “वे मेरे हाथ से खाते-पीते रहें, उन्होंने स्नेह से मेरे सिर पर आशीष हाथ रखा और कितना आभार माना उन्होंने मेरा। ऐसा लगता है जैसे उन्होंने सुधेश मुझे ही सौंप दिया हो। लेशमात्र भी तो स्वार्थ उनके व्यवहार में दीख नहीं पड़ा।”<sup>४५</sup>

रानी भी इस भय से मुक्त नहीं। यद्यपि वह जानती है कि सुधेश उसे सच्चा प्यार करता है तथापि उँची-नीची जाति का भय उसे सोचने पर मजबूर करता है – “क्या जातीय बन्धनों के कारण सुधेश उसकी प्रेमांजलि को ठुकरा तो न देगा। या उसके सजातीय लोग उसे किसी अन्य निर्णय के लिए बाधित तो नहीं कर देंगे? ऐसा तो नहीं होना चाहिए। वह पढ़ा-लिखा, विचारवान तथा विद्रोही वृत्ति का युवक है, क्या अपने समाज के मिथ्याभिमान के सम्मुख झुक जाएगा वह।”<sup>४६</sup> दूसरी ओर सुधेश के मन में भी अस्पृश्यता का भाव आता है परन्तु दूध के उफान की तरह वह शीघ्र ही शांत हो जाता है – “मानवीय सम्बन्धों में जाति का क्या काम? मनुष्य पहले मनुष्य है, मानवीय वृत्तियों का पोषक और बस। रानी ने उसे जिला लिया है – अपने अंचल की स्निग्धता देखकर मृत्यु से उसे छीन कर लौटा आई है। सावित्री के सच्चे प्यार की ही तो जीत हुई थी, जब

उसने यमराज से सत्यवान को लौटा लिया था तो क्या रानी भी उससे सच्चा प्रेम ..... ? हाँ, जरूर कहीं गहरे में ..... । आगे सोचने में वह असमर्थ हो गया ।”<sup>४७</sup>

### ➤ जातीय संघर्ष :

कई ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी सामन्तवादी प्रथा का चलन है जिसे अवसर मिलते ही लाठी चलवाने, आगजनी, लड़ाई-झगड़ा करवाने में कोई संकोच नहीं । दूसरी ओर कोरी एवं अनुसूचित जातियों के लोग हैं जो दासता, अवमानता, अभावों से सद्य प्राप्त मुक्ति का तथा आरक्षण की सुविधा का अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं । जातियों एवं उपजातियों में बंटे हुए ये लोग किस प्रकार छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई-झगड़ों, मार-पीट पर उतर आते हैं इसका बड़ा ही सजीव वर्णन इस उपन्यास में हुआ है ।

जिस तरह गाँव में विभिन्न निम्नोच्च जातियाँ एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आगजनी, बलात्कार, मार-घाड़ और हत्या-प्रयासों में संलग्न रहती हैं, जहाँ गाँव के रूढ़िबद्ध पिछड़ेपन के यथार्थ को उभारती है, वहाँ सरकारी अराजकता भी सामने आती है । न्यायनिष्ठ पात्र भली-भाँति समझते हैं कि कुटिल से डरकर उसे बुराई से न रोकना या दण्ड न देना अनैतिकता तो है ही, साथ ही अवांछित मोह है किन्तु इस ओर बढ़ने के लिए अपने या अपनों के प्राण गंवाने के खतरों को कौन मोल ले सकता है, जबकि सरकारी कानून-व्यवस्था का तन्त्र भ्रष्ट हो चुका हो ।

यह सही है कि हमारे समाज में जमींदारों – किसानों और खेतिहर मजदूरों में वैषम्य तथा द्वन्द्व एक लम्बे समय से चला आ रहा है । आज भी हमारे समाज में शोषक-शोषित की स्थिति वैसी ही बनी हुई है । आज की स्थिति में हरिजन ‘सरकार के दामाद’ हैं और समाज में इनका सामन्ती वर्ग उभरता हुआ प्रतीत होता है । एक ही वर्ग में कुछ लोग मौके का

फायदा उठाकर आवश्यकता से अधिक लाभ कमा रहे हैं तथा दूसरे मुंह की ओर ताक रहे हैं ।

### ➤ बेरोजगारी की समस्या :

विवेच्य उपन्यास आज की युवा पीढ़ी से सम्बन्धित है अतः युवाओं में सबसे अधिक मात्रा में बढ़ रही बेरोजगारी एवं बेकारी की समस्या को भी उठाया गया है । बेकारी के कारण आज के नवयुवकों में निराशा एवं कुण्ठा की भावना व्याप्त हो गई है । एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी ८० प्रतिशत अंक लेकर भी बेकार घूमता है और दूसरा ३५ प्रतिशत अंक लेकर भी अफसर बना घूमता है । सिफारिश तथा झूठे सर्टीफिकेट आदि के कारण प्रतिभा का कोई मूल्य नहीं रह गया है । इतना ही नहीं नियुक्ति अधिकारी जिस जाति से सम्बन्धित होता है, वह उस जाति के व्यक्ति को ही प्राथमिकता देता है परिणामतः युवकों का मन निराशा एवं कुण्ठा से भर जाता है, वह यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि पढ़ने-लिखने का क्या फायदा क्योंकि जब वह पढ़कर बाहर जाएगा तो उसका नाम भी बेरोजगारों की सूची में शामिल हो जाएगा ।

इस उपन्यास में ऐसे अनेक पात्र हैं जो प्रतिभाशाली होने पर भी नौकरी न मिलने के कारण कुण्ठित और निराश हैं और ऐसी स्थिति में वे अपनी कुण्ठा को मिटाने के लिए चरस, अफीम आदि का सहारा लेने लगते हैं । जहाँ एक ओर कुमारदेव जैसे प्रथम रहने वाले प्रतिभाशाली एम.ए. पास व्यक्ति हैं, जिसका लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित राजकीय जन सेवा अधिकारी के लिए चयन इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि चयन या तो सिफारिश से हुआ था या फिर रिश्वत के बल पर और कुछ पद अनुसूचित जातियों – अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित थे और वह केवल प्रतिभाशाली था । इनके पास न तो सिफारिश थी न रिश्वत और

न ही वह अनुसूचित जाति का था । वहीं दूसरी ओर चन्द्रकान्त जैसे व्यक्ति भी हैं, जिसने अर्थशास्त्र में प्रथम श्रेणी में एम.ए. किया, परन्तु कहीं भी नौकरी न मिल पाने के कारण हताश और कुण्ठित होकर नशे में धुत अपनी प्रेमिका की बाहों में जीवन-सुख तलाशता है । स्पष्ट है कि ऐसे प्रतिभाशाली युवक जब नौकरी नहीं पाते हैं तब वह या तो राजनेताओं की चालों का शिकार हो जाते हैं या फिर नशे में अपना जीवन नरक बना लेते हैं ।

### ➤ मद्य-निषेध की समस्या :

नौकरी न पाने के कारण निराश एवं कुण्ठित वर्ग सुल्फा, गांजा, चरस, अफीम आदि के नशे में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर रहा है । वह इस नशे में ही जीवन की खुशियाँ ढूँढता है । विवेच्य समाज में माला जैसी विलासी युवतियाँ हैं जिन्हें नशे में धुत रहने से ही खुशी मिलती है क्योंकि वह मानती है कि बाहर की दुनिया में निराशा, कुण्ठा, बेकारी उपेक्षा आदि के सिवा कुछ भी नहीं । उनके लिए नशे में रहकर ही गमों से मुक्ति मिलती है ।

यह सही है कि देश के बहुत से युवक-युवतियाँ जीवन से निराश होकर नशे तथा भोग-विलास में पड़कर अपने गम भुलाने की कोशिश करते हैं । सुल्फा, गांजा, अफीम, चरस इत्यादि के प्रयोग से निराश एवं कुण्ठित युवा-वर्ग अपना जीवन स्वयं नष्ट कर रहा है और अपनी ही बर्बादी का कारण बन रहा है । पाश्चात्य विचारकों की विचारधारा के अनुसार – “परमात्मा को मरा हुआ मानकर वे आनन्द की खोज में नीति-अनीति के अलावा किसी तीसरी स्थिति की खोज करने लगे हैं ।”<sup>४८</sup> लेकिन यह भी सही है कि युवा वर्ग को इन विषैली चीजों से बचना चाहिए और जीवन को सुरक्षित धरोहर मानकर देश को समर्पित कर देना चाहिए । इस



उपन्यास में कुछ ऐसे भी पात्र हैं जो पहले तो नशे में धुत रहते हैं पर होश आने पर सोचते हैं कि – “यदि देश का बौद्धिक युवक औरत और नशे की गोलियों में ही धंस कर रह गया तो क्रान्ति क्या खुसरे करेंगे ?”<sup>१९</sup> निसंदेह यह एक भयंकर समस्या है परन्तु यह जीवन की एक अटल सच्चाई है जिसे समाज के किसी भी वर्ग द्वारा नकारा नहीं जा सकता ।

### ➤ सुधारवादी दृष्टिकोण :

आज हमारे समाज में आरक्षण नीति, अस्पृश्यता, जातीय संघर्ष, बेरोजगारी, मद्यपान जैसी अनेक समस्याएँ कोढ़ की भाँति फैल चुकी हैं । ये ऐसी समस्याएँ हैं जो हमारे समाज और उसकी व्यवस्था को अन्दर ही अन्दर जर्जर किए जा रही हैं । परन्तु ऐसा नहीं है कि इन समस्याओं से मुक्त होने या इन्हें सधारने का कोई भी मार्ग नहीं है । अपने मानवतावादी एवं सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण डॉ. सहगल ने कुछ ऐसे उपाय बताएँ हैं जिन्हें हम अपनाकर समाज में फैली इन समस्याओं से मुक्त हो सकते हैं ।

### ➤ युवा पीढ़ी में चेतना का संचार :

डॉ. सहगल ने अपने उपन्यासों में शहरी जीवन के साथ-साथ ग्रामीण जीवन का भी चित्रण किया है । इस उपन्यास में भी ग्रामीण परिवेश का सजीव चित्रण हुआ है । ग्रामीण जीवन की झलक से ही पता चलता है कि गाँवों में किस प्रकार लोग अब भी पुराने संस्कारों से जकड़े, रूढ़ियों व परम्पराओं से बंधे पड़े हैं । किस तरह अब भी गाँवों में लोग निर्धनता भरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं । सरकार ने इनकी निर्धनता समाप्त करने व इन्हें दूसरे मनुष्यों के बराबर दर्जा देने के लिए नीतियाँ भी बनाई हैं ताकि वे उनसे लाभ उठाकर दूसरे लोगों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल सकें । परन्तु राजनेताओं के द्वारा इन नीतियों में प्रवेश करने से इसका लाभ उनको नहीं मिल पाता है । परन्तु आज का युवा वर्ग – चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी, सवर्ण हो या अवर्ण – उन्हें यह समझौता मान्य

नहीं हैं क्योंकि वे इन राजनेताओं की भ्रष्ट चालों को भली-भांति समझते हैं । यही कारण है कि आज युवकों में सबसे ज्यादा रोष आरक्षण की नीति को लेकर फैला है क्योंकि वे चाहते हैं कि “आरक्षण जातिगत नहीं, अभावार्थ होना चाहिए ।”<sup>५०</sup>

गरीबी जातिगत नहीं होती है । वह तो किसी भी जाति में हो सकती है । जहाँ पुरानी-पीढ़ी के लोग यह समझते हैं कि “गरीबी की एक ही जाति होती है – वे शहरी या ग्रामीण नहीं होते । वे मेहनतकश होते हैं और गरीब कहलाते हैं । ऊँची – नीची जाति की दीवारे उनके गिर्द नहीं होती ।”<sup>५१</sup> वहाँ आज की युवा पीढ़ी का कहना है कि “दिन भर में आधा पेट भोजन न मिले, पुस की रातों में ठिठुर कर सूर्य की प्रतीक्षा में रात बितावें, “पण्डित जी पाउं लागी” तक ही उपेक्षित हैं और वे जिनके घर में कल तक चूल्हा भले ही न जलता हो, आज अजीर्ण के मरीज हो रहे हैं, नौकरियाँ, जमीन, साधन उनके कदम चूमती हैं । “गरीबी हटाओ” का नारा उनके चारों ओर घूमता है और धीरे धीरे गरीबी नहीं हटती गरीबी के आधार बदल रहे हैं ।”<sup>५२</sup>

आज का युवक चाहे वह शहरी है या ग्रामीण वह किसी भी प्रकार का भ्रष्टाचार सहन नहीं करता है । आज की युवा – पीढ़ी भ्रष्टाचार एवं शिक्षा पद्धति में सुधार लाने के प्रति जागरूक हो गई है । वे चाहती है कि अध्यापक उन्हें अपने दायित्व से पढ़ाएँ । नौकरी के चयन में सिफारिश, फर्जी सर्टिफिकेट इत्यादि बन्द हो जाने चाहिए ताकि शिक्षित व प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को बेरोजगारी का सामना न करना पड़े । आज का युवा वर्ग यह नहीं सोचता कि इसका क्या परिणाम होगा, उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं कि लोग उनके बारे में क्या सोचेंगे, समाज का उनके प्रति कैसा रवैया होगा, बस जो गलत है, वे उन सब बातों के विरुद्ध हैं ।

➤ **रूढ़िवादी परम्पराओं का विरोध**

रीति-रिवाज परम्पराएं इत्यादि सदा नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी से ही विरासत में मिलती आ रही हैं। प्रत्येक नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से अधिक प्रगतिशील दृष्टिकोण रखती है, जिस कारण वह पुराने रीति-रिवाजों, परम्पराओं का त्याग करके नई विचारधारा से सोचती हैं। आज का युवा वर्ग, नई चेतना पुरानी रूढ़ियों को नकारता है और जाति-पाति के झुठे बन्धनों से मुक्त होना चाहता है। आज की युवा पीढ़ी परिवार, समाज तथा वर्ग का विद्रोह करती है, क्योंकि रूढ़िवादी मान्यताओं में वह जकड़े नहीं रहना चाहती। वह समाज की इस पूरी व्यवस्था को ही बदल देना चाहती है।

आज का युवा-वर्ग जाति, ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, सवर्ण-अवर्ण, गरीब-अमीर की बात बिलकुल नहीं स्वीकार करता है। उसकी मान्यता है कि “मनुष्य पहले मनुष्य होता है फिर उसमें जाति, वर्ण तथा ऊँच-नीच की स्थापना होती है।”<sup>५३</sup> यही कारण है कि समाज में फैल रहे जातीय बन्धन तथा रूढ़ियों के विरोध में, हेडमास्टर साहिब, मित्रवर तथा अनेक साथियों की मौजूदगी में सुधेश अनुसूचित जाति की रानी से कोर्ट में विवाह कर लेता है। सामाजिक बेड़ियों में जकड़े बी.डी.ओ. साहिब अथवा चौधरी साहिब के गले सुधेश और रानी का अन्तर्जातीय विवाह भले ही न उतरे किन्तु आज का युवा आदर्शवादी एवं रूढ़िवादी बन्धनों को तोड़ने के लिए सोचता है कि “नई पीढ़ी को टीके-दहेज को नहीं, जीवन के सही मूल्यों को ब्याहना है। लड़की तो लड़की है ..... कोरी, ब्राह्मण तो उसे हम बनाते हैं। नौजवानों में इसी जाग्रति की अपेक्षा है और आज का युवक इसी दिशा की ओर प्रकाश ग्रहण कर रहा है।”<sup>५४</sup>

### ➤ अन्तर्जातीय विवाहो का समर्थन :

आज का युवा वर्ग जब कुछ करने की ठान लेता है तो यह नहीं सोचते कि इसका परिणाम क्या होगा, उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं कि लोग उनके बारे में क्या सोचेंगे, समाज का उनके प्रति कैसा रवैया होगा, बस जो गलत है, वे उन सबके विरोधी हैं। आज की युवा पीढ़ी प्रबुद्ध एवं संवेदनशील होने के कारण पुरानी रीति-रिवाजों का खण्डन करके नए ढंग से सोचती – विचारती है और उनके द्वारा किए गए कार्यों को पुरानी पीढ़ी अनुचित ठहराती है। फिर भी पुरानी पीढ़ी को कभी अनिच्छा से तो कभी परिस्थितिवश नई पीढ़ी की बात माननी ही पड़ती है। इस उपन्यास में लेखक ने सुधेश एवं रानी के प्रेम तथा विवाह का प्रसंग बनाकर न केवल दो व्यक्तियों के बीच भावात्मक रिश्ते की बात उठायी है वरन् जाति पांति के बन्धनों को असत्य मानकर सवर्ण और अवर्ण के बीच सम्बन्ध भी जोड़ा है। परन्तु युवा पीढ़ी द्वारा उठाए गए कदम को पुरानी पीढ़ी कहीं अनिच्छा से तथा परिस्थिति के कारण पूरे मन से स्वीकार कर लेती है। गाँव के लोगों द्वारा विरोध करने और अपमानित होने के बावजूद सुधेश अपने कदम पीछे नहीं हटाता। बल्कि साहस, दृढ़ निश्चय एवं प्रेम के बल पर वह अपनी पत्नी रानी को पा लेता है। इस प्रकार सरला तथा चतुर्भुज का विवाह भी न केवल एक अन्तर्जातीय विवाह है अपितु बलात्कार से पीड़ित, अनजाने लोगों द्वारा पाली गयी और सुशिक्षित प्रगतिशील लड़के का विवाह है। आजकल के युवा वर्ग का यह दृष्टिकोण सही है।

### ➤ साम्प्रदायिक एकता :

विवेच्य उपन्यास के द्वारा उपन्यासकार ने साम्प्रदायिक एकता की भावना को जगाने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में हिन्दु – मुसलमान

– सिख धर्मों के बीच एकता देखने को मिलती हैं । एक ओर तो मौलवी साहब जैसे लोग हैं जो अपनी संकुचित बुद्धि के कारण मुस्लिम असगरी को हिन्दु चाँद प्रकाश से विवाह नहीं करने देते । उस पर अनेक तरह से साम्प्रदायिक प्रभाव डाला जाता है तथा मुस्लिम लड़के से विवाह करने पर विवश किया गया है । मुसलमान खातून काफिर के घर जाए, यह मौलवी साहब को कभी गवारा न था । वे शायद भूल रहे हैं कि “मज़हबों – जातियों के घेरे प्रेम ने कभी नहीं माने । मौलवी की संकुचित बुद्धि असगरी के दिल की गहराईयों को नहीं पहचान सकती । मज़हब का काला चश्मा इन्सानियत की सफेद चादर को भी काला ही देखता है और मज़हब के ठेकेदार अपने चश्मों से बेखबर होते हैं ।”<sup>५५</sup>

दूसरी ओर ऐसे भी लोग हैं जो साम्प्रदायिकता तथा मज़हब की दीवारों को तोड़कर केवल इन्सानियत को महत्त्व देते हैं । तभी तो सिख दम्पति हिन्दु सरला को अपनी बेटी की तरह पालते हैं तथा ब्राह्मण चतुर्भुज से पूछा कि उसे सिख पद्धति से विवाह में कोई आपत्ति तो नहीं तो वह बोला – “इन्सान का मज़हब इन्सानियत है, बाकी तो परमात्मा की पूजा करने की विधियाँ हैं । विवाह में भी परमात्मा का आशीर्वाद प्राप्त करना होता है, किसी भी विधि से प्राप्त कर लो । गुरुओं की दी परमादरणीय विधि से विवाह रचाने में आपत्ति कैसी ? मेरा तो इसमें गौरव है ।”<sup>५६</sup>

इससे पता चलता है कि आज की युवा पीढ़ी साम्प्रदायिकता की संकीर्णता से परे हैं । वह इस घेरे में बंधकर नहीं रहना चाहती ।

### ➤ निष्कर्ष :

उपन्यासकार मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यास “एक और रक्तबीज” में समाज में स्थित युवा वर्ग की समस्याओं को विव्रित किया है । आज के समाज की व्यवस्था पुरानी सामाजिक व्यवस्था से भिन्न है ।

आज का युवा जागरूक हो चुका है। वह समाज में फैली पुरानी रूढ़िवादी परम्पराओं और मान्यताओं को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता है। वह समाज की इन रूढ़ियों को खत्म तो करना ही चाहता है साथ ही इसकी पूरी की पूरी व्यवस्था को ही बदल देना चाहता है।

इस प्रकार यहाँ डॉ. सहगल की आलोचनात्मक प्रतिभा उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा में मंजुल सहभार स्थापित करती है। अपने अध्ययन का उपयोग वे अपने कथा नायक की प्रतिभा सँवारने के लिए करते हैं। ऐतिहासिकता (या पौराणिक पृष्ठभूमि) का आधार डॉ. सहगल ने अपने उपन्यास “मानव छला गया” तथा “गुरु लाधा रे” में भी किया था किन्तु वहाँ वह कथारस का इतना सुन्दर निर्वाह नहीं कर पाये थे जितना “अन्ना पासवान” में इस दृष्टि से न केवल अपने उपन्यासों में अपितु हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में “अन्ना पासवान” का विशिष्ट महत्त्व है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अपनी इस लम्बी औपन्यासिककला-यात्रा में डॉ. सहगल निरन्तर सामाजिक सरोकारों से तो गंभीरतर रूप में जुड़ते ही चले गये हैं, उनकी उपन्यासकला में भी निरन्तर निखार आता चला गया है। किसी भी जीवन्त और सचेत रचना-कर्म के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि होती है कि वह अपनी ही बनाई लीकों को छोड़ता हुआ नई लीकें स्थापित करता चले। उनके उपन्यास इसी प्रकार नयी लीके स्थापित कर रहे हैं।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची :**

- (१) स्वातंत्र्योत्तर महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में विभिन्न रूप -  
नीहार गीते पृष्ठ -१६
- (२) “युगे - युगे क्रान्ति, विष्णुप्रभाकर पृ.३३
- (३) टूटते परिवेश - आमु से : विष्णुप्रभाकर
- (४) कल्पना (नवलेखन विशेषांक :२) डॉ.बच्चनसिंह, पृ.३
- (५) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक :विचार तत्त्व, डॉ. अवधेशचन्द्र गुप्त, पृ.  
८६
- (६) भारत में जाति भेद, डॉ. क्षितिमोहन सेन, पृ. १४१
- (७) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना, डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृ.  
१८९
- (८) बावजूद इसके, चित्र मुदगल, सारिका, जून-१, पृ.१९७९
- (९) साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में नारी के विभिन्न रूप, डॉ. विमला  
शर्मा, पृ. ४९
- (१०) स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक :विचार तत्त्व, डॉ. अवधेशचन्द्र गुप्त, पृ.  
८८
- (११) निर्बन्ध - दीप्ति खण्डेलवाल, सारिका, सितम्बर, १९७५
- (१२) “खजुराहो का शिल्पी”, शंकरशेष रचनवली, खण्ड - तीन, सं. डॉ.  
विनय, प्र. वर्ष-१९९०, पृ.७२
- (१३) “खजुराहो का शिल्पी”, शंकरशेष रचनवली, खण्ड - तीन, सं. डॉ.  
विनय, प्र. वर्ष-१९९०, पृ.१०२
- (१४) “कोमल गान्धार”, शंकरशेष रचनवली, खण्ड - दो, सं. डॉ. विनय,  
प्र. वर्ष-१९९०, पृ.४४४
- (१५) “कोमल गान्धार”, शंकरशेष रचनवली, खण्ड - दो, सं. डॉ. विनय,  
प्र. वर्ष-१९९०, पृ.४४०

- (१६) “जिन्दगी और आदमी, डॉ.मनमोहन सहगल, पृ.१८९-९०
- (१७) वही, डॉ. मनमोहन सहगल, पृ.१९०
- (१८) बदलती करवटें, डॉ. मनमोहन सहगल, पृ.७५
- (१९) कश्मीर की कसक, डॉ. मनमोहन सहगल, “आक्रमण”
- (२०) कश्मीर की कसक, डॉ. मनमोहन सहगल, “आक्रमण”, पृ. ६
- (२१) बदलती करवटें – मनमोहन सहगल, पृ. १६
- (२२) बदलती करवटें – मनमोहन सहगल, पृ. २०
- (२३) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ११८
- (२४) मानवतावादी उपन्यासकार, पृ. ७६
- (२५) पंजाब सौरभ, पृ. १७३
- (२६) बदलती करवटें – मनमोहन सहगल, पृ. ६
- (२७) पंजाब सौरभ, पृ. ८८-८९
- (२८) बदलती करवटें – मनमोहन सहगल, पृ. १०
- (२९) बदलती करवटें – मनमोहन सहगल, पृ. २२
- (३०) पंजाब सौरभ, पृ. १७३
- (३१) बदलती करवटें – मनमोहन सहगल, पृ. ५०
- (३२) बदलती करवटें – मनमोहन सहगल, पृ. १२४
- (३३) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १६
- (३४) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ६२
- (३५) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १३६
- (३६) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १०२
- (३७) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १२७
- (३८) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १२
- (३९) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १७
- (४०) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १०१, १०५



- (४१) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १०४  
 (४२) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १०७  
 (४३) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १३  
 (४४) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १३  
 (४५) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ३५  
 (४६) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ३४-३५  
 (४७) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ३२  
 (४८) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ४६  
 (४९) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ५२  
 (५०) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १०४  
 (५१) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १३८  
 (५२) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ६७-६८  
 (५३) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १०८  
 (५४) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १२७  
 (५५) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. ७३  
 (५६) एक और रक्तबीज – मनमोहन सहगल, पृ. १५६



चतुर्थ अध्याय  
डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में  
आर्थिक परिवेश

- ❖ अर्थ की प्रधानता
- ❖ अर्थ, अभाव और अस्मिता
- ❖ पूँजीवादी वर्ग और श्रीमिक वर्ग
- ❖ श्रेष्ठ सर्जक
- ❖ सामाजिक पक्ष
- ❖ सामाजिक सम्बन्ध
- ❖ सामाजिक समस्याएँ
- ❖ मध्यवर्गीय जीवन
- ❖ जातिवाद
- ❖ आर्थिक पक्ष
- आर्थिक असमानता
- आर्थिक अभाव

- आर्थिक शोषण

- राजनीतिक पक्ष
- पुलिस शासन-बर्बरता का नग्न नृत्य
- युद्धों की विभीषिका
- घर से बेघर होने की यंत्रणा
- साम्प्रदायिकता बनाम राजनीति-धार्मिक संकीर्णता
- सांस्कृतिक / धार्मिक पक्ष
- धार्मिक परिवेश
- धर्माडम्बरों तथा बाह्याचरणों का विरोध
- साम्प्रदायिक एकता
- धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता
- परम्परागत रूढ़ियों का विरोध

आधुनिक संवेदना

गांधीवादी उदार दृष्टिकोण

डॉ. सहगल का दृष्टिकोण

- उपन्यासों के मूलकथ्य एवं लेखकीय अनुभूति
- निष्कर्ष

## चतुर्थ अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में आर्थिक परिवेश

आधुनिक युग में समाज को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाला पहलू अर्थ है, क्योंकि अर्थ ही वह साधन है, जिसके बल पर मानव अपने को सुखी रखता है। आर्थिक अभाव में व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र की प्रगति क्षीण हो जाती है। अंग्रेजी शासन से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था सम्पन्न एवं अन्य देशों की तुलना में काफी उन्नत थी। परन्तु अंग्रेजी शासन के शोषण एवं दोषपूर्ण नीतियों से स्वतन्त्रता प्राप्ति तक भारतीय अर्थ-व्यवस्था अत्यधिक बिगड़ चुकी थी। एक अंग्रेजने बड़े स्पष्ट रूप में भारतीय सम्पत्ति के इंग्लैण्ड जाने की बात कही है – “हमारी पद्धति एक स्पंज की भाँति है, जो गंगा तट की सब अच्छी चीजों को चूसकर टैक्स तट पर ला निचोड़ती है।” भारत जो सोने की चिड़िया कहलाता था, जहाँ घी-दूध की नदियाँ बहती थीं स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय वह अन्धविश्वास, गरीबी, अशिक्षा और शोषण के शिकंजे में फंसा हुआ था। इस समय लघु उद्योग-धन्धे पूर्णतः समाप्त हो गये थे। जमींदारी प्रथा अपनी चरम सीमा पर थी। मासूम जनता बेरोजगारी, निर्धनता और शोषण से पीड़ित थी। ऐसी स्थिति में व्यक्ति-चेतना का कुण्ठित हो विद्रोह कर उठना अस्वाभाविक न था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगीकरण और नगरीयकरण की प्रवृत्तियों की गति तीव्र होती गई। प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक रूप से सम्पन्न हो सके इसलिए अनेक आर्थिक रूप से सम्पन्न हो सके इसलिए अनेक आर्थिक क्रांतियों का जन्म हुआ। क्राषि और गाँव के महत्त्व को समझते हुए प्रथम प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि “शहरी आबादी के लिए

तरक्की के सारे साधन मुहैया करने वाले गाँव खुद बात बात में शहरों का मुँह देखें, यह मौजूँ बात नहीं है । उन्हें हाथ पसारना नहीं, बल्कि पसरे हाथों को भरना है । समाजवादी विचारों के प्रभाव स्वरूप देश में आर्थिक चेतना जागृत हुई । आर्थिक विकास की मात्रा ऊँची लाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यक्रम गढ़ा गया तथा दोषपूर्ण स्थितियों के संशोधन की शुरूआत हुई । “उद्योग धन्धों के पुनर्गठन के लिए पं. नेहरु की अध्यक्षता में १५ मार्च १९५० को योजना आयोग का गठन किया गया ।....योजनाएँ बनती रही और गरीबी का औसत बढ़ता रहा । सन् १९८०-८१ में देश की ५१.१ प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे आ चुकी थी । गरीबी निवारण के अथक प्रयासों के बावजूद आज (१९८५ ई. तक) देश में ३८ प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे का जीवन व्यतीत कर रही है ।” हालांकि इन योजनाओं के कारण कृषि, उद्योग, सिंचाई, बिजली, शिक्षा, परिवहन, यातायात के साधन, आवास, स्वास्थ्य आदि का विकास जरूर हुआ । स्वतन्त्रता से पूर्व साधारण व्यक्ति का आर्थिक अभिगम अत्यन्त संकुचित था । मतलब वह अपनी अमीरी-गरीबी को लेकर उपस्थित कठिनाइयों के लिए भाग्य को दोषी ठहराता है । एक ओर देश को पाकिस्तान से आए विस्थापितों के पुनर्वसन की योजना बनाना अनिवार्य हो गया था तो दूसरी ओर अंग्रेजी दासता से मुक्ति पाकर अपने ही बलबूते पर स्थिर रहकर तमाम आर्थिक आभावों को दूर करना था । अर्थविदों की यह मान्यता थी कि अंग्रेजी शासन के समाप्त हो जाने पर हमारी समस्त आर्थिक समस्याएँ एकदम समाप्त हो जाएंगी पर स्वतन्त्रता पश्चात् गौर किया गया कि वह वस्तुतः हमारा भ्रम था । हमें देश के आर्थिक सुधार के लिए प्रचुर प्रयास करने होंगे । स्वतन्त्रता के बाद कांग्रेस ने अपनी आर्थिक नीतियों के निर्धारण में समाजवादी समाज की स्थापना का उद्देश्य रखा था । इस सम्बन्ध में पण्डित नेहरुने कहा था कि हमारी अनिवार्य समस्याएँ

हैं । आर्थिक विकास और रहन सहन का उच्च स्तर । इसके लिए समाजवादी समाज की स्थापना के अतिरिक्त कोई अन्य हल नहीं है ।

जमींदारी प्रथा की बोलबाला समाप्त करने के लिए किसानों, मजदूरों में जागृति आई । किसानों, मजदूरों की उग्रता और असंतोष को देखते हुए सरकार ने जमींदारी प्रथा के उन्मूलन अधिनियम तथा “भूमिसुधार” कानून पारित किए, शहरी मजदूरों “फैक्टरी एक्ट” पारित हो जाने से लाभ के साथ साथ सुविधाएँ भी मिली । तथा उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागृति आई ।

भारत में मशीनीकरण इतनी तीव्रता एवं प्रभावी रूप से हुआ कि वर्तमान लघु उद्योग की नींव हिल गयी । इस क्रांतिने घरेलू धन्धों के स्थान पर फैक्टरी सीस्टम को जन्म दिया । मानव की जगह मशीनों ने हड़प ली । पूँजीपतियों का बर्चस्व बढ़ने लगा । विदेशों से लोग पूजी लगाने भारत में सादर आमंत्रित किए जाने लगे । पंचवर्षीय योजनाओं कार्यान्वित रखने और विकास का मार्ग प्रशस्त करने के लिए भारत को सम्पन्न देशों से कर्ज लेना पड़ा ।

भारत की इस आर्थिक विषमता को स्वीकार करते हुए अपने अन्तिम समय में पण्डित नेहरुने कहा था कि “उत्पादन के क्षेत्र में अधिक लाभ उन्हे मिला है जो पहले से उद्योग में स्थिर थे । जिसके परिणाम स्वरूप कुछ परिवार अधिक सम्पन्न हो गये और एकाधिकार की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला ।”<sup>4</sup> कर्जदाताओं के जरिए कर्ज तो मिल जाता पर हमेशा संकट के समय उनका मुँह ताकने में हीनता का एहसास भी होने लगा ।

हीनताबोध से भरा मस्तिष्क संकल्प सिद्धि करने में शिथिलता को महसूस करने लगा । वस्तुतः स्वतंत्रता के बाद का जो आर्थिक परिवेश रहा है वह शर्मनाक भिक्षाकाल का समय रहा है । कर्ज और कर्जदाता सहायता

और भिखारी के साथ-साथ जब यह आधुनिकीकरण बनाम विकास का रूप जो मिला है तो सारे देशमें एक प्रकार की हीन भावना विकसित हो गयी ।

इस हीन-भावना और अपराजेय विवशता की स्थिति में देश का मनोबल संकल्प शक्ति और उसका आत्मबल भी बिकसित हुआ ।

सन् १९६२ में हुए चीनी आक्रमण, सन् १९६५ में हुए पाकिस्तानी आक्रमण ने भारत की आर्थिक व्यवस्था को नीव से गड़बड़ाने का काम किया । इससे विकास की योजनाओं में बहुत बड़ा विक्षेप पैदा हुआ । नेहरू जी जैसे प्रखर राजनीतिज्ञ होते हुए भी उनसे सम्मिलित नेता वर्गने क्षुद्र मनोवृत्ति का रंग दिखाना शुरू किया । नेता वर्ग विलासप्रियता, सुखकारिता, घटिया, प्रवृत्ति भ्रष्टाचार और अमानुषिक अत्याचार को देखकर गरीब जनता हतप्रभ तो हुई ही साथ ही निःसहाय, लाचार एवं विषादग्रस्त बनती गई है । “समस्त पुरातन मूल्यों और विश्वासों के प्रति शंका उठने लगी । प्राचीन विधिविधान और आचार विचार लड़खड़ाने लगे । सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थाएँ तीव्रगति से चूर चूर होने लगी । भारतवर्ष पूर्णतया परिवर्तन की भँवर में पड़ गया ।”

बेरोजगारी की समस्या से निपटने हेतु सरकार द्वारा जो कदम उठाये गये इनसे यथेष्ट परिणाम नहीं मिल सके । मध्यम वर्ग और निम्न मध्यमवर्ग की स्थिति में खास संतोष जनक बदलाव नहीं आ पाया था । आर्थिक दशा में यदि सुधार होता भी था तो निरंकुश बढ़ती आबादी उसका भक्षण कर जाती थी । सन् १९७५ में प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने बीस सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा की । इसका हेतु आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारना था ।

संक्षेप में हमने विभिन्न योजनाओं, क्रांतियों और आन्दोलनादि अभियानों से जैसे-तैसे आत्मनिर्भरता एवं सम्पन्नता तो प्राप्त की परन्तु

बढ़ती मँहगाई, बेकारी और भ्रष्ट नैतिकता के फलस्वरूप हमारा आर्थिक विकास धुन्धला हो गया ।

### ❖ अर्थ की प्रधानता :

मानव के जीवन में अर्थ की प्रधानता चतुर्दिक देखा जाता है, क्यों कि अर्थ के बिना मानव जीवन गति नहीं पा सकता । जीवन के किसी भी क्षेत्र में कुछ भी करने के लिए अर्थ अत्यावश्यक मूल्य बन गया है । यही नहीं जीवन जीने के लिए भी अर्थ की ही आवश्यकता है । प्रवर्तमान समय में अर्थ के बढ़ते आकर्षण ने वर्गीय व्यवस्था को जन्म दिया है । प्राचीन वर्ण-व्यवस्था का स्थान आज वर्ग-व्यवस्था ने ग्रहण कर लिया है । और तो और पर मानव किसी भी तरीके को अपनाकर अर्थ संचयन में जुटा हुआ है । इसके लिए कोई भी उचितानुचित कार्य एवं किसी भी खतरे को मोल लेने को भी तैयार है । कार्ल मार्क्स ने इसी को मानव जीवन का विधायक तथा समस्त सामाजिक, राजनैतिक सम्बन्धों का निर्धारक माना है । मानव को यह सोचने के लिए विवश बना है कि अर्थ के बिना उसका कोई ठौर ठिकाना नहीं, अस्तित्व नहीं । वैसे तो अर्थ की महत्ता हर युगमें रही है, लेकिन वर्तमान युगको आर्थिक युग की संज्ञा से विभूषित किया जाए तो कोई आपत्ति नहीं होगी ।

सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र भी अर्थ व्यवस्था के प्रभाव से अछूते नहीं रहे । आज के दौर में अर्थ का इतना महत्त्व है कि वह हमारे सामाजिक सम्बन्धों, यहाँ तक कि संवेगों को भी प्रभावित करता है – “हमारे सामाजिक सम्बन्ध ही नहीं, हमारी सूक्ष्म और कोमल भावनाएँ भी बदल गयी हैं । चुपके से उन सबका आर्थिकीकरण हो गया है । प्रेम, दया, सहानुभूति, सम्मान, देशभक्ति और प्रार्थना तक में अर्थ तंत्र घुस गया है । धन तो बाद की चीज थी, पहले तन और मन दिया जाता था । लेकिन



अब हम तन-मन की जगह धन देते हैं प्रेम करेंगे तो उपहार देंगे, दया करेंगे तो पैसा फेकेगें, सहानुभूति जतानी होगी तो आर्थिक सहायता देंगे, सम्मान देना पाना होगा तो पैसा खर्च करेंगे, देशभक्ति दिखाने के लिए हथियार लेकर लड़ने नहीं जायेंगे, अपनी जगह अपना काम सही ढंग से नहीं करेंगे, रिश्वत या चोर बाज़ारी से कमाया हुआ रूपया डिफेन्स में दे देंगे ।

### ❖ पूँजीवादी वर्ग और श्रमिक वर्ग :

भारत वर्ष का समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त है – पूँजीवादी वर्ग और श्रमिक वर्ग । पूँजीवादी वर्ग के पास आवश्यकता से अधिक पैसा, भोग विलास के प्रचुर साधन हैं, श्रमिक वर्ग, आर्थिक स्थिति से दैनीय स्थिति में है । वह अपनी जरूरी आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर पाता । आज का सामान्य जन घोर आर्थिक विपन्नता में जी रहा है । भारतीय शासनाध्यक्षों का नारा समाजवादी होकर भी कर्म पूँजीवादी है । जगदीश नारायण श्रीवास्तव का मत है कि – “हमारे समाज का अर्ध-सामंती संस्कार और पूँजीवादी रवैया पूरी चालाकी से लगा हुआ है कि वर्तमान स्थिति शीलता के विरुद्ध जो भी प्रामाणिक आन्दोलन चले, भीतर ही भीतर उनके मूल मुद्दों में तरतीम करके कुछ ऐसी स्थिति पैदा की जाय कि वह व्यवस्था के लिए खतरनाक होने के बजाय उसके पोषक तत्वों में बदल जाय ।

स्पष्ट है कि आज का युग अर्थ युग है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसका महत्त्व है । यहाँ तक कि सम्बन्धों में नियामक के रूप में अर्थ की अपनी महत्ता है । अर्थ के इस महत्त्व के कारण सम्बन्धों में मानवीय तत्त्व गायब होने लगा है । इसके बावजूद अर्थाभाव की उपस्थिति में भी व्यक्ति द्वारा अपनी अस्मिता रक्षा के उदाहरण मिलते हैं ।

### ❖ अर्थ, अभाव और अस्मिता :

जीवन की बहुत कुछ समस्याएँ अर्थ केन्द्रित है साथ ही धन-संचय करना मानव की स्वाभाविक वृत्ति तथा कामजोरी भी है । मानव को जीवनयापन तथा उत्थान के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है । साधारणतया अर्थ की सम्पन्नता मानव को भोग-विलास तथा व्यसनादि की और अर्थाभाव के कारण मानव को पग-पग पर घुटने टेकने पड़ते हैं । किन्तु डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों के कुछेक ऐसे विरल पात्र हैं जो आर्थिक विपन्नता की स्थिति में भी अविचल रहते हुए निजी अस्मिता, स्वाभिमान और उच्चादर्शों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । इसमें नारी चरित्र भी पीछे नहीं रहे हैं । नारी स्वाभिमान के ऐसे उदाहरण इस आपाधापी और हेरा-फेरी के अर्थप्रधान युग में भले ही बहुत ही कम हैं, लेकिन जो है । उनके स्वाभिमान को कितनी ही बड़ी आर्थिक चोट खण्डित नहीं कर सकी, भले ही नौकरी तक छीन लेने की नौबत क्यों न आ जाए ।

मनमोहन सहगल के उपन्यास “एक और रक्तबीज” की समस्या एक केन्द्रीय समस्या - आरक्षण नीति की पड़ताल और असका विरोध । उपन्यास शुरू ही होता है छात्र आन्दोलन से और अनुसूचित वर्गों के लिए चली आ रही आरक्षण की सरकारी नीति के विरोध में । उनकी मुख्य माँग है कि शिक्षण संस्थाओं से आरक्षण हटा लिया जाए ।

इस मुख्य समस्या के साथ-साथ अन्य समस्याएँ भी इससे जुड़ती गयी हैं जैसे साम्प्रदायिकता और जातिवाद की समस्याएँ । आरक्षण की समस्या एक पेचीदा समस्या है । आरक्षण प्रदान किये जाने के पीछे यह विचार कार्य करता रहा कि पिछड़ी जातियों के लोगों के प्रति हिन्दुओं की घृणा से उन्हें बचाया जाए । एक हद तक इसमें सफलता भी मिली, पर सरकारी नीतियों के साँचें बन्द होते जाने से और उनमें अन्तर्विरोधों के उभर आने की वजह से यह समस्या सुलझने की बजाय अधिक उलझ

गयी । जन सामान्य इस तक का कायल होने लगा कि आरक्षण आर्थिक रूप से पिछड़े लोगो को मिलना चाहिए और वह भी केवल नियुक्ति में, अन्नति में नहीं । लेखक ने आरक्षण की समस्या को किसी एक पात्र की मानसिकता के प्रतिफलन के तौर पर विवेचन नहीं किया है बल्कि उसने कई पात्रों की मानसिकताओ को आधार बनाकर इस समस्या को विभिन्न कोणों से विभिन्न धरातलों पर समझने और चित्रित करने का प्रयास किया है ।

उपन्यासकार ने अपनी प्रगतिशील जीवन दृष्टि और पैने इतिहास बोध के सहारे “बदलती करवटे” उपन्यास की रचना की । यह बोध उस काल के इतिहास का है जिसे पाकिस्तान कहा जाता है । डॉ. सहगल ने बहुत सावधानी से पंजाब की आत्मा स्वरूप पहचान “बदलती करवटे” उपन्यास में प्रस्तुत की है । यह पहचान राजनैतिक प्रपंचो के माध्यम से जन्म लेती साम्प्रदायिक टकराहट के मध्य धीरे धीरे उभरती है और एक गहरी चुभी हुई सुई की तरह मानव मन में रह रहकर कसक जाती है । अनेक प्रश्न उभरने लगते हैं और उन्हो में कहीं सबसे बड़ा प्रश्न खोया-सा दिखाई देता है कि आखिर पंजाब का बार-बार विभाजन क्यों ? क्या यह किसी संस्कृति की माँग है या इसके पीछे कोई राजनैतिक प्रपंच है ?

उपन्यास के आरम्भ में ही लेखक ने यह प्रश्न उठाया है कि जब स्वाधीनता आई और संधीय भारत राष्ट्र का राज्यों में पुनर्गठन हुआ तब वह भाषायी दृष्टि क्यों नहीं अपनाई गई, जो बाद में बृहतर महाराष्ट्र और पंजाब के लिए लागु की गई ? वह बहुत स्पष्ट शब्दों में राजनेताओ के सता - स्वार्थ को इसके लिए दोषी ठहराना है । कथा में वह उन तत्त्वों की तलाश और पहचान जारी रखता है जो हिन्दु - सिख एकता के प्रमाण है ।

डॉ. सहगल ने पंजाबी संस्कृति की बदलती करवटे बहुत गहराई से समझी हैं और इस महत्वपूर्ण भारतीय संस्कृति को आँसू भरी आँखों से

घायल दिल लेकर विखण्डित होते हुए आज से सत्रह वर्ष पूर्व देखा और दिखाया है। वह बार-बार बल देकर कहता है कि पंजाब के हिन्दु और सिख एक हैं, उनमें पूजा-पाठ, रहन-सहन, खान-पान, वैवाहिक सम्बन्धादि में मूलभूत एकता और समता है। उन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। एक हाथ की पाँच अंगुलियों का एक ही शरीर से सम्बन्ध है, उनका एक ही कार्य है, उनकी एक ही जीवन दिशा है। किसी एक अंगुली को शेष हाथ से काट देने का अर्थ होगा पूरे हाथ के स्वरूप का विकृति, उसकी सांस्कृतिक पहचान का विनाश। लेकिन यह विनाश – लीला राजनीतिज्ञों ने की और बहुत क्रूरता से की आज से सत्रह-अठारह वर्ष पूर्व की।

कर्मचन्द को माध्यम बनाकर उपन्यासकार ने पाकिस्तान-विभाजन के समय की सारी स्थितियों, परिस्थितियों और घटनाओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है। धर्म और भाषा के आधार पर अंग्रेजों द्वारा बोये गए बीजों के परिणाम – स्वरूप भारत-पाक विभाजन होता है। कर्मचन्द तथा महिन्द्र कौर जैसे अनेक हिन्दु-सिख युगल अपने वैवाहिक सम्बन्धों तक के लिए तरस गये। लेखक ने अतीव पीड़ा के साथ कर्मचन्द और महिन्द्र कौर की करुणा-भरी प्रेम कथा इस उपन्यास में लिखी है और दिखाया है कि राजनीति का विभाजन मानव-नियति के लिए कितना क्रूर हो सकता है।

कर्मचन्द पर्दे के पीछे से अपनी आँखों से अपने पिता, छोटे भाई, बहन का कत्ल और गर्भवती माँ के पेट पर मुसलमानों द्वारा चोट करते हुए देखता है। बाद में माँ और बेटा रात के अन्धेरों में बचकर निकल भागने में सफल हो जाते हैं। अमृतसर होता हुआ कर्मचन्द माँ तथा रानी बहन के साथ हिसार में बस जाता है। माँ की नाक में बची रह गयी हीरे की तीली बेचकर कर्मचन्द “रानी जनरल स्टोर” नाम से एक छोटी सी

दुकान खोल लेता है। दुकान खोलने की रस्म और दूसरे सभी कार्य गुरु ग्रंथ साहिब के अनुसार सम्पन्न होते हैं। महिन्दर की माँ सिख धर्म से होते हुए भी हनुमान को मानती है और मंगलवार को प्रसाद चढ़ाती है। फिर भी दोनों के प्रेम के रास्ते में कर्मचन्द का पंजाबी खत्रीपन और महिन्दर का सिख धर्म आड़े आता है।

एक अर्से से राजनीति इस अप-महाद्वीप पर एक बड़ी सीमा तक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थितियों पर हावी रहे हैं। देश के आजाद होने के बाद प्रायः हर समस्या का राजनीतिकरण हुआ है या फिर समस्या ही राजनीतिक कारणों से पैदा हुई है। साहित्य पर भी राजनीति और व्यवस्था इस हावी रही कि व्यवस्था – विरोधी उपन्यास कम मात्रा में ही प्रकाशित हुए। जनता कभी वोट देकर भीड़ बनी थी पर अब वह भीड़ बने रहना नहीं चाहती थी। वह सम्प्रदाय, भाषा तथा धर्म की आड़ में साम्प्रदायिक शक्तियाँ पहचानने लगी थी। वह अब इतिहास से भी कुल सीखना चाहती थी।

इस प्रकार “बदलती करवटे” उपन्यास पंजाब की जीती-जागती उन समस्याओं पर आज से सत्रह वर्ष पहले लिखा गया एक सामाजिक, ऐतिहासिक दस्तावेज है, जो आज भी हमारे राष्ट्रीय जीवन का पीछा कर रही है, किन्तु हमारे नेताओं के सोचने के ढंग में तनिक भी परिवर्तन नहीं आया है। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम डॉ. सहगल के उपन्यास की उस कथा-दृष्टि को गहराई से समझकर सांस्कृतिक आधार पर राजनीति का निर्णय करें, जिस दृष्टि से पंजाब की पंजाबियत में छिपी जनात्मा के विशुद्ध भाव से दर्शन किये गये हैं।

❖ श्रेष्ठ सर्जक :

डॉ. सहगल श्रेष्ठ उपन्यास सर्जक हैं । गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों दृष्टियों से उनका उपन्यासकार हिन्दी में एक विशेष स्थान का अधिकारी है । डॉ. सहगल के उपन्यासों का तानाबाना समाज तथा उसकी व्यवस्था की सम्पूर्ण सम्भावनाओं को पर्त-दर-पर्त उघाड़ता, पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है । समाज की व्यवस्था, उसकी प्रक्रिया इतिहास से लेकर समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक पक्षों को छूती है । उनके उपन्यासों में व्याप्त दृष्टि की समग्रता को समाज के विभिन्न धरातलों पर समझा जा सकता है ।

#### ❖ सामाजिक पक्ष :

समाज के अन्तर्गत व्यक्ति, परिवार, आर्थिक एवं राजनीतिक, संस्थाएँ, असंख्य समूह, ग्राम, नगर आदि का समावेश होता है । इन इकाइयों में पाये जाने वाले प्रयासात्मक सम्बन्धों के आधार पर ही समाज का निर्माण होता है । इसके अध्ययन से ही सामाजिक जीवन में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है तथा सामाजिक नियन्त्रण और सामाजिक ढाँचे का परिक्षण भी मनुष्यों से समाज का निर्माण होता है और समाज से मनुष्यों का । परन्तु कभी कभी ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो जाती हैं कि समाज और व्यक्ति में विरोध की अनुभूति शुरू हो जाती है । व्यक्ति की अपनी सहज इच्छाएँ, संवेदना एवं अनुभूति है, दूसरी तरफ समाज व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत सोच के अनुसार छूट देगा तो समाज बिखर जायेगा, इसलिए मर्यादाओं, नैतिकताओं, नीतियों, मूल्य निर्धारण के मापदण्डों को आधार बनाकर चलता है और यहीं पर आकर कभी-कभी व्यक्ति और समाज एक दूसरे से कटने लगते हैं । व्यक्ति चाहकर भी समाज के नियमों की परिधि में बंधना नहीं चाहता और समाज सब कुछ समझते हुए भी व्यक्ति को उच्छृंखल होने की अनुमति नहीं दे पाता ।

हमारे आलोच्य उपन्यास “बदलती करवटे” में इसी तरह की समस्याओं का निरूपण किया गया है ।

### ❖ सामाजिक सम्बन्ध :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में रहते हुए वह अनेक लोगो से सम्बन्ध जोड़ता है । इसका कारण उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो सकता है और परस्पर प्रेम, सौहार्द और मातृभाव भी । “वसुधैव कुटुम्बकम्” के आधार पर उसके लिए सारा समाज एक परिवार की तरह है और उसमें रहने वाले लोग भाईयों की तरह – फिर चाहे वह हिन्दु धर्म को मानने वाले हो या सिख धर्म को – इससे उसे कोई सरोकार नहीं होता । अपने उपन्यास “बदलती करवटे” में डॉ. सहगल ने कर्मचन्द और महिन्दर के साथ-साथ रानी एवं इन्दर की कथा के माध्यम से हिन्दु – सिख एकता के इन्हीं सामाजिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । एक स्थान पर कर्मचन्द कहता है – “इन्दरसिंह तुम पंजाब के जाट थे, मैं पंजाबी हिन्दु और वह सिख है । हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारे पञ्जय महापुरुष हमारे आचरण सब एक से हैं । हम सब का मूल एक है । फिर पतों और शाखाओं से जुदा होने से हम एक – दूसरे के प्रति असहिष्णु क्यों होते जा रहे हैं ।”<sup>२२</sup>

### ❖ सामाजिक समस्याएँ :

शुरू शुरू में कर्म के आधार पर समाज में केवल चार श्रेणियाँ थी – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र । परन्तु धीरे-धीरे यह श्रेणियाँ सवर्ण एवं अनुसूचित जातियों में तबदील हो गई और अहम के कारण दोनों जातियों में संघर्ष उत्पन्न हो गया । अब प्रश्न यह उठता है कि क्या अनुसूचित जाति को दी जाने वाली सुविधाओं का प्रयोग सही ढंग से हो रहा है ? समाज के विभिन्न वर्गों में अनुसूचित जाति को दी जाने वाली सुविधाओं के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही है । आरक्षण की उभर रही इस ज्वलंत समस्या का सामाजिक पक्ष डॉ. सहगल ने अपने उपन्यास “एक



और रक्तबीज” में उजागर किया है । इस उपन्यास में आरक्षण की मुख्य समस्या के साथ साथ युवा पीढ़ी से सम्बन्ध अन्य प्रश्नों को उभारा गया है ।

### ❖ मध्यवर्गीय जीवन :

आज का मध्यवर्गीय जीवन एक विकट दौर से गुजर रहा है । जीवन की आकांक्षापूर्ति मगर साधनहीनता इस वर्ग की आशाओं को फलीभूत होने से पहले की दवा देती है । मन-मस्तिष्क कुष्ठाओं से जकड़ा जाता है और फिर जीवन एक त्रासदपूर्ण स्थिति का मोहताज बनकर लंगड़ाता - घिसटता अपनी ही रफतार चलता आगे बढ़ता है । डॉ. सहगल के उपन्यासों में पूरे राष्ट्रीय स्तर पर विघटन और भयानक मोहभंग का दृश्य उपस्थित है, उसमें आज का केन्द्रीय व्यक्ति एक अजीब सी घुटन का शिकार है । दिशाएँ लापता हैं और किसी काम या विचार को कोई अर्थ नहीं सुझता यानि सब बेमाने लगते हैं ।

### ❖ जातिवाद :

समय के साथ धर्म ने कई करवटे बदली । जितनी करवटे बदली, उतनी ही जातियों का निर्माण होता चला गया । डॉ. सहगल के उपन्यास “बदलती करवटे” में जातिवाद की कोई भावना न होकर हिन्दु-सिख एकता की भावना का समन्वय है । इन्द्रसिंह और कर्मचन्द की हिन्दु सिख एकता पर बातचीत का एक नमूने देखे : “हिन्दुओं से सिख कभी जुदा थे ही नहीं । दशमेश के किस धर्म की रक्षा के लिए औरगंजेब के विरूद्ध लोहा लिया था ? हिन्दु धर्म के लिए हिन्दुओं और सिखों का धर्म, संस्कृति, पूज्य महापुरुष और तीर्थ-स्थल एक ही तो है । कुछेक स्वार्थी ‘दुनेता’ नाखुन से मांस जुदा करने की नामुमकिन कोशिश में हैं, इसलिए साम्प्रदायिक विष फैला रहे हैं ।”<sup>२३</sup>

## ❖ आर्थिक पक्ष :

### ➤ आर्थिक असमानता :

सम्पूर्ण समाज के लिए लेखक का क्या उत्तरदायित्व है ? इस बात को अच्छी तरह समझते हुए मनमोहन सहगल की पहली प्रतिबद्धता वर्ग के साथ है । उसके शोषण के चक्र में अनवरत पिसते रहकर आज का निम्न वर्ग दुरावस्था की उस सीमा तक पहुँच गया है, जहाँ उसका जीवन अभिशाप बन गया है, दमन, शोषण और उत्पीड़न के चक्र में फँसकर जहाँ मजदूर वर्ग सब कुछ खो देता है, वहीं मनमोहन मानते हैं कि जीवन की सद्वृत्तियाँ सदैव इसी वर्ग के साथ बनी रहती हैं । जब जीविकोपार्जन कर सकने का आधार प्रतिभा या परिश्रम न रहकर धन, सिफारिश या जाति ही बन गए हैं तो ऐसे में युवा पीढ़ी को भविष्य अन्धकारमय लगना तथा उसकी कल्पना के प्रासाद रेत के घरौंदे की तरह ढहना स्वाभाविक ही है । उसकी प्रबल मानसिकता कुचलकर सदा के लिए कुष्ठा का शिकार बन जाती है ।

### ➤ आर्थिक अभाव :

आर्थिक अभाव ऐसे प्रत्येक समाज का अभिन्न अंग होते हैं जो आर्थिक असमानता को नींव पर खड़ा हो । यानि वर्गभेद जहाँ उपस्थित है वहाँ आर्थिक असमानता, अभाव तथा शोषण अपने आप प्रकट हो जाते हैं । जैसे – जैसे समाज का विकास होता गया वैसे वैसे ही उसमें शोषण की प्रक्रिया भी आरम्भ होने लगी । सामर्थ्य एवं शक्ति सम्पन्न जीव अपने से निम्न वर्ग को दबोचने, उसका शोषण करने को अपना अधिकार मानने लगा । पूंजीपति वर्ग अपने स्तर को ऊँचा उठाने तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु जनसामान्य को उस सोच से भटकाकर गलत रास्ते पर ले आता है क्योंकि उनकी सम्पन्नता एवं समृद्धि पूंजीपति के लिए असहनीय है ।

➤ **आर्थिक शोषण :**

पूंजीवादी व्यवस्था में एक वर्ग (शोषक) दूसरे वर्ग (शोषित) का धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शोषण करता है, यह उजागर सत्य है । भारतीय समाज इस समय पूंजीवादी युग में है । भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार स्तम्भ कृषि और उद्योग हैं । कृषि के क्षेत्र में खेत मजदूरों और किसानों का आर्थिक शोषण साहूकारों, जमीनदारों, सामन्तों, तथा महाजनों द्वारा होता है । और उद्योग-धंधों में मजदूरों का आर्थिक शोषण कारखानेदारों एवं पूँजीपतियों द्वारा ।

➤ **राजनीतिक पक्ष :**

देश की राजनीति का अध्ययन करने से पता चलता है कि इस क्षेत्र में भ्रष्ट एवं अवसरवादी लोग अपनी गददी पकड़ने की राजनीति में उलझे हुए हैं । देश कहाँ जाएगा ? समाज का क्या होगा ? इसकी राजनेताओं को चिन्ता नहीं है । सत्ता, अधिकार और गददी किस प्रकार बची रह सकती है, बस इसी बात की तो उन्हें चिन्ता है और यही उनका लक्ष्य है । साहित्यकार ने इसके खोखलेपन को उघाड़कर लोगों में चेतना जगाने का बीड़ा उठाया । हिन्दी उपन्यासों में इसे महत्त्व दिया गया और अनेक उपन्यास इससे जुड़कर हमारे सामने आए । डॉ. सहगल का रचनाकार इससे अछूता नहीं है । ‘बदलती करवटें’ और ‘एक और रक्तबीज’ में लेखक ने इस पक्ष को दिखाया है ।

➤ **पुलिस शासन-बर्बरता का नग्न नृत्य :**

पुलिस ब्रिटिश शासन व्यवस्था का प्रतीक मानी जाती है । पंजाब विभाजन के समय पुलिस ने जो बर्बरतापूर्ण कहर जनसाधारण पर ढाया था, उसका अत्यन्त सजीव एवं प्रामाणिक वर्णन विवेच्य उपन्यास “बदलती करवटें” में देखने को मिलता है । पंजाब विभाजन के समय भी हिन्दुओं

को जीवन – सुरक्षार्थ विवश होकर इसका विरोध करना पड़ा था क्योंकि वह जान चुकी थी कि “दंगा-फसाद के कारण किसी भी सम्प्रदाय के ये गुण्डे बदमाश ही होते हैं, जो दूसरों को लड़वाकर स्वयं लूट-पाट से झोलियां भरते हैं । प्रायः पुलिस इनका साथ देती है और वे निघड़क होकर अराजकता का नग्न नृत्य करते हैं ।”<sup>२४</sup>

### ➤ युद्धों की विभीषिका :

युद्ध सदा ही घातक सिद्ध होते हैं, इसमें न केवल जन-धन की ही हानि होती है बल्कि समाज में अनास्था, कुण्ठा, निराशा, अनिश्चितता को भी बढ़ावा मिलता है । सामाजिक अराजकता और मर्यादाहीनता की भीषण परिणति होती है । विश्व युद्धों में मानव अपने में भयंकर खोखलापन और नैतिक दीवालियापन अनुभव करने लगता है ।<sup>२५</sup>

डॉ. सहगल ने बहुत मार्मिक शब्दों में पाकिस्तान की स्थापना के समय खेली गई खून की होली का रोएँ खड़े कर देने वाला चित्र अंकित किया है, जिसे एक बार पढ़ लेने वाला कठोर हृदय दानव भी दोहराना नहीं चाहेगा । “एक दिन अकस्मात् मुस्लिम गुण्डों ने ‘या अली’ के नारे लगाते हुए उसके घर पर आक्रमण कर दिया था..... उसने छिप कर देखा था कि किस निर्ममता से उसके पिता गोपालचन्द की हत्या कर दी थी । उसकी एक छोटी बहन और एक भाई की उछालकर बछों पर लटका दिया था । उसकी माँ को पकड़कर वे साथ ले जाना चाहते थे, परन्तु उसके फूले पेट को देखकर एक गुण्डे ने उसके पेट में लात मार दी थी । वह चीखकर मूर्च्छित हो वहीं गिर पड़ी..... वह स्वयं भी आगे देखने में समर्थ नहीं था ।”<sup>२६</sup>

➤ **घर से बेघर होने की यंत्रणा :**

कश्मीर के असंख्य हिन्दु परिवार अपने पैतृक निवास को छोड़कर शरणार्थी के रूप में वहाँ पहुँच रहे हैं। अपने घर से बेघर होने की दयनीय स्थिति को शरणार्थी इस प्रकार बताते हैं – “उस दिन हबाकदल की मस्जिद पर लगे लाउडस्पीकर से घोषणा हुई थी कि कश्मीर कश्मीरी मुसलमानों का वतन है, काफिर कल तक अपने कब्जों को खाली कर दें। उन्हें ओर ज्यादा वक्त हम अपनी मिल्कियत पर काबिज नहीं रहने देंगे। अपने आप कब्जा नहीं छोड़ेंगे, तो गोली से छुड़ा लिया जाएगा।”<sup>२७</sup> इसी उपन्यास में नरेन्द्र के परिवार वालों की ‘ओपरेशन काफिर इलिमिनेशन’ के अन्तर्गत हत्या की गई थी। सब इतना अकस्मात् हुआ कि अपनी सीट से उठने तक का अवकाश भी किसी को नहीं मिल पाया और मौत का तांडव पल भर में ही सब को लील गया।

➤ **साम्प्रदायिकता बनाम राजनीति – धार्मिक संकीर्णता :**

भारत में साम्प्रदायिकता की जड़ें बहुत गहरी हैं। देखा जाए तो हिन्दु सिक्ख-मुसलमानों में परस्पर टकराहट एवं साम्प्रदायिक भेदभाव के बीच नेताओं की स्वार्थी प्रवृत्ति का ही परिणाम है, जिन्हें निरपराध लोग भोगते हैं। साम्प्रदायिकता का मूल कारण धर्म है। संकुचित धर्म भावना को लेकर संघर्ष हो उठता है, भारत विभाजन इसी का परिणाम है। साम्प्रदायिकता का विष विभाजन करके ही शांत नहीं रहा, वरन् उसने स्वाधीनता के बाद के वर्षों में भी विभिन्न समूहों के बीच अलगाव और विघटन पैदा किया। डॉ. पुष्पपाल सिंह के शब्दों में – “लेखक ने ‘कश्मीर की कसक’ उपन्यास में जम्मू कश्मीर वाले हिन्दुओं के दुःख दर्द को न केवल प्रथम बार वाणी दी है, अपितु इस क्षेत्र में फैली साम्प्रदायिकता की समस्या को भी सही परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है।”<sup>२८</sup>

➤ **सांस्कृतिक / धार्मिक पक्ष :**

भारतीय सामाजिक जीवन में धर्म का विशिष्ट स्थान रहा है । लेकिन परिस्थितियों की जटिलता और लोगों की अवैज्ञानिक सोच में धर्म के स्वरूप को धूमिल तो किया ही है उसकी मूल दिशाओं को भी परिवर्तित कर दिया है । आज धर्म समाज और व्यक्ति का नियामक अथवा परिष्कर्ता न होकर मानवता का विध्वंसक बनता जा रहा है । धर्मके कारण मानव समाज बिखराव के कगार पर आकर अटक गया है जो कभी भी खण्ड खण्ड हो सकता है । मनमोहन सहगल के उपन्यास इस सम्भावित खतरे के लक्षण प्रकट करती हुई हमें सचेत करती है । समय रहते यदि इस ओर उचित पग न उठाया गया तो भविष्य की पीढ़ी त्रासदीय परिवेश में जीने को अभिशप्त होगी ।

➤ **धार्मिक परिवेश :**

भारतीय सामाजिक जीवन में धर्म का विशिष्ट स्थान रहा है । लेकिन परिस्थितियों की जटिलता और लोगों की अवैज्ञानिक सोच में धर्म के स्वरूप को धूमिल तो किया ही है उसकी मूल दिशाओं को भी परिवर्तित कर दिया है । आज धर्म समाज और व्यक्ति का नियामक अथवा परिष्कर्ता न होकर मानवता का विध्वंसक बनता जा रहा है । धर्म के कारण मानव समाज बिखराव के कगार पर आकर अटक गया है जो कभी भी खण्ड खण्ड हो सकता है । समय रहते यदि इस ओर उचित पग न उठाया गया तो भविष्य की पीढ़ी त्रासदीय परिवेश में जीने को अभिशप्त होगी ।

➤ **धर्माडम्बरों तथा बाह्याचरणों का विरोध :**

मनमोहन सहगल राधास्वामी मत से प्रभावित हैं और यह मानते हैं कि प्रभु हर कण-कण में वास करता है । परन्तु आज के युग में धार्मिक भावनाएँ एक सतही वस्तु बनकर रह गई हैं । धर्म के नाम पर चलने

वाले क्रिया-कलाप मात्र एक ढकोसला है । धर्म प्रचार के नाम पर सीधे-सादे लोगों को ठगा जा रहा है । धर्म के बाह्याचारों ने सामाजिक जीवन को स्थूल और जड़ बना दिया है । ऐसा लगता है कि धर्म को धारण करने के स्थान पर बाह्याचारों की जकड़ बहुत मजबूत होती जा रही है ।

डॉ. सहगल ने अपने कई उपन्यासों में वर्तमान समाज की संकीर्णता, असहिष्णुता, कट्टरता, एक-दूसरे के प्रति नफरत की भावना, धार्मिक वैमनस्य, ऊँच-नीच की भावना तथा झूठे आडम्बरोँ द्वारा लोगों को पथ-भ्रष्ट करना, धर्म की आड़ लेकर अपने स्वार्थों की पूर्ति करना, स्वार्थों की सिद्धि हेतु लोगों को आपस में लड़वाना आदि कुप्रवृत्तियों को चित्रित किया है । जनता को लूटता तथा निठल्ले रहकर लोगों से सेवा कराना तथा रोटी कमाना गुरुओं का पेशा बन गया है । धर्माडम्बरोँ का कड़ा विरोध करते हुए मनमोहन सहगल कहते हैं - “धर्म” का अर्थ है - सबको समाज समझना, एकता के सूत्र में बांधना तथा सबका भला चाहना । सच्चे मन से ईश्वर भजन करने, धर्म में लीन रहने, ईश्वर से खौफ खाने तथा हमेशा उसका नाम याद रखने को ही सच्चा धर्म कहा गया है । जहाँ पर ईश्वर का नाम-स्मरण होता है, जहाँ पर शुद्ध हृदय में सत्संग होता है, वही पवित्र स्थान है । जहाँ परमात्मा का जाप होता है, वहाँ का जल गंगाजल के समाज शुद्ध और निर्मल होता है ।<sup>२९</sup>

### ➤ साम्प्रदायिक एकता :

मनमोहन सहगल के अपने उपन्यासों के माध्यम से हिन्दु - मुसलमानों - सिक्खों में साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया है । आचार्य कृपलानी के अनुसार - “जब एक ही विचारधारा किसी धार्मिक आग्रह या मत विशेषपर आरुढ़ होकर अन्ध-आग्रह को अपना मूल

एवं हठ को अपना प्राण बना बैठी, तो वह साम्प्रदायिकता कहलाने लगी ।”<sup>३०</sup>

### ➤ **धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता :**

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि प्राचीन काल से ही जिस मानववादिनी समन्वय भावना को समस्त भारतीय धर्म साधनाओं का सार और एक मात्र मूलाधार माना जाता रहा है, महान सिक्ख गुरुओं का जन्म भी उसी महत्त्वपूर्ण भावना को अग्रसर एवं पुष्ट करने के साथ-साथ धर्मान्धता एवं साम्प्रदायिकता की संकीर्ण भावना के पूरी तरह से निराकरण करने के लिए ही हुआ था । यह बात और है कि इस महान कार्य को संपादित करने की राह में महान सिक्ख गुरु तेग बहादुर जी को महान त्याग और बलिदान करने पड़े । अगर एक तरफ आतंकवादी एवं भ्रष्ट नीतियों को धारण करने वाले नृशंस शासक तथा मुल्ला थे तो दूसरी ओर ईश्वर से खौफ खाने वाले, मानव को ईश्वर का अंश मानकर प्रेम करने वाले पीर भी थे । धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता की यह भावना मनमोहन सहगल के उपन्यासों में कई जगह देखने को मिलती है ।

### ➤ **परम्परागत रूढ़ियों का विरोध :**

भारतीय समाज में प्राचीन काल से तरह-तरह के अंध विश्वास व प्रथाएँ चली आ रही हैं । इस अंध विश्वास और धार्मिक ढोंग की प्रवृत्ति के कारण मानव-समाज में बिखराव-सा आ गया है । आज का युवक चाहे वह भारत देश के किसी भी राज्य में क्यों न रहता हो, प्रचलित परम्पराओं एवं पुरानी रूढ़ियों का विरोध करता है । सदियों से चली आ रही परिपाटी पर चलना उसे मंजूर नहीं चाहे यह विरोध व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य को लेकर हो, दहेज प्रथा की समस्या को लेकर हो, धर्म एवं मज़हब को लेकर हो, राजनीति को लेकर हो या फिर अनमेल विवाह की समस्या को लेकर सभी



का विरोध करती हुई आज की युवा पीढ़ी नई दिशाओं, मूल्यों एवं धारणाओं को ग्रहण कर रही है, जिसमें सभी प्रकार के भेद-भाव एवं जात-पात से ऊपर उठकर मानवता को एहमियत दी जा सके । अपने उपन्यास 'कश्मीर की कसक' में मनमोहन सहगल ने ऐसी ही अनेक समस्याओं को उभारा है ।

“एक और रक्तबीज” उपन्यास में डॉ. मनमोहन सहगल ने, अपेक्षतया छोटे आकार में, एक नये और ज्वलन्त कथ्य को उपन्यस्त करने का साहस किया । यह है विगत चौतीस पैंतीस वर्षों से पछात तथा अनुसूचित वर्गों के लिए चली आ रही आरक्षण की सरकारी नीति और इससे आ गयी स्थिरता की स्थिति के “पुनर्मूल्यांकन की समस्या” भारत की सारी राजनीतिक संस्थाएँ इस समस्या के पक्ष-विपक्ष को बहुत कुछ जानती समझती हुई भी इसे उठाने से कतराती रही है, क्यों कि एक बड़े वर्ग के वोट खोने का खतरा इसमें से कोई भी मोल लेने को तैयार नहीं साहित्यकारों ने भी इसे नहीं उठाया था । क्योंकि आरक्षण-विरोध से उन पर प्रतिगामिता की मुहर लग सकती थी

डॉ. सहगलने अपने अनुभव क्षेत्र मुख्यतः विश्वविद्यालयी छात्र समाज और गौणतः प्राध्यापक वर्ग के माध्यम से इस नाजुक समस्या को उभार कर भारत की युवा पीढ़ी की विशिष्ट शक्ति की नई चेतना देनेकी हिम्मत की है । तदनुसार यह उपन्यास उन्होंने किसी व्यक्ति-विशेष को समर्पित न कर “आधुनिक संवेदना” युवा पीढ़ी और युगीन चेतना के नाम समर्पित किया है । वस्तुतः यथास्थिति को “युवा स्वर ही स्पंदन दे सकता है” और यही आधार यहाँ लिया गया है ।

## ❖ आधुनिक संवेदना :

आधुनिकता इतिहास-बोध सजगता की वह विकासशील संस्कार-प्रक्रिया है, जिसमें हम अपने परिवर्तनशील युग-परिवेश के बोधन-आकर्षण; पुरातन के त्यजन-संशोधन और फिर मूल्यांकन से अपनी समझ को गहराते हुए उसे अधतन बनाये रखते हैं। इसी संदर्भ में यहाँ आरक्षण-समस्या का संशोधन एवं पुनर्मूल्यांकन किया गया है।

समाज में अनुसूचित कही जाने वाली जातियों पर सवर्ण हिन्दुओं की ओर से असीम अत्याचार होते रहे हैं, इतिहास इसका साक्षी है। स्वतन्त्र भारत की मानसिकता एवं गाँधी जी के उदात्त विचारों की कृपा से ही पहली बार इस देश में यह महसूस किया गया कि निम्न जाति के लोग भी मानवता का अधिकार रखते हैं। उन्हें न केवल मनुष्य होने का हक दिया गया, बल्कि उनके प्रति सवर्ण घृणा को अवैध ठहराया गया। उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए सरकार ने एक विशेष नीति अपनाई। उनके सीमित साधनों की अनुदानों, वृत्तियों तथा लौटाए जाने वाले कर्जों के द्वारा बढ़ाया गया। बौद्धिक दृष्टि से उन्हें निम्न स्तर का मानकर उनके लिए पढ़ाई-लिखाई, नौकरी और कौशल के क्षेत्रों में कुछ प्रतिशत पद आरक्षित कर दिये ...मैं यह नहीं मानता कि उन्हें इस प्रकार उबारने की जरूरत नहीं थी। आर्थिक और सामाजिक दृष्टियों से उत्थित करना किसी भी सरकार का धर्म कहा जाना चाहिए। युगों से दलित वर्गों की उन्नति के लिए इस प्रकार के इन्सेटिव सजह थे ...अन्यत्र भी एक निम्न जाति वर्ग (कोरी टोले) के लोग आरक्षण नीति का विरोध करने वाले किन्हीं अपने ही सदस्यों की शिकायत खरी-तीखी भाषा में यों करते हैं - “शताब्दियों से हम लोग जातिवाद की चक्की में पिसते रहे हैं, ऊँची जाति के लोगों ने हम पर अमानवीय अत्याचार किये हैं, तो इन सवर्ण लोगों का पेट दुखता है।” निम्न जातीय बी.डी.ओ. भी यह कड़वा तर्क देता है-

हमारी सैंकड़ों पीढ़ियों को सवर्णों द्वारा वंचित किया गया था—लाभ उठाने की सुविधा तो अभी एक दो पीढ़ियों को मिली है । क्या सैंकड़ो वर्षों का मल ३०-३५ वर्षों में धुल सकता है ? हमारे बच्चों में किरण और रानी जैसे कितने प्रतिशत योग्य बालक बन पाये हैं अभी ? समता और संतुलन लाने के लिए कम-से कम सौ वर्ष तो वर्तमान नीति का प्रचलन अपेक्षित है । इस आरक्षण नीति के पक्ष समर्थन में तो गिने-चुने प्रसंग ही मिलते हैं किन्तु उसके विपक्ष में असंख्य स्थलों का सबल तर्क दिए गये हैं ।

प्रतिभा किसी सवर्ण या असवर्ण की बपौती नहीं हो सकती —अतः किसी को निम्न मानी जाने वाले किसी जाति के प्रतिभावान व्यक्ति को आरक्षण का टुकड़ा डालकर उसका अपमान करने का अधिकार नहीं है । आरक्षण ने सवर्णों में ही नहीं अनुसूचित युवकों में भी नैराश्य पैदा कर दिया है । लोग परिश्रम से जी चुराने लगे हैं — एक का कहना है क्या होगा ? अस्सी प्रतिशत अंक भी धरे रह जायेगे । पद तो शैडूलकास्ट ले जायेगें । और दूसरा कहता है मेहनत क्यों करे । सरकार के दामाद है, ३५ प्रतिशत अंक भी ले लिए तो कैरियर बन जायेगा । इस तरह यहाँ विद्यार्थी और आरक्षण नीति की समस्याएँ परस्पर सम्बन्ध हो गयी है । इसके प्रमाणपत्र में मेडिकल संकाय में प्रवेशार्थ ली गई परीक्षा-परिणाम को प्रस्तुत किया गया है । दाखिले के लिए लगभग ६० प्रतिशत शीटें योग्यतानुकूल परीक्षा में अधिक अंक लेकर उत्तीर्ण होने वालों के लिए थीं, शेष चालीस प्रतिशत आरक्षित थीं । आरक्षित सीटों के लिए योग्यता सूची अलग बनाई गई थी । खुले साठ प्रतिशत स्थानों पर प्रवेश प्राप्त करने वाले प्रत्याशियों के अन्तिम प्राप्तांक प्रतिशत पैंतालिस थी, जबकि आरक्षित स्थानों पर प्रवेश पाने वाले अन्तिम प्रत्याशी की प्राप्तांक प्रतिशत केवल पाँच थी । यह खुलेआम-धोखा था, छल था और विश्वविद्यालय के छात्रों के मन में क्षोभ, घृणा एवं तिरस्कार की भावना पैदा करने वाली स्थिति थी । पाँच

प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाला मैडिकल छात्र कोर्स पूरा कर लेने पर भी जनता के लिए कितने महत्त्व का होगा । लोक के स्वास्थ्य और प्राणों का संरक्षक डाक्टर, जो अपने में विश्वास नहीं जगा सकेगा, वह दूसरों की आस्था क्यों कर जीत पाएगा ? और इसके बगैर क्या वह सफल डाक्टर हो सकेगा ?

यदि नहीं तो राष्ट्र की सीमित धन-राशि और अनुकूल सुविधाएँ गलत व्यवित के लिए व्यर्थ पानी में बहाने का क्या लाभ ? लेखक ने कुमार देवके चरित्र से उपर्युक्त मन्तव्य के एक पक्ष को चरितार्थ किया है, जो बिहार लोकसेवा आयोग द्वारा आयोजित राजकीय जन-सेवा अधिकारियों के चुनाव की परीक्षा में अपनी योग्यता, परिश्रम और सजीव लेखन शक्ति के कारण सर्व प्रथम आता है किन्तु “साक्षात्कार” में पात्र इसलिए नहीं आ पाता कि वह दो-दो लाख की रिश्वत देने, या मुख्यमन्त्री की सिफारिश की व्यवस्था नहीं कर पाता । परीक्षा में मार्जिन पर उत्तीर्ण होने वाले चार उम्मीदवार चुन लिए जाते हैं । शेष छःपद आरक्षित थे । अनुसूचित जातियों के लिए चार, अनुसूचित जनजातियों के लिए एक तथा एक पद आरक्षित था पछात वर्ग के उम्मीदवार के लिए । इन छःपदों पर चुने गए लगभग सभी उम्मीदवार तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले बी.ए. पास व्यवित थे, उन्होंने चार-चार वर्ष की बाउण्डरी लगाकर बी.ए. कर ही लिया था । साक्षात्कार में उनकी परफार्मेंस कुमारदेव के मुकाबले एक और सौ के अनुपात में कही जा सकती है । कुमारदेव का आत्मविश्वास डोल गया, कुण्ठा के मन में घर कर लिया ।” लेखक ने दिखाया कि कुमारदेव जैसी प्रतिभाएँ जब बड़ी-चढ़ी बेकारी के कारण नौकरी पाने में असमर्थ होती है तब वह या तो नशीली विलासिता में गर्क हो जाती है, या अपराधपूर्ण और धिनौनी राजनीति का खेल खेलते हुए आत्मघाती एवं समाजघाती हो उठती है ।

इस उपन्यास में विश्वविद्यालय एवं समाज के अन्य क्षेत्रों में जूझती पीढ़ी तथा अत्याधुनिकता का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास बिहार प्रान्त के विश्वविद्यालयी छात्रों को पात्र बना कर लिखा गया है किन्तु वस्तुतः वह सम्पूर्ण भारत की नई पीढ़ी के स्वर को मुखरित करता है। आज हमारे देश के कर्णधार विभिन्न क्षेत्रों में युवा पीढ़ी का आवाहन करते हैं, उसे देश के नव निर्माण की आधार शिला, देश की निर्मात्री शक्ति आदि सम्बोधनों से अभिहित करते हैं, किन्तु सत्य यह है कि युवा पीढ़ी को स्वार्थ साधन का खिलौना ही बनाया जाता रहा है। उनका उपयोग राजनीतिक लड़ाई में अस्त्र रूप में किया गया है, यही कारण है कि उस युवा पीढ़ी के मन में व्यवस्था के प्रति आक्रोश है। ऐसा नहीं है कि सदैव समाज अथवा शासन ने युवा शक्ति के साथ खिलवाड़ ही किया हो। अनेक नीतियाँ सदुद्देश्य से भी निर्मित हुई किन्तु समय-समय पर उन नीतियों की उपलब्धियों और त्रुटियों पर विचार किया जाना चाहिए था जो नहीं किया गया फलतः उनमें दोष भी उत्पन्न हो गए। सरकार की आरक्षण नीति भी एक ऐसी ही नीति है।

डॉ. सहगल ने इसको आधार बनाकर एक मार्मिक कथा की प्रस्तुति इस उपन्यास में की है। भारत का वर्तमान युग इस तथ्य का जीता जागता प्रमाण है कि इस आरक्षण की नीति के कारण देश सर्वत्र क्षोभ और आक्रोश उत्पन्न हो गया है।

### ❖ गाँधीवादी उदार दृष्टिकोण :

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् महात्मा गाँधी के उदार दृष्टि और स्वतंत्र भारत की मानसिकता के कारण यह अनुभव किया गया कि निम्न जाति के लोगों को भी समान सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए। प्रशासन ने निम्न वर्ग के लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उनके निमित्त

पढ़ाई-लिखाई, नौकरी और कौशल के क्षेत्र में कुछ प्रतिशत पद आरक्षित कर दिए । सरकारने युगों से दलित वर्गों की उन्नति के लिए सुविधाएँ जुटाई, यह सर्वथा आवश्यक था क्योंकि उस वर्ग को आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से उठाना सरकार का धर्म था किन्तु लम्बे समय तक एक ही ढाँचे में बँध कर चलने के कारण उस नीति में अनेक दोष आ गए । आरक्षण नीति के कारण युवा पीढ़ी परिश्रम से जी चुराने लगी । उसके मन में निराशा और कुण्ठा उत्पन्न है ।

एक ओर प्रतिभावान सवर्ण युवक यह सोचकर क्षुब्ध होने लगा कि अस्सी प्रतिशत अंक पाने पर भी वह पद केवल इस कारण प्राप्त नहीं कर सकेगा क्योंकि वह अनुसूचित जाति का नहीं है और दूसरी ओर अनुसूचित जाति की युवा पीढ़ी या तो यह सोच कर अकर्मण्य हो जाती है कि “सरकार के दामाद है “पैंतीस प्रतिशत अंक भी ले लिए तो कैरियर बन जायगा” अथवा वह आरक्षण को भीख का टुकड़ा समझकर अपने को बेकार अहसान के नीचे दबा और पराजित अनुभव करती हैं ।

यह क्षोभ भरी मानसिकता कब तक दबाई जा सकती है । युवा पीढ़ी का स्वर इस विद्रोह भावना को स्पन्दन तो देता है किन्तु कभी कभी वह अपने क्षोभ और आक्रोश को व्यक्त करने के लिए विस्फोटक तकनीक का प्रयोग कर बैठता है, हिंसा और उत्पात में तल्लीन हो जाता है और मूल उद्देश्य से बहक जाता है । उसे यह ध्यान ही नहीं रहता कि उसके आन्दोलन के मूल में कौन सा दर्शन है ।

एक और रक्तबीज की कथावस्तु इसी युवा पीढ़ी से सम्बन्ध है । डॉ. सहगल ने इस उपन्यास के नायक सुधेश को एक प्रबुद्ध युवक के रूप में चित्रित किया है । वह पढ़ा लिखा, विचार वान तथा विद्रोही वृत्ति का युवक है । उसमें नेतृत्व शक्ति है । उसका स्पष्ट दृष्टिकोण है कि जाति के नाम पर अनधिकारी का पोषण नहीं होना चाहिए । उसे यह देखकर

अत्यन्त क्षोभ होता है कि भारत की स्वतन्त्रता के अनेक दशक बीत जाने पर भी शासन द्वारा जातगति आन्तर को उभारा जा रहा है और आर्थिक स्तर की उपेक्षा की जा रही है ।

### डॉ. सहगल का दृष्टिकोण :

डॉ. सहगल का दृष्टिकोण अत्यन्त मानवतावादी है । उन्होंने सुधेश, रानी, किरण और चतुर्भुज जैसे सजीव चरित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किए हैं जो आधुनिक युवा पीढ़ी से परिचित व्यक्तियों के लिए न केवल यथार्थ है, वरन वास्तविक और प्रतिनिधि चरित्र हैं । ये चारों एक ही गाँव के रहनेवाले हैं । सुधेश जमींदार की सन्तान है उसे धन, भोजन और वस्त्र का अभाव कभी नहीं रहा । यह आरक्षण की व्यवस्था का घोर विरोधी है । चतुर्भुज अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण परिवार में जन्मा एक युवक है, जो निर्धनता, भूख और मिथ्या दम्भ के साथ संघर्ष करता हुआ किसी तरह विश्वविद्यालय तक पहुँचा है, उसे जातिवाद के मूल से ही चिढ़ थी । उसके मन में समाज की उस व्यवस्था के प्रति गहरा रोष था जो आवश्यकता जाने बगैर एक को देते अघाती नहीं और दूसरे के सन्तोष पर सन्तुष्ट है । वह इस बात से काफी परेशान था कि व्यवस्था निर्धनता पर चोट करने की अपेक्षा लोगों की बाहर से ओढ़ी बातों, जातिवाद, वर्गवाद तथा सम्प्रदायवाद की बात करती है । अभाव की घुटन, आर्थिक दशा के भीतर की टूटन, और ब्राह्मणत्व के मिथ्या दम्भ का बोझ उसके लिए असह्य हो रहा था । उसका सहपाठी कोरी टोले का किरण चन्द्र है । वह अत्यन्त मेधावी छात्र और उसे किसी प्रकार की आर्थिक समस्या भी नहीं है । वह भी आरक्षण नीति का विरोधी है वह अनुसूचित जाति का होने के नाते आरक्षण की सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकारी है किन्तु वह यह अनुभव करता है कि बैठे बिठाए अकारण सुविधाएँ मिलने लगे तो व्यक्ति कर्म विमुख हो

जाता है, इसीलिए वह व्यवस्था की ओर से मिलनेवाली आर्थिक सहायता को भीख समझता था । वह एक स्थान पर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहता है – “मैं परिश्रम करता हूँ, प्रत्येक परीक्षा में उच्च प्राप्तांकों से उत्तीर्ण होता हूँ । श्रेष्ठ योग्यता और उत्तम परीक्षा फल के कारण जो मेरा अधिकार बनता है, वही मुझे भीख और सुविधा के रूप में प्रदान किया जाता है । ऐसी स्थिति पर कोई भी क्षुब्ध होगा, मैं भी तिलमिलाकर रह जाता हूँ ।”

रानी कोरी टोले के बी. डी. ओ. की बेटी थी । निम्न जाति की होने पर भी वह अन्य कुलीन लड़कियों से इक्कीस थी । उसे भी अपनी पढ़ाई के दौरान मिलने वाली सरकारी आर्थिक सहायता से चिढ़ थी । उसका मत है कि किसी जाति को बौद्धिक रूप से ही न मान लेना अवैधानिक और अनीतिकर है । आर्थिक अभाव किसी भी जाति के लोगों में हो सकता है । आरक्षण अभाव ग्रस्त लोगों को सुविधा जुटाने के लिए हैं । इसलिए किसी अनुसूचित जाति के लिए आरक्षण का प्रश्न उठाकर समूची जाति की ही बौद्धिक अवमानना करने की अपेक्षा अभावों में पले आर्थिक रूप से दुर्बल लोगों का आरक्षण की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए । रानी हरिजनों को दी जाने वाली आरक्षण की सुविधाओं को अपनी हेठी समझती है । अनुसूचित जाति की होने पर भी उसने विश्वविद्यालय में आरक्षण नीति के विरोध में अपने तन मन को समर्पित कर दिया था । उसका मूल नारा था –“आरक्षण जातिगत नहीं, अभावार्थ होना चाहिए” । वह अत्यन्त गम्भीरता से अनुभव करती है कि जो जाति वाल्मीक सरीखे कवि पैदा कर सकती है, रविदास जैसे पहुँचे हुए सन्त उपजा सकती है, डॉ. आम्बेडकर जैसे वैधानिक बना सकती है, उसे पिछड़ा हुआ कहकर समूची जाति को अपमानित करने का षड्यन्त्र सरकार स्तर पर किया गया है, अतः एव उसे निरस्त किया जाना चाहिए ।



### ❖ उपन्यास के मूल कथ्य एवं लेखकीय अनुभूति :

उपन्यास के मूलकथ्य और लेखकीय अनुभूति की प्रामाणिकता का सम्बन्ध है, डॉ. सहगल इस क्षेत्र में अत्यन्त सफल हैं। साहित्य सृजन में निजी प्रमाणिक अनुभव के साथ साथ अध्ययन और व्यापक मानवीय संवेदना के द्वारा दूसरों के अनुभव जगत में प्रवेश करना भी सम्भव होता है। विश्वविद्यालय परिसर से बहुत लम्बी अवधि तक जुड़े रहने के कारण डॉ. सहगल के संवेदनशील सर्जक व्यक्तित्व ने उसे अत्यन्त निकटता से देखा, सुना, समझा और भोगा है। अन्य उपन्यासों के कथानकों की भाँति “एक और रक्तबीज” का कथानक भी उन्होंने “अपने गिर्द के संसार से चयित किया है किन्तु कथानक निर्माण के सम्बन्ध में डॉ. सहगल ने एक स्थल पर अपनी रचना प्रक्रिया का संकेत करते हुए कहा है – “मैं कथानक नहीं स्थिति को पकड़ता हूँ, उसपर सोचता, मनन करता और फिर उसे दिशा विशेष में चलने के लिए अपने साँचें में ढाल लेता हूँ। धीरे-धीरे घटनाएँ जन्म लेती हैं, चयन क्षेत्र दैनिक जीवन की व्यापक अनुभूतियों की असीम तत्परता इसमें मेरी सहयोगिनी होती है और एक-एक सूत्र मिलते गठते अन्त में कथानक दिखाई पड़ने लगता है।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से गाँव से नगर में आये थे, यह बताकर उपन्यासकार ने ग्रामीण जीवन की भी झलक दिखाने का प्रयत्न किया है। ग्रामों में किस प्रकार लोग पुराने संस्कारों, जीवन की रूढ़ियों तथा आवास की परम्पराओं में बंधे हैं, किस तरह वहाँ अधिकाँश लोग अभी भी निर्धनता की रेखा के नीचे रहते हुए असुविधापूर्ण जीवन यापन कर रहे हैं, इसका मार्मिक अंकन भी “एक और रक्तबीज” में हुआ है।

अपने उपन्यास साहित्य के द्वारा डॉ. सहगल ने एक महत्त्व पूर्ण तथ्य को उजागर किया है और वह कि युवा पीढ़ी रक्तबीज के समान है।

वह कभी मिटती नहीं । उसका संघर्ष अपने आगे जानेवाली से नहीं, उस पीढ़ी की देन भ्रष्टाचार, कुम्बापरवरी, अधिकार चेष्टाओं आदि से उसका विरोध है । रूढ़ियों के अंधेरे छिद्रों में मुँह छिपा लेनेवाले सामाजिक घटक भले ही नई रोशनी की तीखी किरणों से घबराकर किसी एक युवक को मार्ग से हटा दे किन्तु आज की युवा पीढ़ी जुझारु है । यदि एक युवक हटेगा तो उसका स्थान लेने सैकड़ों आ खड़े होंगे ।

### ➤ निष्कर्ष :

प्राचीन काल में समाज इतना जटिल नहीं था, जितना जटिल आज के युग में है । समाज की व्यवस्था को ठीक रखने के लिए, विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु समाज विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित होकर प्रवाहमान रहता है । यथा – राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि । समाज के राजनीतिक पहलू का अध्ययन राजनीतिशास्त्र ऐतिहासिक पहलू का अध्ययन इतिहास, धार्मिक पहलू का अध्ययन धर्मशास्त्र तथा आर्थिक पहलू का अध्ययन अर्थशास्त्र करता है, परन्तु ये सभी शास्त्र समाज के हर पहलू का समग्र रूप से अध्ययन नहीं करते क्योंकि यह सब स्वयं में पूर्ण होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से एकांगी है । इसलिए इनसे अलग समाजशास्त्र एक ऐसा शास्त्र बना जो इन सब को समेटते हुए पूरे समाज की खोज खबर रखता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

- (१) हमारी परम्परा, प्रो. हुमायूँ, पृष्ठ ७४.
- (२) योजना, १७ अगस्त, १९७९, पृ० ४.
- (३) योजना, १५ अप्रैल, १९८७, पृ० ८.
- (४) इण्डिया टु डे एण्ड टु मोरो, पृ ३५.
- (५) योजना, १९७० ता० ९
- (६) आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृ० ७.
- (७) हमारी परम्परा, प्रो. हुमायूँ कबीर, पृ० ७४.
- (८) अर्थतन्त्र नवनीत, रमेश उपाध्याय, पृ० ७१.
- (९) समकालीन कविता पर एक बहस, पृ० १२२.
- (१०) “रक्तबीज” शंकरशेष रचनावली, खण्ड. दो, पृ० ३९२ .
- (११) “रक्तबीज” शंकरशेष रचनावली खण्ड दो पृ० ३९२
- (१२) “एक और रक्तबीज” डॉ. प्रभाकर शुक्ल पृ. २१३
- (१३) मानवतावादी उपन्यासकार –डॉ. मनमोहन सहगल पृ० २१४
- (१४) “एक और रक्तबीज” डॉ. रामदरशमिश्र पृ० २३१
- (१५) एक और रक्तबीज” डॉ. प्रभाकर शुक्ल पृ० २१६
- (१६) एक और रक्तबीज” डॉ. रामदरश मिश्र पृ० २३३
- (१७) मानवतावादी उपन्यासकार –डॉ. सहगल पृ० २१५
- (१८) एक और रक्तबीज” डॉ. प्रभाकर शुक्ल पृ० २१७
- (१९) एक और रक्तबीज” डॉ. रामदरशमिश्र पृ० २३५
- (२०) एक और रक्तबीज” डॉ. प्रभाकर शुक्ल पृ. २१८
- (२१) मानवतावादी उपन्यासकार –डॉ. सत्यपाल चुघ पृ. २२२
- (२२) ‘बदलती करवटें’ – डॉ. मनमोहन सहगल, पृ. १६
- (२३) ‘बदलती करवटें’ – डॉ. मनमोहन सहगल, पृ. १०
- (२४) ‘बदलती करवटें’ – डॉ. मनमोहन सहगल, पृ. ७५

- (२५) हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सो वर्ष - डॉ. ओंकार श्रीवास्तव, पृ. ८  
(२६) 'बदलती करवटें' - डॉ. मनमोहन सहगल, पृ. ०६  
(२७) 'नरमेध' - डॉ. सहगल, पृ. ७  
(२८) हिन्दी उपन्यास के पद चिह्न - डॉ. सहगल, पृ. ३१७  
(२९) 'गुरु लाधा रे' - डॉ. सहगल, पृ. ११६-१२०  
(३०) 'पंजाब सौरभ', पृ. ८७



पंचम अध्याय  
डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में  
राजनीतिक परिवेश

- ❖ आजादी की लड़ाई और समूचा राष्ट्र
- ❖ अंग्रेजों की कुटिलनीति
- ❖ स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति
- ❖ नेहरू की गृहनीति
- ❖ पाकिस्तानी आक्रमण और भारत की राजनीति

## पंचम अध्याय

### डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में राजनीतिक परिवेश

भारत लगभग दो सौ पचास वर्ष की दासता के बाद आजाद हुआ । स्वाधीन भारत की प्रधान चेतना उसके नव निर्माण तथा विकास की थी और उसका लक्ष्य था एक शोषणहीन, भेद रहित समाज की स्थापना, समन्त आत्म निर्भर और गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण भारत को अपनी परम्परागत रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों, पिछड़ेपन, गरीबी व दैन्य से छुटकारा पाकर एक सम्पन्न एवं सम्मानित राष्ट्र के रूप में अपने को विश्व मानचित्र में स्थापित करना था ।

### ❖ आजादी की लड़ाई और समूचा राष्ट्र

आजादी की लड़ाई में समूचा राष्ट्र एक जुट होकर खड़ा हुआ था । शक्तिशाली अंग्रेजी साम्राज्य की सत्ता को चुनौती देकर भारतीय जनता ने अपनी एकता का प्रमाण दिया था । अंग्रेजों के लिए भारतीयों की यह सहिष्णुता और एकता हानिप्रद थी । अंग्रेजों ने फूट डालकर राज करने की नीति के तहत साम्प्रदायिकता के विषवृक्ष का बीजारोपण किया डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं कि – “अंग्रेजों का यह प्रयत्न बराबर रहा है कि सामाजिक वैषम्य से लाभ उठाकर समाज के एक हिस्से से दूसरे को लड़ा दिया जाए ।”<sup>१</sup>

## ❖ अंग्रेजों की कुटिलनीति

अंग्रेजों को अपनी कुटिलचाल से सफलता मिली भारत की आजादी के समय यह विषवृक्ष फलने फूलने लगा । राष्ट्रके समक्ष साम्प्रदायिकता दंगे, बेरोजगारी, शरणार्थियों के पुनवास का प्रश्न आदि अनेक समस्याएँ प्रस्तुत हुई । देश के विभाजन के परिणाम स्वरूप लोगों में पारस्परिक घृणा आशंका एवं निराशा आदि प्रवृत्तियों ने विकास पाया हिन्दुओं का पाकिस्तान में रहना दुष्कर हो गया । मुसलमानों से भयभीत हिन्दु भारत आने लगे । सरकार को इनके पुनर्वास की व्यवस्था करनी पड़ी जिसमें करोड़ों रूपयों का व्यय हुआ और देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी ३० जनवरी, १९४८ ई. को महात्मा गांधी व्यक्ति – विशेष की घृणा का शिकार हो मारे गए । जिससे देश में हर तरफ निराशा की लहर व्याप्त हो गई । लौह पुरुष सरदार पटेल के द्वारा समझाएँ जाने पर देश की सभी देशी रियासतें १७ सितम्बर १९४८ ई. में भारत सरकार के अधीन हो गई । “देशी रियासतों के विलय और भारतीय मानचित्र के आकार लेने के साथ भारतीय शासनतन्त्र को व्यवस्थित करने का काम प्रारम्भ हुआ । एक नूतन राष्ट्र को अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप एक ऐसे संविधान की आवश्यकता थी जो भारतीय उच्चादर्शों के अनुरूप हो तथा परिवर्तित विश्व ई. की बराबरी में भारत को सम्मान जनक पहचान दे सके । २६ जनवरी १९५० ई. को भारत ने नवीन संविधान को अंगीकार किया ।”<sup>२</sup>

प्रत्येक नागरिक को बिना किसी धर्म, वंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर वैधानिक समानता का अधिकार दिया गया । इस समय सत्ता कांग्रेस दल के हाथों में थी । इसके अतिरिक्त अन्य राजनीतिक दल साम्यवादी, सोशलिस्ट पार्टी, जनसंघ आदि भी स्थापित थे । कांग्रेस ने सत्ता में बने रहने के लिए भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुर्नगठन, अनुसूचित जातियों के लिए विशेष आरक्षण व्यवस्था का विकास किया और व्यक्ति का

यह विश्वास कि स्वतंत्र होते ही साम्प्रदायिक झगड़े समाप्त हो जायेंगे, व्यक्तियों के स्वार्थ के कारण राष्ट्रीय भावना के स्थान पर व्यक्तिवादी भावनाओं का विकास हुआ ।

### ❖ स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति में नेहरू की प्रमुख भूमिका रही । उन्होंने विश्व में शान्ति की स्थापना को महत्वपूर्ण माना । नेहरू ने स्वतंत्रता को बनाये हुए, राष्ट्रीय एकता को बरकरार रखा । उन्होंने निर्धन जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया, किसानों की स्थिति सुधारने के लिए जमीनदारी प्रथा का अन्त किया । गुट-निरपेक्षता एवं पंचशील के सिद्धान्तों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व शान्ति की स्थापना नेहरूजी की प्रमुख इच्छा रही परन्तु चीनी आक्रमण ने उनके विश्वास को बहुत बड़ी चोट पहुँचाई । इस आक्रमण से देश की स्थिति पुनः बिगड़ी । राष्ट्र में निराशा और दुःख का वातावरण छा गया । “चीनी आक्रमण के कारण भारत के अन्दर की बिषम हालत एवं भावात्मक स्तर नये चिन्तन और परिस्थितियों के कारण भारतीय व्यक्ति में निराशा, भय संशय तथा शंका की स्थिति ने घर किया ।”<sup>३</sup>

इस प्रकार चीनी आक्रमण से भारत की राजनीति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ । अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रति भी दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ क्योंकि युद्ध में अन्य देश भारत के प्रति उदासीन बने रहे और इसलिए भारतीय राजनीति अब अधिक राष्ट्रीय बनने लगी ।



## ❖ नेहरू की गृहनीति

नेहरू की गृहनीति की असफलता से उत्पन्न अव्यवस्था, संकुल जनता में शास्त्री के आगमन से एक नई आशा की किरण उदय हुई । क्योंकि शास्त्री आम जनता की समस्याओं के अधिक निकट रहे जबकि नेहरू जनता के श्रद्धेय नेता तो रहे किन्तु शासन से जिस निश्चिन्त और निरापद जीवन जीने की आशा स्वतन्त्र भारत नेकी उसमें पूर्णता प्राप्त न कर सके । शास्त्री जी आम जनता का प्रतिनिधित्व करते थे इसलिए जनता को उनसे बहुत अपेक्षाएँ थीं परन्तु अभी चीन के आक्रमण से आक्रमण से आक्रान्त भारत सन्तुलित स्थिति में आया भी न था कि सन् १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया । इस सम्बन्ध में देवीशंकर अवस्थी लिखते हैं कि “पाकिस्तान से होने वाला युद्ध की अगली कड़ी बनकर आया – जो कभी राजनीति की बात नहीं करते थे, जिनके लिए चारों ओर से घेरता अकेलापन ही था, वे भी अचानक जैसे झंझोड़ दिए गए और युद्ध की मोर्चेबन्दियों की ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दाँव पेचों की चर्चा करने लगे – इस लड़ाई ने बुद्धिजीवी को बदला ।”<sup>४</sup>

## ❖ पाकिस्तानी आक्रमण और भारत की राजनीति

पाकिस्तान के इस आक्रमण ने देश की व्यवस्था को डगमगा दिया । इस स्थिति में सुधार के लिए शास्त्रीजी ताशकन्द गए । ताशकन्द में अन्य लोगों के दबाव में आकर उन्होंने ताशकन्द समझौता तो किया परन्तु उन्हें भारतीय लोगों की प्रक्रिया के बारे में सन्देह था । इस समझौते ने उनके मानस पर गहरा प्रभाव डाला और हमने अपना प्रिय नेता खो दिया । शास्त्रीजी की मृत्यु के साथ ही देश में अस्थिरता व्याप्त हो गई ।

१९६८ ई. के आम चुनावों में सत्ता के मंच पर श्रीमती इन्दिरा गाँधी का आगमन हुआ । प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी को भी कई प्रकार के

राजनीतिक समझौते करने पड़े, जिनमें प्रान्तीयत, सांप्रदायिकता और वैयक्तिक स्वार्थपरता प्रमुखता प्राप्त करती गई। इस स्थिति ने भ्रष्टाचार को जन्म दिया जिसे देखकर आम व्यक्ति हाहाकार कर उठा। श्रीमती गाँधी भी इन परिस्थितियों को अनदेखा न कर सकी, लोकसभा भंग कर दी गई।

१९७१ ई. में विकल्प के अभाव में पुनः मध्यावधि चुनाव में जनता ने शासन की बागडोर श्रीमती गाँधी के हाथ में थमा दी। परन्तु शासक दल के नेता काँग्रेसियों में पद का मोह बढ़ने लगा। वे जनहित के स्थान पर स्वहित को महत्ता देने लगे। ईमान बिकने लगा और नेता जिसे आज से पूर्व श्रद्धा का पात्र समझा जाता था, घृणा और क्रोध का पात्र हो गया। डॉ. राम मनोहर लोहिया ने पटना की जनसभा में बोलते हुए कहा था कि – “काँग्रेस एक कुण्डलीमार सर्प है जो देश के भाग्य पर फन फैलाए बैठा है। इसको हटाए बिना देश का विकास सम्भव नहीं।”<sup>५</sup>

फिर भी विडम्बना यह कि सारे शोषण के बाद भी काँग्रेस ही जीतती रही।

१९७७ ई. के चुनाव में काँग्रेस बुरी तरह पराजित हुई और सत्ता जनता पार्टी के हाथ में आई परन्तु इससे भी जनता को निराश ही होना पड़ा। चुनाव के वक्त एक हुए लोग चुनाव के बाद आपस में पद – प्राप्ति के लिए झगड़ने लगे। राष्ट्र एवं जन हित इन झगड़ों के समक्ष पीछे छूट गया, चारों ओर अकर्मण्यता का बोलबाला छा गया। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति को पुनः मध्यावधि चुनाव करवाना पड़ा। ई. १९७० के चुनाव में सत्ता एक बार फिर काँग्रेस के हाथ में आई क्योंकि जनता पार्टी आपनी अकर्मण्यता, अदूरदर्शिता और आन्तरिक मत भेदों से उत्पन्न असफलता सिद्ध कर चुकी थी। चार वर्षों में हुए दो चुनावों और उससे प्राप्त निष्कर्षों ने राजनीति में व्यक्ति की सजगता को स्पष्ट कर दिया है।

निष्कर्षतः स्वतन्त्रता - प्राप्ति से पूर्व वैयक्तिक -चेतना राष्ट्रहित के लिए समर्पित थी, उसका लक्ष्य राष्ट्र को स्वतन्त्र करवाना मात्र था । देश की अन्य समस्याओं की ओर उसका कोई ध्यान नहीं था । क्योंकि व्यक्ति का यह विश्वास भी था कि स्वतन्त्रता -प्राप्ति के पश्चात् भी जब समस्याएँ ज्यों की त्यों बनी रहें तो उसमें असन्तोष बढ़ने लगेगा । फलस्वरूप दायित्वहीन नेताओं के प्रति घृणा की भावना जन्म लेने लगी क्योंकि नेताओं ने स्वतन्त्र भारत के जिस आदर्श रूप को जनता के समक्ष रखा था उसका नामोनिशान भी कहीं न था । “ज्यों ही संघर्ष का युग समाप्त हुआ और सत्ता का युग आया त्यों ही यह ऊपरी भव्यता और प्रभा-मण्डला अकस्मात् निस्तेज पड़ने लगा और परिस्थिति में अन्तर्निहित असंगति और अविवेक स्पष्ट दिखने लगा ।”<sup>६</sup>

विसंगति बोध के बढ़ने का कारण बताते हुए डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने लिखा है कि - “विसंगति (एक्सडिक्टि) का बोध इसलिए बढ़ा है क्योंकि आजादी के बाद जो सपने देखे गए थे वे पूरे नहीं हुए । शासकदल समृद्धि, प्रतिष्ठा और उपभोग की राजनीति में फँसकर सामान्य जनता को कोई खास राहत नहीं दे सका ।”<sup>७</sup>

ग्राम हो या शहर राजनीति ने सबको प्रभावित किया है । स्वार्थ, अहम्, तिकडमबाजी, फरेब, धूर्तता आदि दुर्गुण ही समाज में फैले हैं । राजनीति के कारण जातिवाद का जहर तेज हुआ है, साम्प्रदायिक वैमनस्य की खाई और चौड़ी हुई है तथा असामाजिक तत्त्वों के हौसले बुलन्द हुए हैं । परिणामतः सारा परिवेश असन्तोष और भय से आक्रान्त हो गया है । साधारण मनुष्य की दृष्टि में “राजनीति” शब्द ही धोखा - छल - प्रपंच बन गया है । ऐसा समझा जाने लगा है कि राजनीति का लोककल्याण और सुव्यवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं । यह अशान्ति फैलाने का हथकण्डा है ।

इस प्रकार समसामयिक सन्दर्भ में राजनीति का सिद्धान्त पक्ष कमजोर पड़ गया है । राजनैतिक धरातल पर व्यक्ति चेतना की छटपटाहट और संघर्ष हमें डॉ. शेषजी के नाटकों में मिला है, जिसका आकलन हम निम्नलिखित बिन्दुओं में करेंगे ।

राजनीति में स्वार्थ और सत्ता का बोलबाला है । राजनीतिज्ञ का पहला और अंतिम लक्ष्य है – कुर्सी के रूप में सत्ता प्राप्त करना । इसके आगे-पीछे इधर-उधर वह देख नहीं पाता । अपने व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से आगे या बाहर उसके लिए और कुछ, कोई और है ही नहीं । उसकी समस्त चेतना कुर्सी के इर्द – गिर्द बल खाती रहती है । यदि प्राण चले जाएँ तो भी उसकी भटकती आत्मा सत्ता छोड़ नहीं सकती । डॉ. शंकरशेष के नाटक “कालजायी” का निरंकुश, अत्याचारी, क्रूर शासक कालजयी पुरबी के आश्चर्य का समाधान करते हुए कहता है – “नहीं पूरबी, मैं सत्ता कभी नहीं छोड़ूंगा-सच तो यह है कि सत्ता ही मुझे नहीं छोड़ेगी ।”<sup>६</sup>

“सत्ता लोलुपता के ऐसे कई दृष्टान्त इतिहास के पन्नों पर अंकित है जहाँ सत्ता – लिप्सु व्यक्ति रक्त के सम्बन्धों की भी चिन्ता नहीं करता । सत्ता के व्यामोह में फँसे किसी शासक के लिए पिता – पुत्र – पत्नी के सारे सम्बन्ध अपने आप निरर्थक हो जाते हैं । वह कभी विश्वास नहीं कर सकता कि सिंहासन से आगे भी कोई सम्बन्ध हो सकता है । और यह धटना भी राजनीतिक क्षेत्र में कोई नया आश्चर्य पैदा नहीं करती कि कोई पिता अपने जवान पुत्र को इसलिए मार देता है कि वह कल उठकर कहीं उससे सत्ता न छीनले ।”<sup>७</sup>

सत्ता-मोह में लिप्त शासक को उसका चस्का एक बार लग जाता है, प्रजा के उखाड़ फेंकने की हालत में वह सुधरने व शासन से हटने का नाम नहीं लेता । सत्ता का उपयोग करते-करते एक भ्रामक धारणा उसके दिमाग में घर कर जाती है कि सत्ता पर उसका ही एकाधिकार बरकरार

है, वह हजारों वर्षों तक एक चक्र शासन करना चाहता है। कालजयी नाटक की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं – “नहीं मैं राज्य करूँगा। हजार वर्षों तक, लाख वर्षों तक – करोड़ों वर्षों तक, मैं अगर हूँ मैं सनातन हूँ – राजा कभी नहीं मरता।”<sup>१०</sup>

सत्ता का आकर्षण अत्यन्त प्रबल और प्रचण्ड होता है। उसकी प्राप्ति की आशा मात्र से त्यागी पुरुष का मन चरमरा उठता है। सत्ता का प्रभाव किसी सुन्दरी से कम नहीं होता है। राजपरिवारों में सत्ता हथियाने के लिए अनेक षडयन्त्र होते हैं। राजा को एक से अधिक सन्तान होती थी तो उत्तराधिकारी का मामला अत्यन्त पेचीदा बन जाता था। मायावी सरोवर नामक नाट्य रचना में इसकी चरम परिणति देखी जा सकती है – “मत भूलो रानी अब सिंहासन पर मेरा पुत्र बैठेगा—वही अधिकारी है राजसत्ता का।”<sup>११</sup> “मैं राजा हूँ, राज्य मेरा है।”<sup>१२</sup>

सत्ताकाँक्षी व्यक्ति नैसर्गिक जीवन न जीते हुए योजनाबद्ध जीवन जीने का आदी होता है। उसके लिए प्रजोत्पत्ति राजनैतिक गिनती और सत्तालक्षी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती। प्राचीन परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ भ्राता ही सर्वमान्य सत्ता का दावेदार होता है, कोमल गांधार नाटक में धृतराष्ट्र को शीघ्र प्रजोत्पत्ति के लिए राजनैतिक ढंग से प्रेरित करता है – “कल पाण्डु के नियोग से पुत्र होंगे, वे भी उसी वंश के कहलायेंगे। अगर आप से पहले उसके पुत्र हो गया, तो सत्ता पर उसका दावा होगा। महाराज अगर पाण्डु—पुत्र सत्ता पर आ गये तो आप को और मेरी बहन को उनके अन्न पर आश्रित होना पड़ेगा। आप दोनों के बुढ़ापे में उनका व्यवहार कैसा होगा, कौन कह सकता है।”<sup>१३</sup>

स्वातंत्र्योत्तर भारत में जम्मू—कश्मीर क्षेत्र ने सन् १९७१ ई. तक तीन बड़े—बड़े आक्रमणों की विभीषिकाओं को भोगा है। इन तीन आक्रमणों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में पाकिस्तान से आनेवाले कबायलियों घुसपैठियों आदि ने

जो जुल्म ढाये हैं, उनकी अपनी एक बेमिसाल कहानी है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में अनेक लेखकों ने जम्मू-कश्मीर के युद्ध-पीड़ित जन जीवन के विविध पक्षों को उकेरा है ।

डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यास “कश्मीर की कसक” में युद्ध संतप्त जम्मू-कश्मीर के जीवन का जितना सटीक और सांगोपांग वर्णन हुआ है, वैसा हिन्दी कथासाहित्य में अन्यत्र अप्राप्य है । कहानी और उपन्यास दो विभिन्न विधाओं की तुलना ज्यादा श्रेयस्कर नहीं कही जा सकती किन्तु इस उपन्यास को पढ़ते हुए श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की “मास्टर जी” कहानी की स्मृति सहसा हो आती है किन्तु अपने कथ्य, विषय-वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण पर आधृत होना, कटु-सत्त्यों को बिना किसी लाग-लपेट के पूर्णतः पूर्वाग्रह विमुक्त दृष्टि से ज्यों का त्यों कह देने के साहस, अनेक समस्याओं से अब तक अनचीन्हे स्वरूप को उजागर करने में यह उपन्यास बेजोड़ है और “मास्टर जी” (चन्द्रगुप्त विद्यालंकार) कहानी को बहुत पीछे छोड़ जाता है । इस उपन्यास में लेखक ने जम्मू-कश्मीर की जितनी सच्ची तस्वीर जिस रोचक शैली में प्रस्तुत की है, उसके कारण यह उपन्यास हिन्दी कथा-साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि बन गया है । युद्ध की घटनाओं को आधार बनाकर जो श्रेष्ठ हिन्दी कथा-साहित्य हमारे सामने आया है, उसमें पं- चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अज्ञेय, यशपाल, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार तथा “सारिका” कहानी मासिक के युद्ध-कथा-विशेषांक तथा अन्य अङ्कों की कुछ बड़ी साफ-सुथरी कहानियों के नाम लिये जा सकते हैं । इसी परम्परा में (कश्मीर की कसक) के उपन्यासकार डॉ. मनमोहन सहगल एक सशक्त हस्ताक्षर और जुड़ गया है । यहाँ फिर मने कहानी कारों को उपन्यासकारों के साथ रखकर देखने की जोखिम उठायी है, यदि केवल उपन्यास-साहित्य की बात करनी हो तो मैं नहीं समझता कि

युद्ध को आधार बनाकर लिखा गया इससे ज्यादा समर्थ उपन्यास हिन्दी कथा साहित्य के पास अब तक है ।

१९७० ई. में प्रकाशित यह उपन्यास सितम्बर १९६५ ई. में हुए भारत पाक युद्ध की पृष्ठभूमि से प्रारम्भ होता है किन्तु उपन्यास की विशेषता यह है कि अपने लघु कलेवर में इसने १९४७ ई. से लेकर अपनी प्रकाशन अवधि तक के जम्मू-कश्मीर के जन जीवन की सही तसबीर आंकने का ईमानदार प्रयत्न किया है न केवल स्वातंत्र्योत्तर के जन-जीवन का लेखा जोखा दिया गया है अपितु (कश्मीर-की कसक) की राजनीतिक घटनाओं के परिसर में सन् १९३१ ई. तक की अवधि का सांगोपांग विवरण प्राप्त हो जाता है ।

यह उपन्यासकार का कौशल है कि उसने उपन्यास के इतने संक्षिप्त कलेवर में सन् १९३१ से लेकर १९७० तक की घटनाओं को समेटा है । जब हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्ति बृहदकाय उपन्यास की ओर हो रही हो, उस समय इतनी संक्षिप्तता से सन् १९३१ से १९७० तक के जम्मू-कश्मीर के जीवन को प्रस्तुत करना अपने आप में बड़ी सफलता है । कश्मीर की कसक में चार शीर्षक अध्याय हैं -आक्रमण, जम्मू, श्रीनगर एवं पुनर्वास, आक्रमण नामक प्रथम शीर्षक में सितम्बर १९६५ ई. के पाक आक्रमण का वर्णन है । लेखक ने बड़े कौशल और सूझ-बूझ से यह बताने का प्रयास किया है कि पाकिस्तान ने छम्बजौरियाँ तथा राजौरी नामक स्थानों से ही भारत पर आक्रमण करने का निश्चय क्यों किया । पाकिस्तानी अफसर जानते थे कि यहाँ मुस्लिम बहुसंख्या होने से घुसपैठियों को न केवल छिपने को सुरक्षित स्थान मिल सकेगा, बल्कि वहाँ की दुर्बल स्थिति से लाभ उठाकर राजौरी से प्रविष्ट होने वाली पाकिस्तानी सेनाएँ आसानी से पुन्छको घेरती हुई छम्बजौरियाँ, अखनूर से बढ़नेवाली सेना को चनाब के पुल पर

मिल सकती है और वे ही फौजे दोगुनी शक्ति से बढ़ती हुई बाद में पठानकोट जम्मू-कश्मीर की सड़क पर कब्जा भी कर सकती हैं ।

इस प्रकार यदि आक्रमण योजना पूर्णतः सफल हो जाये तो भारतीय सेनाओं की कुमक पहुँचने से पूर्व ही पूरी जम्मू कश्मीर उपत्यका को पाकिस्तानी पँजे में किया जा सकता है । इस आक्रमण के दौरान इस क्षेत्र की जनता सुरक्षित स्थानों को भागने लगी किन्तु इन्हीं में राजौरीवासी चरणदास जैसा अभागा भी है जिसके पुत्री प्रेमो के यौवन धन पर उस क्षेत्र के गुन्डे तथा घुसपैठियों की सहायता से आतंक फैलाने वाले महमूद की दृष्टि है । महमूद अपने पाकिस्तानी घुसपैठियों के द्वारा प्रेमो को अपने घर जबरदस्ती मँगवा लेता है । इस हाथापाई में चरणदास की भुजा में एक पाकिस्तानी संगीन घुसेड़कर उसे घायल कर देता है और चरणदास सामने वाले महमूद के मकान से प्रेमों की चीख-पुकार सुनता है किन्तु कुछकर सकने में असमर्थ । भारतीय सेना के जबाबी हमले में पाकिस्तानी भाग खड़े होते हैं और भारतीय सेनिकों को प्रेमो और चरणदास घायल और मूर्च्छित अवस्था में मिलते हैं जिन्हें सैनिक अस्पताल के अलग वार्डों में रखा जाता है । होश में आने पर यहीं चरणदास अपनी व्यथा-कथा एक नर्स को सुनाता है कि किस प्रकार उसकी पत्नी रामी भी १९४८ ई. में कश्मीर में घुस आने वाले कबायली लुटेरों की अमानुषिक वासना का शिकार हुई और उसने लज्जा से आत्महत्या कर ली । चरणदास की पत्नी के साथ होने वाली दुर्घटना की कहानी १९६५ ई. के पाक आक्रमण के समय उसकी पुत्री प्रेमो कहाँ और किस अवस्था में है । यह सब कहानी दूसरों से कह कर ही चरणदास की अन्तर्व्यथा का व्रण रिसता रहा और बिना किसी से कुछ कहे अस्पताल से रात के अन्धकार में छिपकर चल देता है – किसी अज्ञात अनिश्चित गंतव्य के लिए उधर प्रेमो को जीवन दान देने में सैनिक डॉ. कैप्टन रजनीश ने भरपूर चेष्टा की । उसने न केवल शरीर से प्रेमो को



स्वरूप बनाया अपितु उसे जीने के लिए प्रेरणा और सम्बल भी प्रदान किया । कैप्टन रजनीश उसे अपने श्रीनगर में रहनेवाले चाचा के पास भेज देता है और उनके संरक्षण में प्रेमो को नर्सिंग का प्रशिक्षण लेने का सुझाव देता है । “आक्रमण” नामक प्रथम शीर्षक में इतनी ही कथा है ।

“जम्मू” नामक द्वितीय अध्याय में उपन्यासकार अपने कथा नायक चरणदास के साथ हमें जम्मू ले चलता है । अस्पताल से छिपकर चरणदास जम्मू उपत्यका में पहुँचता है वहाँ पहले तो वह छिपकर पाकिस्तान से लौटते हुए घुसपैठियों के चंगुल में पड़ता है और जैसे ही वह इन पर पिसाचों के चंगुल से मुक्त होता है तो जम्मू के एक स्कूल के शरणार्थी शिविर में जा पहुँचता है । यह चरणदास के भाग्य की बिडम्बना है कि जम्मू की जिस धरती पर अपने अच्छे समय में पैर नहीं रखना चाहता था, आज दुर्दिन में उसी जम्मू के एक शरणार्थी शिविर में खड़ा है । जम्मू चरणदास की ससुराल थी किन्तु पाकिस्तानी दुर्दान्त भेड़ियों द्वारा जब उसकी पत्नी का शीलभंग हुआ जिसके परिणाम स्वरूप उसने आत्म हत्या कर ली, तो इस घटना के पश्चात् चरणदास की अपने ससुराल वालों को मुँह दिखाने की हिम्मत नहीं रही थी । किन्तु अब नियति ने जब उसे वहाँ आने के लिए बाध्य कर दिया तो उसने अपनी ससुराल के घर न जाने का निश्चय किया क्यों कि वह यह नहीं बताना चाहता था कि उसकी पत्नी के साथ घटनेवाली घटना उसकी पुत्री के साथ दुहरा दी गई है । उसके ससुर ने उसे राजौरीजाने से रोका था कि वहाँ मुस्लिमबहुल प्रदेश और वातावरण में ज्यादा दिन रहना सम्भव नहीं हो सकेगा किन्तु उस समय तक चरणदास को हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य क्या होता है इसका पता नहीं था और फिर कौन अपने पुस्तैनी घरबार को छोड़ने को तैयार हुआ है ? इन्हीं सब कारणों से वह अपनी ससुराल जाने के बजाय शरणार्थी शिविर में चला गया । किन्तु यहाँ भी चरणदास के भाग्य की बिडम्बना देखिए कि उस पर उसके साले

चन्द्रशेखर की द्रष्टि पड़ती है जौ जम्मु के राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का प्रमुख कार्यकर्ता था और इस कैम्प में सेवा कार्य का प्रमुख व्यवस्थापक था । चरणदास चन्द्रशेखर के साथ उसके घर जाने में आनाकानी करता है किन्तु चन्द्रशेखर के सामने उसे झुकना पड़ा और वह अपने साले का अतिथ्य ग्रहण करता है । धीरे धीरे उसकी बाँह का घाव भरने लगा किन्तु उसके हृदय में जो नासूर था उसका थोड़ा उपचार तब हो पाता है जब एक दिन शरणार्थी शिविर में ही चरणदास को अपनी बाल प्रेयसी रचनी मिल जाती है । उन दोनों के जीवन की स्थिति एक सी ही है । दोनों का अतीत काल चक ने मिटा दिया है, दोनों एकाकी हैं, घर बार, सगे-सम्बन्धी सब कुछ या तो समाप्त या तो मिटा दिया गया है, दोनों के सम्मुख जीवन अब एक ऐसी साफ प्लेट है जहाँ अथ से चल सकते हैं । वे दोनों अभागे “भाग्य के किसी पहलू को जिला” सकने की उम्मीद में जीवन पथ पर अग्रसर हो चलते हैं । उन दोनों की यह स्थिति चरणदास की सलहज सावित्री को सहज रूप में ग्राह्य नहीं है, वह अपनी दिवंगता ननद रअमी के स्थान पर रचनी को सहज रूप में स्वीकार नहीं कर पाती है । प्रीतिकर स्थिति से बचने के लिए चरणदास रचनी के साथ ही श्रीनगर के लिए प्रस्थान करता है । इस मुख्य कथानक के बीच में ही उपन्यासकार ने बड़े कौशल से यह चित्रित किया है कि सरकारी तन्त्र ने शरणार्थी समस्या को किस प्रकार सम्प्रादिक रंग देकर उपेक्षापूर्ण रूप से हल करना चाहा । उपन्यास के इस पक्ष की विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी ।

“श्रीनगर” (नामक अध्याय) में आकर चरणदास को जब जीविका-निर्वाह के लिए कोई काम न मिला तो उसने श्रीनगर-बारामूला रोड़ पर बडगाँव के निकट यात्रियों आदि के लिए एक छोटी सी दुकान खोल ली । वह अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ लेने कभी कभार श्रीनगर जाया करता था । जब वह एक दिन इसी प्रकार श्रीनगर गया हुआ था तो एक हिन्दु

कन्या परमेश्वरी द्वारा मुसलमान युवक इसहाक से विवाह करने के कारण श्रीनगर साम्प्रदायिकता की आग में जल रहा था । पुलिस को कहीं गोली चलानी पड़ी । भीड़ में दुर्भाग्य का शिकार चरणदास भी था । उसको भी गोली लगी और जब वह घायल अवस्था में अस्पताल लाया गया तो वहाँ फिर उसका भाग्य अजीब खेल खेलने लगा । भवितव्यता उसे उसकी बिछड़ी पुत्री प्रेमो से मिला देती है । प्रेमो अपने पिता को बचाने के लिए उसके शरीर में अपना रक्त आदान करती है । और इस प्रकार प्रेमो अपने पिता को आकर बचा लेती है । दूसरी और कैप्टन रजनीश का प्रेमो की तरफ आकर्षण बढ़ जाता है ।

वह प्रेमो के अतीत को जानते हुए भी उससे विवाह करने का साहसपूर्ण पग उठाता है । इधर चरणदास और रचनी अपनी जन्मभूमि जाने का निश्चय कर लेते हैं । इस मुख्य कथानक के अतिरिक्त “श्रीनगर” नामक इस खण्ड में उपन्यासकार ने श्रीनगर के राजनैतिक जीवन को बड़े निकट से देखा परखा है ।

“पुनर्रवास” नामक चतुर्थ शीर्षक में यह वर्णित किया गया है कि युद्धोपरान्त जब जीवन सामान्य हो गया तो राजोरी के मूल्य निवासी पुनः इधर उधर से आकर अपने घर बार बसाने लगे । चरणदास भी जब राजोरी इसी उद्देश्य से पहुँचता है, तो वह फिर अपने महमूद और उसके साथियों के सम्मुख खड़ा पाता है । अबकी बार उन्होंने उसके घर बार पर भी कब्जा कर रखा है । वे जब चरणदास को रजनी के साथ देखते हैं तो चालीस को छूती रचनी ढलता सौन्दर्य भी उन्हें ऐसा ही पियासु बनाता है । जैसा प्रेमो के सौंदर्य ने उन्हें वहशी बना दिया था । किन्तु इस बार चरणदास उनके चक्कर में नहीं आया, वह रचनी के साथ महमूद के भाई के यहाँ चला गया जो के विपरीत स्वभाव का था । चरणदास ने अनेक प्रयत्न किये किन्तु उसके जो घर-दुकान महमूद को अलग किये जा चुके थे,

वह उन्हें प्राप्त ना कर सका । सारे शासन तन्त्र पर महमूद और उसके गुण्डे साथियों का आतंक था । इसलिए शासन ने यह बहाना बनाया कि पिछले अक्टूबर मास में अलाटमेंट हुई थी तो चरणदास जीवित था यह प्रमाणित होना चाहिए । किन्तु लाख कोशिश पर भी जीवित, चलता-फिरता चरणदास सरकारी कागजों में यह सिद्ध नहीं कर सका कि वह पिछले अक्टूबर में जिन्दा था । बेघर-बार होते हुए भी उसका जीवन और रचनी का रूप, कुछ भी तो राजोरी में सुरक्षित नहीं था । फलतः बेचारे चरणदास और रचनी को पुनः बड गाँव जाना पड़ा । इस प्रकार चरणदास के माध्यम से उपन्यासकार ने कश्मीर में “चोट खाते चरणदास” और “पनपते” महमूद का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है ।

यदि कथानक शिल्प की दृष्टि से देखें तो यह उपन्यास अत्यन्त सफल बन पड़ा है । चरणदास-रचनी के इस मुख्य कथानक के साथ-साथ उपन्यासकार ने ऐसी घटनाओं और स्थितियों को परिकल्पित किया है जिनसे जम्मू-कश्मीर के जन जीवन का चित्र पाठक के सम्मुख अपने सम्पूर्ण विवरण के साथ साकार हो उठता है । पण्डित रमानाथ कौल तथा उनका शिष्य और मुख्याध्यापक अहमद, परमेश्वरी इसहाक विवाह, प्रेमो ओर कैप्टन रजनीश आदि प्रसंगों के माध्यम से लेखक ने इस प्रदेश के हिन्दु-मुस्लिम सम्बन्धों और सरकारी-तन्त्रों द्वारा स्थिति को और भी बिकट बना देने का बड़ा प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत किया है । पढ़ा-लिखा भारतीय वर्ग जम्मू-कश्मीर के विषय में समाचार पत्रों, सरकारी प्रकाशनों आदि से जो जानकारी प्राप्त करता है, वह कितनी अपूर्ण और अधकचरी है इसका सही एहसास “कश्मीर की कसक” को पढ़कर सहज में ही हो सकता है । कथा-योजना की दृष्टि से इस उपन्यास के चारों ही अध्याय बड़े ही सफल हैं ।

“आक्रमण” नामक प्रथम अध्याय में मुख्य कथानक के साथ लेखक ने यह भी चित्रित किया है कि कश्मीर के सामान्य भारतीय मुसलमानों की भावना का देश भारत नहीं पाकिस्तान है । जब युद्ध के कारण वहाँ भगदड़ मची तो “हिन्दु लोग” जो आटे में नमक समान थे, पुंछ की ओर भाग रहे थे, जब कि मुसलमानों का रुख पाकिस्तानी अधिकृत प्रदेश था । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भारतीय मुस्लिम जो आज तक अपने को भारतीय होने का दावा करते रहे थे, अकस्मात् घुसपैठियों के आतंक से घबराकर तथा अपने संरक्षकों को असमर्थ पाकर पाकिस्तानी जाति ओढ़ लेना चाहते थे । किन्तु उपन्यासकार केवल वस्तु स्थिति को बताकर नहीं रह जाता है अपितु उन कारणों के मूल में गया है जिसने दोनों जतियों को ‘हिन्दु’ या ‘मुस्लिम’ होने का अहसास करा दिया । उसका मत है कि हिन्दु-मुस्लिम के बीच यह विष-वमन डोहरों की “प्रजा- परिषद” तथा मुसलमानों की “मुस्लिम कान्फ्रेंस” द्वारा किया गया है । यह नहीं कि लेखक मुस्लिम नाम-धारी प्रत्येक व्यक्ति की देश भक्ति पर शक करता है । मकबूल शेखानी जैसे देश भक्तों का भी उसने उल्लेख किया है ।

पाकिस्तानी सेना ने नगर को बुरी तरह रौंदा लेकिन मुख्यतः हिन्दुओं की सम्पत्ति नष्ट की गई, मुसलमानों के घर बार सुरक्षित रहे । “जम्मु” शीर्षक में लेखक ने मुख्य कथानक के अतिरिक्त जिन घटनाओं का चित्रित किया है, उससे यह तथ्य सामने आता है कि धर्म-निरपेक्ष राज्य का झण्डा उठाने वाली कश्मीर सरकार किस प्रकार हिन्दु बहुल जम्मु और मुस्लिम बहुल कश्मीर को देखने के लिए जुदा-जुदा आँख और द्रष्टि रखती है ।

सरकार एक ओर तो जम्मु में आने वाले शरणार्थियों से ऐसा व्यवहार करती है कि सीमा प्रदेश से भागकर आने वाले शरणार्थी यहाँ की प्रजा ही न हो, दूसरी ओर हाजी-पीर के विजित इलाके में यहीं सरकार मुफ्त राशन आदि बँटवाती है ।

सन १९४७ ई. से लेकर सन् १९६५-६६ तक जिस प्रकार अदूरदर्शी, अन्याय पूर्ण ढंग से सरकार ने शरणार्थी समस्या को निपटाने का प्रयास किया, उसका बड़ा सुक्ष्म और प्रामाणिक विवरण यहाँ प्राप्त होता है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में हम सगर्व यह घोषित कर सकते हैं, कि हमने मुस्लिमानों को यह सुविधाएँ दीं, क्या केवल इसीलिए हिन्दुओं को न्यायपूर्ण जीवन जीने का अधिकार इस प्रदेश में नहीं हो ? इस समस्या को लेखक ने बड़े साहस पूर्ण ढंग से पाठक के सम्मुख रखा है। जम्मू-कश्मीर सरकार के हिन्दुओं के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार की जाँच के लिए केन्द्र सरकार ने गजेन्द्र गड़कर आयोग गठित किया किन्तु इस आयोग की शिफारिशों का जो हनन हुआ, उस पर भी लेखक की दृष्टि गई है। केन्द्रीय सरकार ने यह कर टाल दिया कि आयोग कि शिफारिशों को लागू करना राज्य सरकार का काम है और राज्य सरकार उसकी ओर से आँखें मूंद लेती है। इसी अध्याय में लेखक स्वतन्त्र भारत में हुए प्रधान मंत्रियों के कार्य काल का मूल्यांकन भी कर लेता है। वह कहता है—श्री लालबहादुर शास्त्री का प्रधानमंत्रित्व काल ही सम्भवतः भारतीय इतिहास में ऐसा समय था जब विरोधी दल की बात न केवल शान्ति से सुनी जाती थी, बल्कि उसके ठीक प्रमाणित होने पर सरकारी प्रतिक्रिया भी होती थी।

जम्मू में शरणार्थी समस्या को सुलझाने में केन्द्रीय हस्तक्षेप, गजेन्द्र गड़कर आयोग प्रतिवेदन, लोकसभा में जम्मू की शरणार्थी समस्या के प्रश्न की चर्चा आदि प्रसंगों में इतिहास और कल्पना का सुन्दर संयोग देखा जा सकता है।

“श्रीनगर” नामक चतुर्थ अध्याय में चरणदास और रचनी का मुख्य कथानक थोड़ा ही चित्रित किया गया है किन्तु फिर भी समस्त उपन्यास में इस अध्याय का अपना विशिष्ट महत्त्व है। घटनओं की दृष्टि से यहाँ सन् १९३१ ई. से लेकर, जब राजा हरीसिंह वहाँ राजा थे, १९७० तक की

स्थितियों का विश्लेषण कर घटनाओं का क्रम जोड़ा गया है। इस दृष्टि से यह अध्याय जम्मू कश्मीर में घटित घटनाओं का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज सिद्ध होता है। शेखअब्दुल्ला ने १९४० ई. में मुस्लिम क्रान्फेस को नेशनल क्रान्फेस में परिवर्तित कर सन् १९४८ ई. तक हिन्दु-मुस्लिम एकता का महत्वपूर्ण प्रयास किया, किन्तु समयचक्र ने फिर किस प्रकार अब्दुल्ला को हिन्दु विरोधी बना दिया, इस सब का बड़ा प्रामाणिक विवरण प्राप्त होता है। सन् १९३१ ई. में राजा हरीसिंह के विरुद्ध मुस्लिम प्रजा ने विद्रोह कर किस प्रकार मुसलमानों को पछातवर्ग घोषित करवा कर नौकरियों आदि पर एकाधिकार कायम कर लिया, इस सब का भी चित्रण उपन्यास में हुआ है।

समकालीन इतिहास की कुछ अल्प-ज्ञात घटनाओं और प्रसंगों की ओर भी लेखक की दृष्टि गई है। पण्डित जवाहर लाल नेहरू द्वारा राजाहरिसिंह के राजत्वकाल में जम्मू-कश्मीर में सीमान्त प्रान्त से होते हुए कोहलापुल पार करके अबैध प्रवेश करने का निश्चय करना कुछ ऐसा ही कम जाना प्रसंग है, जिसपर लेखक की दृष्टि गई है। कुछ ऐसी स्थितियों पर भी लेखक ने भर पूर प्रकाश डाला है जो कश्मीर से बाहर के प्रदेशों में अजानी है। जम्मू और कश्मीर की अलग-अलग युनिटों में किस प्रकार चावल आदि के दाम अलग अलग हैं, भारतीय संघ का कश्मीर ही एक मात्र ऐसा राज्य है जहाँ स्नातकोत्तर स्तर तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है, किन्तु यह निःशुल्क शिक्षा किस वर्ग को मिल पाती है, इसका पर्दाफाश करते हुए लेखक ने बताया है कि ७३ प्रतिशत अंक लेनेवाला हिन्दु विद्यार्थी उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाता है और ५० प्रतिशत अंक पाने वाला मुस्लिम विद्यार्थी उसी कक्षा में प्रवेश पा जाता है जिससे हिन्दु विद्यार्थी वंचित रखा जाता है, रामू मेट्रिक में असलम से २० प्रतिशत अधिक अंक

पाता है किन्तु योग्यता छात्रवृत्ति, मैरिट, स्कालरशिप नहीं, मिलती है असलम को जो पछातवर्ग का उसको छात्रवृत्ति मिलती है ।

इस प्रकार इस अध्याय में जम्मू कश्मीर में सन् १९३१ से १९७० ई. तक घटी घटनाओं का क्रम जुड़ा है इस अध्याय को उपन्यास के पात्रों के सम्बन्धों का भी सेतु बन्ध कहा जा सकता है । इस अध्याय में कई सम्बन्ध सूत्र जुड़ते हैं परमेश्वरी और इसहाक का विवाह, कैप्टनरजनीश और प्रेमों का विवाह आदि है ।

पुर्नवास नामक चतुर्थ अध्याय में उपन्यासकार का ध्यान अपनी मुख्य कथा की ओर ही अधिक रहा है किन्तु फिर भी बड़े कलात्मक रूप में वह यह चित्रणकर सका है कि युद्धों परान्त पुर्नवास के नामपर जम्मू-कश्मीर का सरकारी तंत्र वहाँ की प्रजा को किस प्रकार न्याय प्रदान कर रहा है । चारों ओर भ्रष्टाचार, गुन्डागर्दी, साम्प्रदायिकता का बोलवाला है । वहाँ के सरकारी अफसरों और कर्मचारियों की ही नहीं बल्कि उनकी सहायता से पाकिस्तानी घुसपैठिये बड़ी संख्या में सीमा प्रवेश कर रहे हैं किन्तु कोई उस सबकी ओर उँगली तक नहीं उठा सकता क्योंकि ऐसा करना साम्प्रदायिकता होगी (इस सब के परिणाम स्वरूप ही हमें १९७१ ई. में वहाँ एक और युद्ध लड़ना पड़ा है ) ।

इस प्रकार यह उपन्यास की कथा-योजना का कौशल है कि अपने अत्यन्त संक्षिप्त कलेवर में उसने जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक जीवन के विविध पहलुओं को बड़ी बारीकी से आँका है । समस्त उपन्यास को पढ़कर हमें लेखक के इस कथन से सहमत होना पड़ता है कि जम्मू कश्मीर क्षेत्र में घटित राजनीतिक घटनाओं को उसने साहित्यिक न्याय देने का प्रयत्न किया है । हिन्दु-मुस्लिम सौहार्द के नाम पर साहित्य में अनेक कहानियाँ लिखी गयीं जिनमें मानवता का असली रूप समझाया गया है किन्तु साहित्यकार का यह दायित्व नहीं कि वह जो कुछ देखे उसे साहित्य का विषय



बनाये । क्या हिन्दुओं की कश्मीर सरकार द्वारा उपेक्षा को अभी तक इसलिए हिन्दी कथा साहित्य नहीं अपनापाया था कि ऐसा कहने से “साम्प्रदायिक” विशेषण मिलने का खतरा है, जो “धर्म निरपेक्ष” गणतन्त्र राज्य के लिए गौरव की बात नहीं होती है । किन्तु साहित्यकार को सत्य कहने की जोखिम उठानी ही पड़ेगी । पीढ़ियों तक जम्मू कश्मीर की अन्याय से पिसती चली आ रही जनता के दुख दर्द को वाणी देना की ऐसा करना मुसलमानों को भड़काना होगा या उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाना होगा, कुछ न्याय संगत नहीं लगता । जम्मू-कश्मीर वाले हिन्दुओं का अपराध केवल इतना है कि वे “हिन्दु” है, और भारत में बहुसंख्यक हिन्दु है, किन्तु क्या ये हिन्दु इस उत्तरी सीमांत पर लड़े जाने वाले युद्ध में हर बार उजड़ने के लिए ही बने हैं क्या सरकार का इनके प्रति उपेक्षा पूर्ण व्यवहार औचित्यपूर्ण है । “कश्मीर की कसक” के लेखक ने जम्मू-कश्मीर वाले हिन्दुओं के दुख दर्द को न केवल प्रथम बार वाणी दी है अपितु इस क्षेत्र में फैली साम्प्रदायिकता की समस्या को भी सही परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा है । इस हिन्दु-मुस्लिम समस्या को चित्रित करने में लेखक की दृष्टि पूर्णतः पूर्वाग्रह विमुक्त है । न उसने किसी हिन्दु की ढाल बनने काम किया और न किसी मुसलमान को अनावश्यक रूप से किसी घटना के लिए जिम्मेदार ठहराया है । मुसलमानों के प्रति उपन्यासकार की दृष्टि पूरी तरह उदार है । यदि वह मकबूल शेखानी को राष्ट्रीयता की भावना के भेंट चड़ता है तो उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है । डॉ. गुलाम हैदर का कथन लेखक के “हिन्दु”, “मुस्लिम” और भारतीय के प्रति दृष्टिकोण को समझने में बड़ा सहायक सिद्ध होता है । सीमाओं से भागकर आने वाले पहले इन्सान है, फिर वे मेरे ही देश के अंग है, इसलिए मेरे भाई है । अगर मुसलमान या हिन्दु होने से इन्सानियत का नाता टूट जाता है, तो मैं मुसलमान या हिन्दु होने से मुनकिर हूँ । परमेश्वरी ओर इसहाक प्रेम प्रसंग

में उपन्यासकार ने हिन्दु समाज और उसकी सड़ी गली रूढ़ियों की खूब खबर ली है। उसने बिना झिझक के हिन्दुओं की दहेज वृत्ति और तंग दिली की खुलकर आलोचना की है। परमेश्वरी और इसहाक के प्रेम प्रसंग में लेखक ने बड़े बेबाक तरीके से साम्प्रदायिक दंगे फैलाने का दायित्व हिन्दु कैम्प पर डाला है, यह भी उसके उदार और निष्पक्ष दृष्टिकोण का परिचायक है।

“पुनर्वास” शीर्षक के अन्तर्गत जब चरणदास और रचनी पुनः लोटकर राजोरी आते हैं तो गुण्डे महमूद और उसके अन्य साथियों की लोलुप दृष्टि से उन्हें उन्सी महमूद का भाई बचाता है। दो सगे भाइयों के विपरीत स्वाभाव को चित्रित कर लेखक ने सिद्ध कर दिया है, कि उसके मन मस्तिष्क में हिन्दु-मुसलमान के चरित्रों का कोई खाका विशेष नहीं बन गया है; उसके लेखे मानवता का अनुकरणीय रूप हिन्दु मुसलमान दोनों में हो सकता है।

पात्र सृष्टि और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी इस उपन्यास में अपना आकर्षण है। कथानक चरणदास स्वतंत्र्योत्तर जम्मू-कश्मीर में सरकारी उपेक्षा में पहले सामान्य हिन्दु नागरिक का प्रतीक है। जब लेखक उपन्यास के प्रारम्भ में “प्राक्कथन” में यह कहता है, महमूद पनपता रहा, चरणदास चोट खाता रहा। एक वर्ग विशेष (हिन्दु) का प्रतिनिधि बनकर भी चरणदास के चरित्र में कुछ अपने वैयक्तिक गुण हैं। अधेड़ उम्र को प्राप्त करके भी वह अपनी प्रेयसी रचनी को ग्रहणकर एक अपूर्व साहस और आदर्श का परिचय देता है। परमेश्वरी हिन्दु समाज की सड़ी गली रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करती है उसके लिए मनुष्य पर ‘हिन्दु’ या ‘मुस्लिम’ का लेबिल लगाना व्यर्थ की बात है। मुसलमान इसहाक से प्रेम और विवाह करने पर भी वह यह नहीं समझ पाती है कि वह अपने को ‘हिन्दु’ या ‘भारतीय’ क्यों नहीं कह सकती। उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वह पूर्णतः

हिन्दु और भारतीय है । वह मजहब की संकीर्ण दीवारों में घिरना-घुटना नहीं चाहती है । रचनी की कोई चारित्रिक विशेषता उपन्यास में विशेष रूप से दृष्टिगोचर नहीं हो पाती है । वह अपने बालपन के प्रेमी का मन रखने के लिये उसे साथी रूप में स्वीकार कर लेती है । पं. रमानाथ कौल बेचारे एक सीधे सादे अध्यापक हैं जो कश्मीर सरकार की हिन्दुओं के प्रति भेद-भाव पूर्ण नीति के शिकार हुए हैं और जो सुप्रीम कोर्ट से अपना केस जीत कर भी वास्तविक जीवन में हार जाते हैं, क्योंकि कश्मीर सरकार उस निर्णय को लागू ही नहीं करती । महमूद तो वहाँ के शासन तन्त्र और परिस्थितियों के प्रसाद से पला गुन्डा है । चारों और जिसकी तूती बोलती हैं इन पात्रों के अतिरिक्त सावित्री, चन्द्रशेखर, अहमद आदि पात्र केवल विकास देने के लिए आये हैं ।

यदि “कश्मीर की कसक” उपन्यास की भाषाशैली और कथोपकथन पर आलोचकीय दृष्टि से विचार किया जाये तो यह स्वीकारने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि यह उपन्यास का अंत पाठक को बाँधे रखता है । उसकी सफलता का बहुत बड़ा कारण उपन्यास की जीवंत भाषा-शैली और स्वाभाविक कथोपकथन है । पात्रों के ये संवाद उनकी मन स्थिति के सर्वथा अनुरूप बन पड़े हैं । अपना सब कुछ लुटाकर चरणदास जब अस्पताल में पड़ा है और सिस्टर द्वारा उहाके विगत जीवन के बारे में पूछे जाने पर वह कितने स्वाभाविक रूप में लम्बी साँस लेकर फूट पड़ता है, क्या बताऊँ और क्या ना बताऊँ ? इन पाँच शब्दों के वाक्य ने जीवन और जगत से हारे चरणदास की अन्तर्व्यथा का चित्र खींच दिया है । नर्स का यह कथन “ओह मेन ! क्षमा करना, क्या सिस्टर से अपने दिल का दुख बँटा सकते हैं ।” हमारे सम्मुख एक ऐंग्लो-इण्डियन नर्स का बिम्ब उपस्थित कर जाता है । इस कथन की वाक्य-संरचना और “मेन” का प्रयोग इसे पात्रानुकूलित बना देता है । जब उपन्यासकार अपनी और से कोई बात कहता है तो

भाषा पूर्णतः परिनिष्ठित और टकसाली है, कहीं-कहीं भाषा का ओज गुण और सामर्थ्य देखते ही बनता है । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सभा में मुख्य वक्ता का यह भाषण हमारे इस प्रश्न का प्रमाण है, मेरे देश के लिए आप ही ने तो वास्तविक बलिदान दिया है, अपने ही को संकटावृत्त करके राष्ट्र अपनी सुरक्षा के सुयोग्य कदम उठा सका है, इसके लिए हमें अपनी आवाज को इतनी सत्याग्राही और संपुष्ट बनाना है कि वह बन्द कानों के कुहरों में बलात् प्रविष्ट होकर सरकारी ढांचे को झनझना दे ।

कहीं-कहीं भाषा में देशज शब्दों के प्रयोग और पंजाबी-रंगत ने उसे बड़ी स्वाभाविकता प्रदान की है, उसका घाब अब भरने लगा था किन्तु पूर्णतः चंगा नहीं हुआ था लोकोक्तियों मुहावरों के स्वाभिक प्रयोग ने इस उपन्यास की भाषा में एक विशेष शक्ति और स्वाभाविकता ल दी है । इस प्रकार भाषा की शक्तिमत्ता और कथोपकथन की संक्षिप्तता, स्वाभाविकता और रोचकता ने उपन्यास को आकर्षक बनाने में विशेष योग दिया है ।

देशकाल तथा वातावरण – चित्रण की दृष्टि से भी यह उपन्यास अत्यन्त रोचक बन पड़ा है । लेखक ने जिस प्रदेश, वातावरण और स्थिति को हमारे सामने रखना चाहा है, शब्दों के माध्यम से उसे हमारे सामने साकार कर दिया है । चाहें युद्ध के समय अपने अफसर से बातचीत करता सूबेदार रामसिंह हैं, चाहे अस्पताल से चुपचाप भाग निकलने वाला चरणदास और उसका धूल भरा मार्ग है, चाहे चरणदास और रचनी के मिलन वाला पर्वत-माल का कोना है –इन सबको बड़े सजीव वातावरण में उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । “उसने कहा था” की आलोचना में मैंने अपने एक लेख में युद्ध क्षेत्र के सजीव वर्णन की बात कहते हुए यह कहा था कि खंदकों का इतना सजीव वर्णन अन्यत्र प्राप्त नहीं होता है ।

कहीं-कहीं जम्मू-कश्मीर की भौगोलिक स्थिति के इतने सूक्ष्म विवरण उपन्यास ने प्रस्तुत किये हैं कि इस अंचल का एक चित्र पाठक के

मानस-पटल पर अंकित हो जाता है । इस प्रकार “कश्मीर की कसक” में देशकाल और वातावरण बड़े कौशल से उरेहा गया है । इस भाति “कश्मीर की कसक” उपन्यास में चरणदास रचनी की मुख्य कथा और अनेक प्रासंगिक कथाओं के माध्यम से लेखक ने स्वातंत्र्योत्तर जम्मू-कश्मीर के जन जीवन को प्रस्तुत किया है । उसे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है । जम्मू-कश्मीर अंचल के जीवन को लेकर लिखे गये कथा-साहित्य में यह उपन्यास अपना सानी नहीं रखता । यहाँ प्रथम बार साहसपूर्वक कुछ सत्य उद्घाटित किये गये हैं जिन्हें देखकर भी अब तक अनदेखा कर दिया गया । अपने इन्हीं गुणों के कारण डॉ. मनमोहन सहगल का “कश्मीर की कसक” उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य की एक विशिष्ट कृति बन गया है जो जम्मू कश्मीर के समकालीन जीवन का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है और वहाँ राष्ट्र के दोस्त और दुश्मन के परिमाण को जान लेने की चेतावनी दे रहा है ।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

- (१) नवजागरण और इतिहास चेतना – सं.प्रदीप सक्सेना, ज्ञानरंजन, पृ. १२७.
- (२) फ्रेमिंग ऑफ इन्डियन कान्स्टीट्यूशन, बी, पृ. ५०.
- (३) दिस्मबर, ६, पूनम दइया, पृ.११ (यातायान).
- (४) लहर, जनवरी, ६६, डॉ.०.. देविशंकर अवस्थी, पृ.२५-२६.
- (५) दल परिवर्तन: जनतन्त्र, प्रकाशचन्द्र शास्त्री क, ख, ग, जुलाई, १९६५, पृ. ३०.
- (६) मानवमूल्य और साहित्य, डॉ. धर्मवीर भारतीय, पृ.६.
- (७) हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती, सं. डॉ... नग्रेद्र, पृ. १७.
- (८) “कालजयी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड.तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. व. १९९०, पृ..१५३.
- (९) “कालजयी” शंकर शेष रचनावली, सं. डॉ. विनय, प्र. व. १९९०, पृ.१५४.
- (१०) “कालजयी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं०. डॉ. विनय, प्र. व. १९९०, पृ..१७८.
- (११) “कालजयी”, शंकर शेष रचनावली, खण्ड.तीन, सं०. डॉ. विनय, प्र. व. १९९०, पृ०.१८०.
- (१२) “अरे” ! मायावी सरोवर” शंकर शेष रचना खण्ड.तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. व. १९९०, पृ. २२८ वली,
- (१३) “अरे” मायावी सरोवर” शंकर शेषरचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. व. १९९०, पृ. २२८.



षष्ठ अध्याय  
डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में  
सांस्कृतिक परिवेश

- ❖ संस्कृति से तात्पर्य
- ❖ सभ्यता की निकटवर्ती
- ❖ भारतीय वैदिक साहित्य में धर्म की व्याख्या
- ❖ धार्मिक मान्यताएँ
- ❖ नैतिकता का सामाजिक आदर्श

## षष्ठ अध्याय डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में सांस्कृतिक परिवेश

### ❖ संस्कृति से तात्पर्य

“संस्कृति” से तात्पर्य है, परिष्कार करना अथवा परिमार्जन करना । अर्थात् मानव के सदा सद्गुणों का परिष्कार संस्कृति है । इस शब्द का प्रयोग उक्त अर्थ के अतिरिक्त अधिक विस्तृत और व्यापक अर्थ में हो रहा है । परिमार्जन और परिष्कार के अतिरिक्त इसमें शिष्टता और सोजन्यता के भाव का भी समावेश हो गया है । डॉ. प्रसन्नकुमार आचार्य के शब्दों में – “इसमें परिमार्जन या परिष्कार के अतिरिक्त शिष्टता और सोजन्य के भावों का भी समावेश हो जाता है ।”<sup>१</sup>

### ❖ सभ्यता की निकटवर्ती

कभी कभी सभ्यता और संस्कृति के बीच में भेद न कर पाने स्थिति में “सभ्यता” को ही “संस्कृति” मान लिया जाता है ।

जीवन की भौतिक आवश्यकताओं के लिये उपयोगी सृजनशीलता के रूप में मानव द्वारा उपलब्ध ज्ञान – विज्ञान, कला, साहित्य, नीति, कानून, प्रथाएँ और अन्य गुणों के समुच्चय का नाम संस्कृति है । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार के मत से मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है, उसी को संस्कृति कहते हैं । मनुष्य ने जो धर्म का विकास किया, दर्शनशास्त्र के रूप में जो चिन्तन किया, साहित्य, संगीत और कला का जो सृजन, किया सामुहिक जीवन को



हितकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं और संस्कारों को विकसित किया, उन सबका समावेश हम संस्कृति में करते हैं।”<sup>२</sup>

स्वाधीनता प्राप्ति के साथ-साथ देश के सांस्कृतिक परिवेश में अनेकानेक परिवर्तन की सम्भावना खड़ी हो गई। त्याग एवं सेवा की उच्चतर भावना का निरन्तर हास होने लगा। आर्थिक दृष्टि से समृद्ध वर्ग आडम्बर, भौतिकता, कृतिमता और विलासिता की प्रवृत्तियों से ग्रस्त हुआ नैतिक मूल्यों में गिरावट आई। भारतीय सांस्कृतिक जीवन की विशेषता “भिन्नता में एकता” की भावना को चोट पहुँची। लोगों का आकर्षण सांस्कृतिक विरासत के प्रति कम हुआ। समाज को पश्चात् देशों की निकटता ने प्रभावित किया। आधुनिकता तथा फैशन के नाम पर विदेशी संस्कृति का अन्धानुकरण किया जाने लगा और हमारी संस्कृति के मूल्य, तत्त्व, समन्वय एवं सहिष्णुता की भावना क्षीण होने लगी। प्राचीन मूल्यों से टकराकर नवीन सांस्कृतिक मूल्य उद्घाटित हुए जो कि स्वाभाविक था क्योंकि, “जीवन के साथ-साथ संस्कृति बदलती रहती है। जीवन जड़ और स्थिर नहीं है। समाज के आर्थिक ओर समाजिक जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं और साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन भी बदलता रहता है।”<sup>३</sup>

दूसरी ओर पश्चिम की वैज्ञानिक प्रगतिने भी इस विचार धारा पर आक्रमण किया, परिणाम स्वरूप आस्तिक भावना का स्थान बुद्धि ने ले लिया अध्यात्म के स्थान पर भौतिकवाद को चिन्तन का आधार स्वीकार किया गया और युक्ति की समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक रीति से होने लगा। “भारत का सम्पर्क आधुनिक पश्चिम से हुआ जहाँ विज्ञान ओर भौतिक उन्नति ने धर्म का मान्यताओं को ध्वस्त कर दिया ईश्वर और धर्म का स्थान मानव ने ले लिया।”<sup>४</sup>

इसी सन्दर्भ में आधुनिक बुद्धिवादी युगमें दो विचारदर्शन हमारे सम्मुख आये भौतिक समाजवाद इसे मार्क्सवाद भी कहा गया। दूसरा दर्शन

मनोवैज्ञानिक क्षेत्र फ्रायडवाद चूंकि इस दर्शन को वैज्ञानिक आधार फ्रायडने प्रदान किया इसलिये उसका नाम फ्रायडवाद पड़ा। फ्रायड पर अपने युग के भौतिकवाद का जबरदस्त प्रभाव था और उसी प्रभाव के परिणाम स्वरूप वह प्रतिपादित करता है कि बाह्य प्रकृति के नियमों के समान ही आन्तरिक प्रकृति के नियम भी अनुलंघ्य हैं।”<sup>५</sup>

फलस्वरूप वर्तमान जीवन दर्शन अर्थ एवं काम पर ही आधारित है। यहाँ तक कि आज तो हर सम्बन्ध में अर्थ एवं काम केन्द्रीय बन चुका है।

एक ओर जहाँ वैज्ञानिक चिन्तन ने धार्मिक व्यवस्था में परिवर्तन किया वहीं दूसरी ओर धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित होनेके कारण धार्मिक-कट्टरता में कमी आई है, परन्तु उसका पूर्णतः ह्रास नहीं हुआ। धर्म के कर्मकाण्डी रूप का परिसंशोधन वैज्ञानिक चेतना की अमूल्य देन है, इससे धर्म का दुरूपयोग अटका है। “धर्म के दुरूपयोग के कारण हमें बहुत क्षति उठानी पड़ी है। हम उच्च स्वर से घोषित कर रहें कि नर सेवा ही नारायण की सेवा है, लेकिन ऐसे मतों और ऐसी प्रथाओं को वहन करते आ रहें हैं, असमाजिक हैं।”<sup>६</sup>

स्पष्ट है कि वैज्ञानिक चिन्तन ने शताब्दियों पुरानी अधिकांश मन्यताओं को तो समाप्त किया परन्तु इससे प्रभावित बौद्धिक चेतना ने धर्म के नैतिक स्वरूप को भी नकार दिया अतः व्यक्ति और समाज जीवन में बेईमानी और भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया आध्यात्मिक मूल्यों की तीव्र आलोचना की जाने लगी। इसका दूरीगामी प्रभाव हमारे सांस्कृतिक मूल्यों और हमारी आस्था पर पड़ा। स्वार्थ-सिद्धि और स्वहित व्यक्ति का लक्ष्य हो गया। नई पीढ़ी का नवयुवक पश्चिम का अन्धानुकरण, शिक्षा की उपेक्षा, मुक्त यौनाचार तथा नशे में चकनाचूर हो अपनी पहचान भूल गया। “सांस्कृतिक

अस्मिता नकल से नहीं बनती, विदेशी मनोवृत्तियों और मनोभाव आयातित करके भी नहीं बनती अपनी सही पहचान से बनती है ।”<sup>७</sup>

परिवर्तित चिन्तन, धर्म आदि से साहित्य एवं कला भी अछूते नहीं रहे । फलतः एक क्रान्तिकारी परिवर्तन साहित्य एवं कलात्मक क्षेत्र में हुआ था स्वतन्त्र भारत में व्याप्त बिषमताओं से व्यक्ति के स्वप्न भंग हो चुके थे । लेखक एवं कलाकार की चेतना ने व्यक्ति की इस पीड़ा का अनुभव किया जिससे उसकी चेतना में सत्ता के प्रति आक्रोश व विद्रोह उत्पन्न हुआ, इसी की अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्योत्तर कला एवं साहित्य में मिलती है । स्वातन्त्र्योत्तर कला एवं साहित्य भी जीवन की विषमताओं का पुंज बना रहा हैं । अतः यथार्थ जीवन की ही अभिव्यक्ति कला एवं साहित्य में भी उपलब्ध हैं और इसी कारण उसमें अनास्था, निराशा, घुटन, अकेलापन आदि प्रवृत्तियाँ मिलती हैं । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत की सम्पूर्ण सांस्कृतिक स्थिति स्वतन्त्रता के बाद बदल गई है । सांस्कृतिक स्थिति समाज का ही एक अंग है इसलिए राष्ट्र को विषम परिस्थितियों से समस्त मानव समुदाय का प्रभावित होना सहज है ।

कुल मिलाकर भारतीय समसामयिक सांस्कृतिक परिवेश में आये बदलाव ने डॉ. शेषजी में बैठे सांस्कृतिक पुरुष को विचलित कर दिया है । अतः उनकी नाट्य रचनाओं में समसामयिक सांस्कृतिक परिवेश के प्रति असंतोष और क्षुब्धता के भाव अभिव्यक्त हुए हैं । तथापि युग जीवन की प्रभावपूर्ण व्यंजना उनके नाटकों में विद्यमान है ।

भारतीय संस्कृति में अतीत काल से ही धर्मका स्थान सर्वोच्च महत्त्वपूर्ण रहा है । धर्म एक शक्ति भी है और विश्वास भी । मनुष्य ने इस सृष्टि पर साँसें लेना शुरू किया । तबसे धर्म अंकुरित और पुष्पित हुआ है । धर्म मानव हृदय की एक उच्च और उदात्त, पुनीत और पवित्र भावना है । मानवेतिहास में धर्म अब तक जीवन को नियन्त्रित करनेवाली,

प्रमुख सत्ता रहा है । सद्‌वृत्ति को धारण करना तथा मानवीय स्वभाव पर अनुशासन करना धर्म है । धर्म मूलतः एक है इसका उद्देश्य मानव सेवा करना है । करुणा, क्षमा, परोपकार, अहिंसा, मानव कल्याण आदि के भाव इसे सिंचित कर विश्व में प्रेम और ममता का साम्राज्य स्थापित करने में सहायक बन सकते हैं । धर्म के नाम पर बुरे काम करने पर पतन अवश्य होता है । त्याग, सेवा, पथप्रदर्शन की भावनाएँ खतम हो गई हैं । धीरे-धीरे ईश्वरपूजा, व्यक्ति पूजा में परिवर्तित हो गई है । इस प्रकार जो धर्म, समाज को उन्नति की ओर लेजा रहा था, वह अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा में बदलकर पतन का कारण बन गया है । धार्मिक संकीर्ण मान्यता ने मानव को चारों ओर से नोर लिया है । पण्डित, पुरोहित और धर्म गुरु यजमान को डराने, धमकाने लगे, उनसे धन अर्जितकर स्वर्ग में स्थान सुनिश्चित कराने लगे, जबकि आज के वैज्ञानिक युग में ऐसा नहीं होना चाहिए, परन्तु ऐसा आज भी होता है । धर्म के नाम पर धर्म के ठेकेदारों द्वारा मनुष्यों का क्रूर शोषण किया जाता है, उनके सामने स्वर्ग नर्क का भयावह चित्र अंकित करके भयभीत किया जाता है । अखण्डानन्द महाराज स्वामिभक्ति के साथ स्वर्गीय सुख और नरक की यातना को जोड़ते हुए मजदूरों पर धर्म का आतंक जमाते हैं । “स्वामिभक्ति करनेवाले को मिलता है स्वर्ग का सुख ।”<sup>८</sup>

ओर “मालिक की खिलाफत करोगे तो दुख पयोगे ।”<sup>९</sup>

प्राचीन भारतीय आर्य संस्कृति उसकी धार्मिक उदारता एवं न्याय के कारण विश्वव्यापी रही है । हमारे यहाँ ऐसे राजा महाराजाओं का शासनकाल रहा है जिन्होंने धर्म साधना और उपासना को लेकर प्रजा पर कभी दमन नहीं गुजारा है । वैश्विक इतिहास में ऐसे धार्मिक स्वयत्तता के उदाहरण मिलना विरल घटना है संकीर्ण मानसवाला एव अनुदार राजा कभी इतिहास पुरुष नहीं बन सकता । नाटककार ने “खजुराहो का शिल्पी” नाटक में

राजा यशोवर्मन के द्वारा उक्त विषयक मन्तव्य प्रस्तुत किया है - “राजा को इतिहास पुरुष बनाता है प्रजा का सुख ...उसकी धार्मिक स्वतन्त्रता न्याय... ।”<sup>१०</sup>

विभिन्न पंथों और धर्मों के मतावलंबियों के परस्पर के विरोध को समाप्त करने एवं परस्पर सौहार्द्र की भावना को विकसित करना वाले उनके विचार प्रासंगिक लगते हैं । “मैं इस धर्मनगरी में सभी पंथों के मन्दिर बनवाना चाहता हूँ । शिल्पी, एक ही अहाते में मैं सभी पंथों के मन्दिर बनबाकर यह दिखा देना चाहता हूँ कि पंथों और धर्मों में आपसी विरोध नहीं है ।”<sup>११</sup>

वर्तमान युग में एक ही धर्म की आवश्यकता अनुभवित होती है और वह है मानवता का धर्म जातियों की सीमाएँ कृतिम हैं जो हमें दुर्बल बना बाली हैं स्वभावतः प्रत्येक मनुष्य एक ही जाति का है, मनुष्यता ही उसका धर्म है । जहाँ तक मनुष्यता का सम्बन्ध है - ब्राह्मण, चमार, हिन्दु, मुसलमान, ईसाई, पारसी समझे तो यह उसका भ्रामक ख्याल है । “बाढ़ का पानी” नामक नाटक में बटेसर का नव्य-मानवतावादी धर्म का आग्रह दृष्टिगोचर होता है, “देख गनपत” न मैं ब्राह्मण हूँ, न मैं चमार, न मैं हिन्दु हूँ, न मुसलमान, न ईसाई हूँ न पारसी पर मैं सब हूँ । और कुछ भी नहीं हूँ । मैं बारी-बारी हिन्दु, मुसलमान ईसाई बनकर देख चुका हूँ, पर मुझे ते कोई फरक नहीं लगा रे और अब मैं कुछ नहीं हूँ ।”<sup>१२</sup>

## ❖ भारतीय वैदिक साहित्य में धर्म की व्याख्या

भारतीय वैदिक साहित्य में धर्म की व्याख्या इस प्रकार दी गई है - धर्म वह है जो हम सब को एवं सम्पूर्ण विश्व को धारण करता है । सामाजिक स्थिति के निर्माण में परम्पराएँ विशेष सहायक होने के कारण कालान्तर में परम्पराओं का पालन भी धर्ममान लिया गया है । धर्म द्वारा

शासित होने कारण व्यक्ति धर्म एवं आनुषंगिक व्यवस्थाओं की रक्षा के लिए धर्म संबद्ध रहता है। उक्त तथ्य का उद्घाटन नाटककार ने “एक और द्रोणाचार्य” में द्रोणाचार्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। एकलव्य के सत्याग्रह पर गुरुदक्षिणा के रूप में द्रोणाचार्य उसके दाइने हाथ का अँगूठा माँगते हैं तब अर्जुन के इस सबाल पर हि एकलव्य से अँगूठा क्यों माँगा ?” द्रोणाचार्य कहते हैं। “धर्म की व्यवस्था के लिए” जानते नहीं शूद्रों और वनवासियों को धनुर्विद्या की शिक्षा नहीं दी जा सकती।”<sup>१३</sup>

धर्म का सम्बन्ध मानव कल्याण से हैं। राजनीति के साथ धर्म को सम्बद्ध कर देने से जनसमाज का व्यापक अहित होता है। धर्म ने राजनीति के साथ जुड़कर सदैव ही जनता का शोषण किया है। वस्तुतः राजनीति द्वारा कभी भी धर्म का हित नहीं हो सकता है। “कालजयी” में कालजयी (राजा) धर्म का इस्तेमाल निजी राजलिप्सा और महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए करता है और भोली भाली जनता की स्वस्थ मानसिकता को पड़ोसी महादेश के विरुद्ध धर्मोन्माद से भर देता है।<sup>१४</sup>

जनता के साथ छल कपट कर उन्हें वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ रखनेवाले निरंकुश शासक कालजयी की घृणित राजनीति का पर्दाफाश करते हुए न्यायकेतु के कथन हैं – धर्म के नाम पर जनता की समाजिक और आर्थिक अकांक्षाओं को पराजित करते हैं।”<sup>१५</sup>

## ❖ धार्मिक मान्यताएँ

आज धार्मिक मान्यताएँ वैज्ञानिक प्रभाव एवं संशोधन के तहत परिवर्तित हो चली हैं। पूजा-पाठ, देवोपासना और ईश्वर-विषयक चिन्तन एवं धार्मिक मूल्यों में भी अन्तर आया है। इसका सीधा प्रभाव जातिवाद एवं अस्पृश्यता सम्बन्धी संकीर्ण मानसिकता पर भी पड़ा है। परम्परागत रूप से धार्मिक ठेकेदारी करने वाले पण्डित, पुजारी और पुरोहितों के

जात्यादिभेदन कुछ-कुछ ढीले हुए हैं । इसका तादृश्य चित्रण नाटककार ने “बाढ़ का पानी” नाटक में किया है । अछूतों के मन्दिर में प्रवेशपर आपत्ति जताने वाले पण्डित ही उनके लिए मन्दिर के द्वार खुले रखने की घोषणा करता है – “नहीं बटेसर, यह मन्दिर अब सबके लिए खुला रहेगा । मैं खुद खोलूँगा इस मन्दिर के द्वार सबके लिए...”<sup>१६</sup>

धर्म के साथ मन्दिर की संकल्पना और मन्दिर के साथ आध्यत्मिकता की संकल्पना मूलरूप से सम्बन्ध है । मन्दिर प्राचीन भारतीय आर्य संस्कृति की न केवल पहचान है । और न केवल आरती पूजा, प्रसाद और कर्मकान्ड ही हमारे पूर्वजों का इष्ट है, बल्कि उसके साथ मानव के आध्यात्मिक विकास की उज्ज्वल भावना सन्निहित है । “खजुराहो का शिल्पी” में राजा यशोवर्मन मन्दिर की आवश्यकता समझाते हैं, “चण्डवर्मा” क्या आप सोचते हैं कि सारा संसार योगियों ओर सन्यासियों से भरा पड़ा है ? पूरा संसार यदि इतने दृढ़ चरित्र लोगों का होता, यदि प्रत्येक व्यक्ति वैराग्य की इतनी ऊँचाई पर होता, तो न किसी धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता होती, न मन्दिरों की ।”<sup>१७</sup>

परम्परागत मान्यताओं के आधार पर विभिन्न मानव वर्गों में अजीबों – गरीब रूढ़ियों धर्म का आड लेकर पनपती रहती है, जिन्हें कोई वैज्ञानिक सर्म्थन प्राप्त नहीं होता । अतः वे अन्धविश्वासी कहलाती है । भोले अन्धविश्वासी ग्रामीण दैवीय प्रकोप अथवा वरदान पर विश्वास रखते हैं ।<sup>१८</sup>

“बाढ़ व पानी” नाटक में बाढ़ ग्रस्त ग्रामीणों की सोच है कि बाढ़ आना दैवी प्रकोप है और यह दैवी प्रकोप बिना भोग लिए कभी शान्त नहीं होता । जैसे गनपत का यह कथन ग्रामीणों के मन पर पड़ी अन्धविश्वास की स्थिति को उजागर करता है “इसमें घबराने की क्या बात है ।” ऐसा तो हर साल होता है । बीस-पच्चीस झोंपड़े बह जाते हैं, दस पाँच ढोर,

एक दो आदमी फिर सब जैसे का तैसा एक दो जीव लिए नर्मदा मैया मानती थोड़ी हैं ।”<sup>१९</sup>

धर्म-निरपेक्ष व्यक्ति की कल्पना मुश्किल है । प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने धर्म से प्रभावित हैं । वह धर्म चाहे ईश्वर विषयक हो, चाहे कर्तव्य विषयक परंतु निज धर्मका पालन ही किसी भी प्राणी के लिए श्रेयस्कर होता है । समय, संयोग और परिस्थिति के अनुसार धर्म के प्रति एक निष्ठ न रहने वाले युवकों को एवं पण्डित को लतड़, ते हुए “चेहरे” नाटक के भवानीजी कहते हैं । “अगर विपत्ति के समय धर्म बदल जाये तो वह धर्म कैसा ? पण्डित, जी आप गीता जानते हैं उसमें लिखा है । स्वधर्मे निधनं श्रेयः यानि अपने धर्म में मर जाना उचित है ।”<sup>२०</sup>

‘मोडर्न’ युग में पुराने आदर्शों और धार्मिकता को भी लोग भूलते चले जा रहे हैं ऐसे वक्त किसी व्यक्ति की आदर्श जीवन प्रणाली जैसे संध्यापूजन, ब्राह्ममुहूर्त में उठ जाना, शीतल जल से स्नान करना, गीता का पाठ-पाठन करना आदि दिनचर्या पर किसी को आश्चर्य न हो तोही शंका । “नयी सभ्यता: नये नमूने” में स्मृति कृष्ण के इस धार्मिक एवं आदर्श जीवनचर्या पर महद् आश्चर्य व्यक्त करती है, “क्या कहा, गीता पाठ ? आजकल का जमाना और गीता पाठ... विश्वास नहीं होता जी .. ।”<sup>२१</sup>

इस तरह का विषमय होना धर्म विषयक मान्यताओं में हो रहे परिवर्तन हैं । कुछ लोग तो धर्म के नाम पर फायदा उठाते हैं क्योंकि धर्म के नाम पर उल्टा-सीधा, गलत-सलत सबकुछ चलता है । इसलिए कि धार्मिक आस्था को भूला देना मानव के बस की बात नहीं । ऊधों सामाजिक, ऐतिहासिक फिल्म की अपेक्षा धार्मिक फिल्म निर्माण करने पर बल देते हुए इसके समर्थन में उचित तर्क प्रस्तुत करता है । “धार्मिक चित्र बनाने के बहुत से फायदे हैं, सर एक तो फिल्म सस्ते में बनती है । दूसरे धर्म और भगवान के नाम पर खूब पैसा इकट्ठा होता है । राधा, कृष्ण,



हनुमान, रामचन्द्रजी आदि के नाम पर जितना चाहे कमा लीजिए । औरतें तो और मरती हैं, धार्मिक खेल देखने के लिए । उन्हें सिनेमा देखने अकेले नहीं जाने दिया जाता इसलिए घर के लोग भी देखते हैं । पर समाजिक चित्रों में घर के मर्द औरतों को यह कहकर टाल देते हैं कि खेल औरतों के देखने के लायक नहीं है ।”<sup>२२</sup>

ऊधों का यह अभिप्राय वस्तुतः धर्म को व्यापार का केन्द्र समझ पैसे बटोरने वालों पर व्यंग्य है, जिनके गैर इस्तेमाल से धर्म आज आलोचना का विषय बना है । “कालजयी” नाटक में नाटककार ने दर्शाया है कि मानव को कुचलनेवाला आततायी कालजयी भी धर्म और धर्मशास्त्र की दुहाई देकर अपनी काली करतूतों को ढ़कने के साथ आगन्तुक को रीझाने की कोशिश करता है । “यह सच है । मृत्युंजय कि मेरे राज्य में अन्याय नहीं है, किन्तु आप भूलते हैं, धर्मशास्त्रों में लिखा है । कि न्याय करना राजा का कर्तव्य है । धर्मग्रन्थों की लाज रखने के लिए ही मुझे न्याय करना होगा सुन्दरी, तुम्हारा नाम क्या है ?”<sup>२३</sup>

वस्तुतः भारतीय समाज में अतीत काल से ही धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । इसलिए इस मानसिकता को वह पूरी तरह नहीं छोड़ पा रहा है । अतः कहीं पर वह अन्धश्रद्धा को ही धर्म समझकर पूजता रह गया है । परिणामतः चतुर और चालाक लोग धर्म की आड़ में उसका गैरफायदा बराबर उठाते रहते हैं ।

## ❖ नैतिकता का सामाजिक आदर्श

नैतिकता आचरण का प्रतिरूप है । “नैतिकता अथवा आचार – नीति समाज के मानदण्डों या आचरण के नियमों के कुल जोड़ को कहते हैं, जो जनता को प्रतिबिम्बित करते हैं ।”<sup>२४</sup>

इस दृष्टि से नैतिकता एक समाजिक आदर्श है। इसका लक्ष्य में समाज में सुधारवादी दृष्टिकोण का विकास करना है। प्रचीन समय में धर्म और नीति में विशेष अन्तर नहीं था। लेकिन विज्ञान के विकास के साथ – साथ दोनों में पर्याप्त अन्तर आ गया है। वर्तमान युवा पीढ़ी ने इन्हीं परिवर्तित नैतिक मूल्यों को अपने जीवन का आधार बनाया।

पम्परागत नैतिकता में संयम, सदाचार, सत्य, अहिंसा, दया, त्याग, पवित्रता आदि मूल्य थे। मानव जीवन पर इनका व्यापक प्रभाव था, परन्तु बदलते वक्त ने मानव के व्यक्तित्व पर इनके असर को कम कर दिया है।”<sup>२५</sup>

आज भी व्यक्ति की चेतना आदर्शों के समर्थन और उनकी रक्षार्थ निरन्तर संघर्ष कर रही है। हाँलाकी यह संघर्ष अधुनातन परिवर्तित जीवन मूल्यों के युग में व्यक्ति को सिवाय घुटन के कुछ नहीं दे पाता है। कभी-कभी तो उसे आस पास की दुनिया के दवावतले आकर अपने आदर्शों का गला घोट देना पड़ता है। उस मर्माहत स्थिति से ऊबर नहीं पाता “एक और द्रोणाचार्य” नाटक का नायक अरविन्द ईमानदार एवं आदर्शवादी प्रोफेसर है। वह अपने व्यवसाय को पवित्र मानता है और पवित्र रहने देने का पक्ष-धर है। परन्तु उनकी पत्नी लीला और मित्र यदू को उनका नौकरी को दाँव पर लगाकर आदर्श की रक्षा करनेवाला रवैया अच्छा नहीं लगता। वह प्रिन्सिपल के पद और सुख सुविधा के लिए अरविन्द पर दबाव डालती है।

अन्ततोगत्वा अरविन्द को पारिवारिक सुख सन्तोष का विचार करके अपने नैतिक आदर्शों का बलिदान देना पड़ता है। उनकी आत्मा मर्माहत पीड़ा का अनुभव करती रह जाती है, “कह तो रहा हूँ, आत्म ज्ञान हो गया है मुझे। अपने क्षुद्र होने का आत्म ज्ञान सड़े हुए आटे में बिलबिलाने वाला कीड़ा होने का आत्म ज्ञान प्रेसिडेंट के फोन ने मुझे अपनी तस्वीर

दिखा दी समझौते के फन्दे पर अपने आप को पच्चीसों बार लटकाने वाला मैं ... दूसरों की नकाब उतारने की कोशिश में खुद नंगा हो जाने वाला मैं ... मुझ पर थूकों ... पच से थूकों .. ।”<sup>२६</sup>

“मानव छला गया” पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधुनिक भावबोध का स्वर ।<sup>२७</sup>

भारत की प्राचीन वाङ्मय विभूति एवं उसकी पौराणिक साहित्य सम्पदा, इस बात की साक्षी है कि आर्यों का सर्वप्रथम सांस्कृतिक केन्द्र, “ब्रह्मावर्त” एक ऐसी आदि कालीन सामाजिक व्यवस्था का पालक रहा था । जो सुख-समृद्धि, पारस्परिक सहयोग एवं सद्भाव के सुन्दरतम सुमनों से प्रफुल्लित सुरभित थी । यह “ब्रह्मावर्त” भारत भूमि का अति पुरातनकाल से ही सर्वाधिक पावन भू-भाग माना जाता था । मनु ने अपनी आचार-संहिता में, इसी भू-भाग के आचार विचार को सर्वश्रेष्ठ माना है । सम्भवतया यही प्रदेश मानव जाति के द्वारा सांस्कृतिक विकास की ओर अग्रसर होने का, सर्वप्रथम प्रयोगस्थल बना था ।

कहा गया है कि ब्रह्मावर्त ही, विश्व के सर्वप्रथम लोक नियामक एवं आदि राज कहलाने वाले चक्रवर्ती सम्राट “पृथु” की कर्मभूमि एवं यज्ञभूमि बना था । उन्होंने यहाँ की स्थित “पृथूदक” नामक ऐतिहासिक पौराणिक सांस्कृतिक केन्द्र पर अपने सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किए थे । उस अवसर पर उन्होंने “ब्रह्मावर्त” प्रदेश से आमन्त्रित सहस्रों ब्राह्मणों को, निरन्तर बारह दिनों तक अनवरत, अपने हाथों से जल पिलाया था । इसी कारण इस स्थल का नाम “पृथूदक” पड़ा था । आजकल इसे लोक भाषा में “पेहोवा” कहा जाता है अब यह एक छोटा सा कसबा है जो अब हरियाणा राज्य के कुरुक्षेत्र जिले के अर्न्तगत आता है ।

“पृथूदक” को भारत के पुरातन भूगोल और इतिवृत्त में “विनशन” भी कहा गया है, क्योंकि यहीं पहुँचकर पावन देवनदी सरस्वती, सहसा मरु

भूमि में विनष्ट या विलुप्त हो गयी थीं । “पृथूदक” ब्रह्मावर्त के दक्षिणपूर्वी सीमा पर स्थित है और लगभग ३० प्रतिशत अक्षांश रेखा पर पड़ता है । महर्षि पतंजलिने “आदर्श” को आर्यावर्त की पश्चिमी सीमा परस्थित लिखा है “ब्रह्मावर्त” की इस पुण्यभूमि के शतावधि विवरणों से प्रायः सभी पुराण भरे पड़े हैं । पौराणिक बाडमय में विस्तार पूर्वक बताया गया है कि किस भाँति आदिराज “पृथू” ने कन्या कुमारी से हिमालय तक की वनसंकुल एवं ऊँची उपजाऊ पृथ्वी को” कृषि भूमि के रूप में परिवर्तित किया था ।<sup>२८</sup>

उसे मानवों के लिए रहने योग्य, हिंसक पशुओं एवं आततायी बर्बर या असुर समूहों से, निष्कण्टक बनाकर उत्पात रहित एवं सुरक्षित बनाया था । “पृथू” ही विश्व के सर्वप्रथम “कृषि” से आविष्कारक थे ।

आदि राजपृथु के इस अद्भुत पराक्रम की गौरवगाथाओं को ब्रह्मावर्तीय उच्चस्तरीय संस्कृति को रोमांचित करनेवाली इति कथा को भारत भूमि के शीर्ष इतिहास काव्यों के रससिद्ध कवीश्वरो ने “रामायण” एवं “महाभारत” की गाथाओं में गाया है । महाकवि कालिदास के अमरकाव्य ग्रन्थों में, “ब्रह्मावर्त” के पुरातन भूगोल की रूप रेखाएँ मिल जाती है । संस्कृत भाषा के प्रथम महान गद्य गाथाकार महाकवि “बाण” ने अपने “हर्षचरित्र” में ब्रह्मावर्त में अवतरित होनेवाली देवी सरस्वती का आख्यान दिया है ।

ऐसी पावन एवं पुराणगाथाओं में संस्कृत, ब्रह्मावर्त पुण्य भूमि में साहित्य साधना एवं साहित्य सर्जना में मग्न, जन्मजात प्रतिभा से समन्वित ख्यातनाम उपन्यासकार, हिन्दी भाषा एवं साहित्य के धुरन्धर मनीषी तथा पटियाला स्थित पंजाबी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य डॉ. मनमोहनसहगल को ब्रह्मावर्त की इन पुरातन यशोगाथाओं ने गहराई से प्रभावित किया है । उन्होंने उसकी पौराणिक आध्युच्च स्तरीय संस्कृति को, आधुनिक विश्वजनीन परिस्थितियों के आलोक में देखा है । उनकी अनूठी औपन्यासिक कृति “मानव छला गया” ।

ईस विलक्षण पुरातन ब्रह्मवर्तीय जनसंस्कृति के इस कथात्मक प्रत्याख्यान का प्रारम्भ उन्होंने “कल्पना” नामक आमुख में इस भाँति किया है – “प्रायः सोचता हूँ “बुद्धि” न होती, तर्कपूर्ण उलझने न होतीं, ईर्ष्या द्वेष, वैर, विरोध न होता तो यह संसार कितना सुखी और आकर्षक होता ।”<sup>२९</sup>

ऐसे ही मधुर काल्पनिक मानव समाज की कल्पना ने उन्हे भारत के पुरातन पौराणिक वाङ्मय की ओर आकर्षित किया, जिसकी आदर्श ब्रह्मवर्तीय संस्कृति की गाथा को, उन्होंने अपनी कथाभूमि बनाया है । इसी “कल्पना” उपन्यास की मानसिक समायोजना में वे आगे लिखते हैं ।

“मनुष्य सारस्वत होकर, साधना की शक्तियों से वंचित हो गया । भोग विलास... के प्रयासों में, लक्ष्मी रहित होने के कारण, यह असमर्थ रहा, और परिणामतः वह दो पाटों में पिसते रहने की नियति आज तक भोग रहा है बेचारा ।”<sup>३०</sup>

डॉ. सहगल ने मानव की आधुनिक नियति की तुलना जब अतीत काल के उस मानव से की जो सुखी, सम्पन्न और सन्तुष्ट जीवन बिता रहा था, तो उनके रचनात्मक आधुनिक बोध ने उन्हें एक ऐसे विलक्षण उपन्यास की रचना में प्रवृत्त किया जिसका नाम उन्होंने “मानव छला गया” रखना पसन्द किया ।

डॉ. सहगल ने अपने इस उपन्यास के प्रथम अध्याय “देवलोक” में, देवलोक की सुर संस्कृति की एक झलक दी है । तत्पश्चात् उन्होंने उपन्यास के द्वितीय अध्याय “मानव मार्कण्डेय” का प्रारम्भ इन शब्दों के साथ किया है, साधकों की धरती मृत्युलोक । यहाँ सर्वस्व नश्वर है । जीवन नाशवान् है । जीवन की विभूतियाँ क्षणिक हैं ... कालजयी सुन्दरता, इहलोक में नित्य परिवर्तनीय है – जन्म से मृत्यु तक, एक अनवरत यात्रा, उत्थान पतन की

अमित कथा, मानव की अदम्य लालसाओं की अंतहीनता में पलने वाला मानवीय अन्त ? यही सब, मृत्युलोक की लौकिकता है । चारों प्रकार के जीव, इस धरती पर जन्म और मृत्यु के बीच की दूरी नापते हुए अमरता की ललक से पीड़ित हैं । उन्हें, अमरों के देश से स्पर्धा है । क्योंकि धरती के प्राणी अमर नहीं ? क्यों देवताओं के चिरमुख का उन्हें अभाव है ? क्यों न सुख और दुख का समान विभाजन हो ? कर्मशील मानव, भोगलिप्त देवताओं से, महनीय दिशा में जीता है, फिर भला यातना, पीड़ा, करुणा, शोक, सब मनुष्य के ही बाँट में क्यों ? इसी प्रश्न चिन्ह का हल, धरती के जीवोंने कर्म की साधना में खोजना चाहा ।

प्रकृति – संगिनी के साथ विचरण करते हुए ... जीवन संगीत के ये समस्त पहलू मनुष्य की अनमोल निधियाँ हैं, फिर भी उसे जरा जर्जरित शरीर से विरक्ति है, अनुगामी मृत्यु से भय है, वह चिर यौवन – कामी है साधना को शक्ति से देवलोक का वैभव, धरती पर लाने के लिए उसमें अन्तहीन कामना है । इसी कामना से परिचालित हुए, अपनी कोटि – कोटि निधियों से अनभिज्ञ मनुष्य, मृत्युलोक के वैभव से विमुख, अमरलोक की मृत्युहीनता की अभिलाषा से पीड़ित है । वह जानता भी है कि मृत्यु वरदान है । वार्धक्य का अन्त, यदि मृत्यु नहीं, जीवन की जर्जर डोरी यदि न टूटे, तो पुनः बाल्यावस्था ...कहाँ से मिलेगी मनुष्य को ?... मृत्यु, नवीनता की द्योतक है ... फिर भी मनुष्य, मृत्यु के शीतल स्पर्श की कल्पना से भयाकुल रहता है.....मृत्युका भय मानव को भीतर..ही भीतर खाये जा रहा है । कोई बचाव नहीं है इस निर्मम वृत्ति से ? कैसी बिडम्बना है मनुष्य की ?<sup>३९</sup>

उपर्युक्त अवतरण से यह स्पष्ट हो जायेगा कि इतनी रोचक शैली में लिखे जाने पर भी कितने गम्भीर और जटिल मानव सत्तों का इसमें विचार विमर्श किया गया है ।

“मानव छला गया” नामक इस अनूठे उपन्यास की मुख्य विशेषता वस्तुतः यही है कि इसकी कथावस्तु प्रायः प्रागैतिहासिक एवं पौराणिक पृष्ठभूमि पर आधारित है, इस दृष्टि से ध्यान पूर्वक अनुशीलन करने पर सम्भवतया “मानव छला गया” उपन्यास, आधुनिक हिन्दी उपन्यास सर्जन की, एक अद्वितीय उपलब्धि माना जायेगा । उपन्यास की इस अध्यतन परिचिन्ता से हटकर, एकबार फिर उसके पौराणिक परिवेश में लौटता जाए ।

उपन्यासकार ने मार्कण्डेय को नायक बताया है । साथ ही उन्हें साधको की इस धरती मृत्युलोक की कर्मसाधना के प्रत्यक्ष विग्रह के रूप में चित्रित किया है । मार्कण्डेय की चर्चा अनेक पुराणों में अनेक प्रसंगों को लेकर की गई है ।

मार्कण्डेय द्वारा शाषित ब्रह्मावर्तीय मानव समाज में सारस्वत अर्थात् तर्क-वर्तक बुद्धि के प्रवेश की प्रक्रिया को उपन्यासकारने, वृहन्नारदीयपुराण में वर्णित, सरस्वती के भूलोक में अवतरण की कथा के साथ संयुक्त किया है । उन्होंने “नगाधिराज देवतात्मा” हिमालय की शिवालिक पर्वत माला से, अम्बाला के उत्तरपूर्व में उतरती हुई देवनदी सरस्वती की धारा के पथ का विवरण प्रस्तुत किया है । पुरातन भूगोल के अनुसार, यह स्थान “साधौरा” नामक छोटे कस्बे के पास है ।

वहाँ से सरस्वती की धारा स्थान्नीश्वर (थानेश्वर) के पास स्थित, मार्कण्डेयमुनि के आश्रम को प्रक्षालित करते हुए आगे बढ़ती है । पुरातन भूगोल के अनुसार सरस्वती की यह धारा, थानेश्वर के पास है, मार्कण्डेय

नामक सहायक नदी के साथ-साथ बहती है । और इसी प्रकार बहती हुई वह दक्षिण पूर्वीय दिशा में आती है और “पृथूदक” (जिला कुरुक्षेत्र) के पास, मरुभूमि में गुम होजाती है ।

“मानव छला गया” के विज्ञ उपन्यासकार ने, अपनी कथावस्तु का मुख्यस्थल, शिवालक पर्वत माला को उपत्यका में स्थित, एवं सरस्वती की पावनदिव्य धारा से प्रक्षालित, महर्षि मार्कण्डेय के आश्रम को बनाया है इस भाँति, देवों एवं मानवों के दो लोको के पात्र पात्राओं से क्रियान्वित इस उपन्यास में, कितने अपूर्व कौशल के साथ, पौराणिक गाथाओं तथा मानव की अध्यतन नियति को जोड़ा गया है । उसे मूल उपन्यास के पारायण द्वारा ही, ठीक ठीक समझा जा सकता है । उपन्यासकार के कथारचना शिल्प के चमत्कार से, इस भाँति, पौराणिक गाथाएँ, भौगोलिक नदी पुराण, अनुभूतियाँ, सभी घुलमिल कर एकमेल हो गई है ।

“मानव छला गया” उपन्यास के प्ररम्भ में (द्वितीय अध्याय में ही) सरल, अकपट, आर्यों को संतुष्ट ब्रह्मावर्तीय संस्कृति को, प्रतिबिम्बित किया गया है । उसकी आध्य मनोरम झाँकी की अनुमति, उपन्यास के निम्नांकित अवतरण के द्वारा की जा सकेगी :- “ब्रह्मावर्त” का समूचा प्रदेश नीति और भावना के सूत्र में बाँधा, देवलोक की अमरता का स्मरण करने के लिए कर्म-साधना-रत्न है । जननायक मार्कण्डेय अतीत रम्य वनस्थली में निवास करते हैं । एक बड़े “प्लक्ष” ।<sup>३२</sup>

वृक्ष की मधुर छायामें मार्कण्डेय ने आश्रम बनाकर रखा है । उनके के निवास के निकट वर्ती प्रदेश में, आर्यजाति के कुछ और भी परिवार आ बसे है, उनमें से अधिकतर लोग क्षत्रिय वंश के हैं - ब्राह्मण, वैश्य, और शूद्र भी हैं । कृषि उनका प्रमुख व्यवसाय है । व्यापार और लेन देन भी



होता है । शूद्र जन्म प्रायः श्रम-विक्रय करते और भोजन का साधन जुटाते हैं, भगवद भजन, ब्राह्मण के जीवन का सन्तोष है । कर्मक्षेत्र में प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्यों और अधिकारों को पहचानते हुए कार्य करता है –लोभ की प्रेरणा, ममत्व की लिप्सा, अहंकार की हूक, अथवा ईर्ष्या का उत्पात, प्रजा की किसी भी इकाई में नहीं । समूचे ब्रह्मावर्तमें शान्ति, सुख और पारस्परिक सहयोग के वातावरण का शासन है । जनमन में अपनी आर्थिक कठिनाई, निर्धनता अथवा अभावों का क्षोभ नहीं जनता यथा-लाभ सन्तुष्ट है ।”<sup>३३</sup>

उपन्यासकार ने उपर्युक्त अवतरण के द्वारा अपनी कथानक आ योजना को अग्रसर करते हुए, यह बताने का एक साहसिक एवं चामत्कारिक रचनात्मक प्रयोग किया है कि किस भाँति, ऐसी सुखी, समृद्ध एवं सन्तुष्ट आर्यों की इस जनसंस्कृति को, उनके द्वेषी एवं प्रतिस्पर्धी “देवो” ने प्रदूषित किया आर्यों ने ही ब्रह्मावर्त वासियों को सारस्वत बनाया अर्थात् उन्हें अपनी तर्कबुद्धि एवं वाक्चातुर्य के द्वारा शनेः-शनैः ईर्ष्या-द्वेष, वैर विरोध से युक्त, भोग विलास को मृग मरिचिका से लालायित लुब्ध मानवों में परिणत कर देने में सफलता प्राप्त की वे ही इस भाँती, मानव को आधुनिक कुण्ठाओं एवं संत्रासों से ग्रस्त नियति का, सूत्र पात करने वाले बने ।

प्रश्न यहीं आ उपस्थित होता है कि मानव सुख सन्तोष के द्वेषी, ये देवजाति के लोग कौन थे ? क्या पौराणिक वैकुण्ठ लोक के अतिरिक्त, वे किसी ब्रह्मावर्त के पड़ोसी आर्योंतर प्रदेश के वासी तो नहीं थे ।

वैसे तो पुरातन पुराणों एवं महाकाव्यों में ही भारत को उत्तरी पार्वत्य ऊँचाइयों पर बसने वाले देवताओं के कितने ही उल्लेख मिलते हैं । भारत भूमि के सर्वप्रथम प्राचीन भूगोल के वैज्ञानिक अनुसन्धाता, पं. जयचन्द्र

विद्यालंकार ने भी लिखा है । कि ब्रह्मावर्त की पश्चिमोत्तर सीमा पर “देवसभ नगर पृथुदक” को ही ३० प्रतिशत अक्षांश रेखा पर अवस्थित था, किन्तु उसको और पृथुदक की दूरी कितनी थी ? यह बताना अब सम्भव नहीं है, क्योंकि आधुनिक समय में “देवसभ” नाम के किसी कस्बे या गाँव का अभी पता नहीं चल पाया है ।

“मानव छला गया” उपन्यास में आई हुई अनेकानेक पौराणिक गाथाओं में सर्व प्रथम है, देवी सरस्वती के भूलोक में अवतण की वह विस्तृत कहानी, जिसे प्रकारान्तर से महाकवि बाण ने अपने “हर्षचरित” की प्रस्तावना में तथा काव्य मीमांसाकार, आचार्य राजशेखर ने अपने काव्य ग्रन्थ की रूपमें भी सदियों पहले (अपनी महान कृतियों अर्थात् “हर्षचरित” एवं काव्य मीमांसा में) दिया था । बाण ने माना है कि देवी सरस्वती को दुर्वासा मुनि के शाप के कारण धरती पर आना पड़ा देवी के पिता ब्रह्माजी ने उनके शाप की अवधि कम कर दी और कहा कि ज्योंही सरस्वती भू लोक में, पुत्र को जन्म देगी, वे शाप मुक्त हो जायेंगी । देवी सरस्वती पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् ही तुरन्त ही स्वर्ग को लौट गई । राजशेखर के अनुसार देवी सरस्वती ने पुत्रोत्पत्ति के लिए, हिमालय पर कठोर तपस्या की । ब्रह्मा जी ने उनके तप से प्रसन्न होकर उन्हें पुत्रोत्पत्ति का वरदान दिया । देवी ने तब अपने पुत्र “काव्य पुरुष” को जन्म दिया । उसे जन्म देने के पश्चात् उन्होंने उस बालक को एक महावृक्ष के नीचे अव्यवस्थित सिला तल पर लिटा दिया । और स्वयं आकाश गंगा में स्नान करने चलीं गई । उधर यज्ञादि के लिए समिधा संचयन के लिए महामुनि उषना या शुक्र आ निकले वे उस निरीह बालक को, अपने आश्रम में लिवा ले गये ।<sup>३४</sup>

उपन्यासकार डॉ. सहगल ने, देवी सरस्वती के भूगोल के अवतरण की गाथा को “स्कन्दपुराण” एवं “वृहन्नारदीय” से लिया है जिसके अनुसार देवी

सरस्वती को, देवताओं के आग्रह एवं आदेश के कारण “और्ध” को घट रूप में धारण करके पृथ्वी तल पर उतर आना पड़ा । यहाँ न देवी सरस्वती, राजशेखर के अनुसार, स्वेच्छा से, धरती पर आती हैं और न बाण के अनुसार दुर्वासा मुनि के शाप से विवश होकर ही । वे देवताओं के मंगल के लिए और उन्हीं के आदेश को स्वीकार करके, भूलोक में “और्व” को ला छोड़ने को आयीं थीं । उपन्यासकारने, अपने उपन्यासारंभ से पहले, “आधार” नामक प्रस्तावनात्मक “आमुख” में श्री बृहन्नारदीयपुराण के अर्न्तगत आये हुए श्रीसरस्वती महा नदी निर्णय नामक प्रसंग के कुछ अंशों को उद्धृत किया है—

अर्थात् इसके पश्चात् इधर उधर कुछ चक्कर खाती हुई वह प्लक्षवृक्ष (अश्वत्थ की जाती का एक वृक्ष विशेष जिसे आजकल लोक भाषा में “पिलखन कहते हैं और जो शिवालक पर्वत माला के चरण प्रदेश में, चन्डीगढ से देहरादून के बीच में बड़ी सख्या में पाया जाता है) कि अधोमूल से उद्भूत देवी सरस्वती, धर्मनिष्ठ मुनि का समीप्य प्राप्य करती हुई मुनि के आश्रम के सान्निध्य में अवस्थित सरोवर को लबालब करती हुई, फिर पश्चिम दिशा की ओर बढ़ चली ।”

इस भाँति “श्री बृहन्नारदीय सूत्र” में सरस्वती नदी के दिव्य लोक से पृथ्वीतल पर उतरने के मार्ग का भी निर्देश कर दिया गया है । जिसके तटपर एक विशाल पिलखनवृक्ष स्थित था । वहीं मार्कण्डेय का वह पुराण विश्रुत आश्रम स्थित था, जिससे कि उपन्यासकार ने अपने इस अनुपम उपन्यास की कथावस्तु का प्रधान कार्य स्थल बनाया है ।

उपन्यास की कथा के अनुसार, देवी सरस्वती एक मानवीय नारी की आकृति धारण करके “अनुपम सौन्दर्य की प्रतिमा” के रूप में मुनि

मार्कण्डेय के समक्ष उपस्थित हुई । उसके हाथ में “और्वसंयुक्तघट” था । किन्तु उनके आगमन से ठीक पहले ही मार्कण्डेय का आश्रम अदृश्य नूपुर की सुमधुर ध्वनि से गुन्जायमान हो गया ।

आचार्य राजशेखर ने जिस प्रस्तावित आख्यान के रूप में लिखा है कि काव्य पुरुष को जन्म देने के पश्चात् देवी सरस्वती उस बालक को वृक्ष के नीचे अवस्थित शिला तल पर लिटा कर चली गई । उधर महामुनि “उषना” या शुक उस निरीह को अपने आश्रम में लिवा ले गये ।

“देवी सरस्वती, ने, और्वघट को प्लक्ष वृक्ष के मूल में ही संजोकर अपने लिए मुनि मार्कण्डेय की कुटिया में स्थान बना लिया ।”<sup>३५</sup>

उपन्यासके अन्तिम दो पृष्ठों में “सरस्वती” “मार्कण्डेय” तथा “पृथूदक” के भौगोलिक तत्त्वों से सम्बन्धित तथ्यों को, कुशल उपन्यासकार ने पाठक के समक्ष इस भाँति संयुक्त कर दिया है ।

महर्षि मार्कण्डेय के अनुशासन में रहनेवाले प्रजा जन ने उनके प्रति विद्रोह किया । उसी विप्लव में देवी सरस्वती “प्रजा” की पकड़ से मुक्त होने के लिए जल प्रवाह बनकर प्लक्ष के मूल से वह निकली । मार्कण्डेय भी अपनी तपस्या शक्ति के चमत्कार से, जलधारा में परिवर्तित हुए, सारस्वत प्रवाह का पीछा करने लगे । तब मार्कण्डेय की बृहत चेतना पुनः सजग हो उठती है । उसकी धारा रूपी भुजाएँ, सरस्वती के लहराते आँचल को छू लेने को मचलती है । मार्कण्डेय प्रवाह विखर कर सरस्वती में विलीन होने को ललकता है । दोनों एक हो जाते हैं ।”<sup>३६</sup>

महर्षि उनकी बातें सुन रहे थे – बोले, “धरती पर आकर आप ने क्या प्रपंच रचा और क्यों ? मैं नहीं जानता किन्तु इतना जानता हूँ कि

कर्मलोक चित्र का उज्ज्वल पक्ष ही देखने में अधिक विश्वास रखता हूँ—ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, वासना, उत्थान पतन आदि सबमें, जीवन की सहर्ष शील शक्ति की वृद्धि निहित है ।”

उन्होंने फिर कहा बुद्धि तथा अग्नि, अब मानव जीवन के विशिष्ट मूल्य बन चुके हैं देवता कितने ही छलिया हों, मानव उनके योग को, सदैव वरदान ही मानेगा । तुम दोनों ही मानव लोक में निर्भय बिचरण करोगे । उद्द्वेलन तो इस महासागर की विशेषता है, किन्तु मर्यादा चिरजीवी है ।”<sup>३७</sup>

“मानव छला गया” उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता है दार्शनिक तत्त्वों, मानव मूल्यों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर उघाड़कर, संकल्प और विकल्प रूप के आघात प्रतिघात को उभारना । लेखक का विश्वास प्रिय लगता है कि मानव के अनित्य, क्षणिक सम्बन्ध परिणाम में चाहे कष्टकर हो पर फिर भी देवलोक के नित्य सम्बन्धों से श्रेष्ठ है । मानव अपने त्याग, तपस्या और नैतिक मूल्यों के कारण महान है । मानव अन्तता विजयी होता है और उसका संघर्ष जन्मजन्मान्तरों तक भी चले तो कोई चिन्ता नहीं । यह तो साधना का लोक है । फिर भला मानव क्यों हारे-हारने की मानसिकता से उसे छूटना होगा और फिर से साधना द्वारा देवत्व को पाना भी होगा । हर पल, हर युग का अपना सत्य है जो हमें परखना होगा और मानव हो जाने की कामना में मानव ही हो जाना है ताकि फिर कोई छल न कर पाये ।

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

- (१) भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, पूर्वाभास, डॉ. प्रसन्नकुमार आचार्य, पृ.१
- (२) भारतीय संस्कृति ओर उसका इतिहास, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ.२०.
- (३) साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति, आचार्य नरेन्द्र देव, पृ. १३५.
- (४) मानववाद और साहित्य, नवलकिशोर, पृ. ५३.
- (५) मानववाद और साहित्य, नवलकिशोर, पृ. ६३.
- (६) Occasional speeches and writing (52-59), Dr. Radhakrishnan, p.286
- (७) “अघतन”, अज्ञेय, पृ. १३
- (८) “पोस्टर” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्रथम वर्ष १९९०, पृ. २९६.
- (९) “पोस्टर” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष १९९०, पृ. २९७.
- (१०) “खजुराहों की शिल्पी” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष : १९९० पृ.८८.
- (११) “खजुराहों की शिल्पी” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय प्र. वर्ष १९९०, पृ.११३.
- (१२) “बाढ का पानी” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष १९९०. पृ. ११७.
- (१३) “एक और द्रौणाचार्य” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-दो, सं. डॉ. विनय, प्र वर्ष : १९९० पृ. १३०.
- (१४) “कालजयी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र वर्ष. १९९०, पृ. १३०

- (१५) “कालजयी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष : १९९०, पृ. १३४.
- (१६) “बाढ का पानी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-दो, सं. डॉ. विनय, प्र. १९९० पृ. १४३.
- (१७) “खजुराहो की शिल्पी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष १९९०, पृ. १०७.
- (१८) “बाढ का पानी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-दो, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष १९९० पृ. ११५.
- (१९) “मूर्तिकार” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-दो, सं. डॉ. विनय, पृ. ६८.
- (२०) “चेहरे” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, पृ. २६८.
- (२१) “नयी सभ्यता : नये नमूने”, शंकर शेष रचनावली, खण्ड-चार, सं. डॉ. विनय, पृ. १५.
- (२२) “नयी सभ्यता : नये नमूने”, शंकर शेष रचनावली, खण्ड-चार, सं. डॉ. विनय, पृ. २५.
- (२३) “कालजयी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, पृ. १३१.
- (२४) माक्सवादी दर्शन, अफनास्येर, पृ. ३४३.
- (२५) बदलते मूल्य और हिन्दी नाटक, डॉ. ओमप्रकाश, सारस्वत, पृ. १८०.
- (२६) “एक और द्रौणाचार्य”, शंकर शेष रचनावली, खण्ड-दो, सं. डॉ. विनय, पृ. ३०३.
- (२७) “मानव छला गया” – डॉ. मनमोहन सहगल, एम. ए. पीएच.डी, डी.लिट., प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला । प्र. वर्ष १९७९
- (२८) भारतभूमि और निवासी, पं. जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ. १९७
- (२९) “मानव छला गया” कल्पना शीर्षक आमुख से पृ. ०२

- (३०) “मानव छला गया” अध्याय २ मानव मार्कण्डेय, पृ. २२
- (३१) “प्लक्ष” अश्वत्थ जाति का एक वृक्षविशेष
- (३२) “मानव छला गया” डॉ. सहगल, अध्याय २ मानव मार्कण्डेय पृ. २४
- (३३) काव्य मीमांसा (आचार्य शेखर) तृतीय अध्याय पृ. १४
- (३४) “मानव छला गया”, अध्याय २ मानव मार्कण्डेय पृ. २९
- (३५) “मानव छला गया” अध्याय ९, पृ. १११
- (३६) “मानव छला गया” अध्याय ८, पराजित मानव पृ. १८४©

©





सप्तम अध्याय  
डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में  
समसामयिकता एवं निष्कर्ष

- ❖ डॉ. सहगल वर्तमान युग के प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार
- ❖ डॉ. सहगल के उपन्यासों में मानवीय मूल्यों की विविधता
- ❖ डॉ. सहगल के उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द

## सप्तम अध्याय

### डॉ. मनमोहन सहगल के उपन्यासों में समसामयिकता एवं निष्कर्ष

डॉ. मनमोहन सहगल ने अपने उपन्यासों में समसामयिकता के विस्तृत आयाम को अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। समसामयिकता का स्वरूप उसके पूरे परिवेश में उन्होंने चित्रित किया है। देश की बदलती हुई स्थिति और मूल्यों के परिवर्तन अवस्थाओं के चित्रण उनके उपन्यासों में सर्वत्र दिखाई देता है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिवर्तन अवस्थाओं के चित्रण के साथ-साथ उपन्यासकार की प्रतिबद्धता समसामयिक बोध को व्यक्त करती है। उन्होंने सदा ही लीक से हटकर समसामयिक समस्याओं और कथ्य को लेकर उपन्यासों की रचना की। प्रसाद की तरह उन्होंने प्राचीन कथा बीजों के नये अन्वय को एक ओर प्रस्तुत किया है, दूसरी ओर उन्होंने समसामयिक सन्दर्भों, विषयों एवं विवादों को ऊठाकर वर्तमान जीवन की व्याख्या भी की है।

#### ❖ डॉ. सहगल वर्तमान युग के प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार

डॉ. सहगल जी वर्तमान युग के प्रतिभासम्पन्न, प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध उपन्यासकारों में से हैं। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में अपनी गहन अनुभूति, शिल्प कोशल तथा चिन्तन शक्ति का परिचय दिया है। लेकिन हम देखते हैं कि उनकी प्रतिभा सबसे अधिक उपन्यासों के माध्यम से मुखरित हुई है। “अबतक लिखे गये उपन्यास एक अच्छे, सार्थक उपन्यास की तलाश में लिखे गये उपन्यास हैं।”<sup>8</sup>

डॉ. सहगल ने भारतीय समाजके अनेक पहलुओं को और अनेक प्रश्नों को नवीन भावबोध के साथ विश्लेषित किया है। ऐतिहासिक तथा मिथकीय कथा प्रसंगों का प्रयोग उन्होंने समसामयिक समस्याओं के स्पष्टीकरण के लिए किया है। ऐसे वक्त उनकी दृष्टि हमेशा वर्तमान पर केन्द्रित रही है। इसी दृष्टि से डॉ. सहगल का उपन्यास-साहित्य सही अर्थों में समसामयिकता लिए हुए हैं।

उपन्यास का विकास युगीन सामाजिक संरचना के अनुरूप हुआ करता है, क्योंकि सामाजिक परिवर्तन के साथ ही उपन्यास-लेखन एवं उसके प्रस्तुततिकरण में भी सामान्यतः परिवर्तन आ जाता है। समाज की संस्कृति, भाषा, सभ्यता, शिक्षा, कला, जाति, धर्म, रूढ़ि एवं सम्प्रदाय आदि प्रथाएँ जन्म विश्वास, दर्शन, राजनीति एवं अर्थनीति आदि सामाजिक घटनाओं का विश्लेषण साहित्य द्वारा ही सम्भव हो सका है। उपन्यास-सृजन का मूल्य आधार जनसमाज है। “सामान्यतः प्रत्येक साहित्यकार का सामाजिक दायित्व होता है, परन्तु दृश्य साहित्य सृजन के कारण उपन्यासकार अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा अधिक उत्तरदायी होता है। वह अपनी सार्थकता तभी प्रमाणित कर सकता है, जबकि वह सामाजिक चेतना का संस्पर्श करेगा। यह कारण है कि उपन्यास प्रायः समसामयिक होते हैं।”<sup>2</sup>

समसामयिकता अपना अलग-अलग अर्थ रखती है। एक तो सामान्य रूप से जब संदर्भ विशेष से जुड़ी किसी बात को समसामयिक कहा जा सकता है, दूसरे अर्थ में समसामयिकता काल विशेष से सम्बद्ध होती है। अर्थात् रचना किसी युग विशेष में अथवा काल विशेष में अपनी अर्थवत्ता रखती है तो उसे समसामयिक कहा जाता है। डॉ. सहगल ने उपन्यास को विस्तृत क्षेत्र प्रदान करते हुए सदा नित नवीन विषयों को लेकर उपन्यास-सृजन किया है। उन्होंने समसामयिक परिवेश में विशेष उपन्यास-कौशल का प्रदर्शन किया है। विषयगत समसामयिकता की दृष्टि से उनकी

औपन्यासिक कृतियों में तत्कालीन ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का प्रत्यक्ष चित्रण हुआ है। समसामयिकता उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी शक्ति रही है। जन मानस को प्रभावित व आन्दोलित करनेवाले प्रश्नोंको सदा उन्होंने बड़ी सर्तकता से प्रस्तुत किया है। “जिन्दगी और जिन्दगी” से लेकर “कालासच” तक की उनकी उपन्यासों की रचनाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनकी उपन्यास-रचनाओं में युगीन यथार्थ और युगीन संवेदना प्रधानरूप से अभिव्यंजित हुई है, जो अपने समयका प्रामाणिक दस्तावेज बनकर समाज और देश के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करती है। आधुनिकता का ऐतिहासिक रचना संदर्भ “अन्नापासवान”। साहित्यकार आधुनिक भावबोध, युगबोध के प्रति सजग सामाजिक व्यक्तित्व होता है। ऐसी स्थिति में वह इतिहास बोध को साहित्य सर्जन हेतु आधार क्यों बनाता है ? वह ऐतिहासिक घटनाचक्र की कृति निर्माण हेतु विषय वस्तु के रूप में क्यों ग्रहण करता है ? इसके पीछे उसकी क्या संवेदना और दृष्टि रहती है ? उसकी आधुनिकता समकालीन प्रासंगिकता क्या है ? उपन्यासकार अपनी कलम से इतिहास को उसके सम्पूर्ण परिवेश में, उसकी विसंगतियों को अन्तर्विरोधों सहित रचनात्मक फलक पर पुनर्जीवित कर देता है। अतीत के सत्य का पुनर्जीवन वर्तमान परिवेश में मनुष्य को जूझने हेतु इतिहास बोध प्रदान करता है। भविष्य के नवनिर्माण को सही दिशा, बोध और धरातल प्रदान करता है।

उपन्यासकार केवल ऐतिहासिक घटना चक्र को यथावत प्रस्तुत करके अपनी रचनाकर्म की इति श्री नहीं कर लेता, वरन् वह कल्पना की तूलिका से उन घटनाओं में जीवन के विविध रंग भरकर साहित्यिक कृति का निर्माण करता है, जिसमें कृतिकार की संवेदनशीलता, जीवनमर्म और आधुनिक भावबोध अनस्यूत रहते हैं जो उसे इतिहास से विलग करते हैं।

उपन्यासकार की सृजनशील कल्पना शक्ति विचार-तत्त्व की आत्मसात कर ही सक्रिय होती है, इसी से उपन्यासकार की कल्पना किन्हीं भ्रमों, ऐन्द्रजालिक का निर्माण नहीं करती, वरन् यथार्थपरक होती है, इसी कारण उपन्यासका कथ्य कृत्रिम, वायवीय और असहज न होकर अकृत्रिम, वास्तविक एवं सहज संवेदनशीलता को आत्मसात किये रहता है ।

डॉ. सहगल की उपन्यास यात्रा के इस सर्वेक्षण से कुछ निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है कि सबसे पहले, उन्होंने सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक तथा सामयिक जीवन की विभिन्न कथाओंको औपन्यासिक रूपमें प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है । वे जीवन के एक पक्ष तक सीमित नहीं रहें, बल्कि उन्होंने भारत के अतीत एवं वर्तमान तथा देश के विविध क्षेत्रों के जन जीवन, उनके संघर्ष एवं द्वन्द्व और उनकी समस्याओं को यथार्थता उपन्यासकार सर्वत्र सन्तुलित एवं विवेकपूर्ण जीवन दृष्टि से कथा पात्रों की सृष्टि करता है और बिना किसी पूर्वाग्रह के हिन्दु- मुस्लिम जैसी समस्याओं पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है । लेखक की यह तटस्थता प्रशंसनीय है । इसके अतिरिक्त डॉ. सहगल अपने उपन्यासों में एक कथा रस की सृष्टि में सफल हुए हैं । इस उपन्यास में भाषा का सौन्दर्य और उसकी अर्थवत्ता मनको बाँध लेती है । इस प्रकार डॉ. सहगल पंजाब की धरती के आज एकमात्र सशक्त एवं जीवंत हिन्दी उपन्यासकार नहीं हैं, बल्कि अपनी सर्जनात्मक वैशिष्ट्य से हिन्दी उपन्यास-संसार में भी विशिष्ट स्थान के अधिकारी है ।”<sup>3</sup>

लेखक ने आरक्षण के सवाल को कोरा बौद्धिक सवाल नहीं रहने दिया । उसने इसे युवा शक्ति की सक्रियता से जोड़कर देखा है । यह युवा शक्ति ही है जो कभी सुधेश के रूप में, कभी चतुर्भुज के रूप में तो कभी किरण चन्द्र के रूप में सामने आती है और जाति और वर्ग पर निर्भर दकियानूस मानसिकता को उधेड़कर रख देती है । इन युवा शक्ति

को केवल सही मार्गदर्शन नहीं मिलता तो इसके भटक जाने का खतरा है । युवा शक्ति के पक्षधर और युवा संवेदना के सशक्त समर्थक मित्रवर एक ऐसी धुरि बनते हैं जो युवा शक्ति को संगठित करती है, उसे सही दिशा में बढ़ने की प्रेरणा देती है । और राजनीति द्वारा इस्तेमाल किये जाने से आगाह भी करती है ।”<sup>४</sup>

### ❖ डॉ. सहगल के उपन्यासों में मानवीय मूल्यों की विविधता

उपन्यासकारों में डॉ. मनमोहन सहगल एक उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं । इनके सभी उपन्यास सोद्देश्य हैं तथा मानवीय मूल्यों की विविधता को व्यंजित करते हैं तथा मानवीय मूल्यों के प्रति निश्चित धारणा का पता चलता है । लेखक का अनुसंधाता रूप इनके उपन्यासों में अवश्य रहा है पर संवेदनशील संदर्भ इनकी उन्मुक्त भावना कि परिचायक है । साम्प्रदायिक सौहार्द, राष्ट्रीय भावना, समानता, उदारता, त्याग, आस्था, विश्वास संयम की जीवन एवं समाज में महत्ता मानता हुआ वह युग-बोध के प्रति सदैव सचेत रहा है । मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति अनेकरूपों में संवेदना एवं विवेक के धरातल पर हुई है । समकालीनता बोध के साथ परम्परा एवं आधुनिकता बोध के प्रति लेखक सचेत रहा । वस्तुतः यही मूल्यों के प्रति सम्यक दृष्टि हैं ।<sup>५</sup>

### ❖ डॉ. सहगल के उपन्यासों में साम्प्रदायिक सौहार्द

डॉ. मनमोहन सहगल ने साम्प्रदायिक सौहार्द के अपने सपनों को बड़ी ही मानवीय स्थितियों से जोड़कर उन्हें अत्यधिक संवेदना के साथ अपने उपन्यासों में चित्रित किया गया है और हर जगह उनका यही दृष्टिकोण रहा है कि सारे सम्प्रदाय अपनी धार्मिक वैचारिक गरिमा के साथ एक दूसरे के प्रति आदर और सहिष्णुता का भाव रखते हुए राष्ट्रीय समाज के निर्माण में

सहायक हों । अपनी इस धारणा के बल पर मनमोहन सहगल, निकट भविष्य में, एक नये हिन्दुस्तान की एकता के महान् प्रेरणा स्रोत बनेंगे, ऐसी आशा रखनी चाहिए ।”<sup>६</sup>

१९८६ ई. में प्रकाशित औपान्यासिक रचना “अन्ना पासवान” में सहगलने एक नया प्रयोग करते हैं । जिसे वे स्वयं “ऐतिहासिक रोमांस” कहते हैं । उनके इस विद्यागत नये नाम के झंडे तले इस कृति को न परखते हुए में इसे एक “ऐतिहासिक उपन्यास” के रूप में देखना चाहूँगा । सामान्य पाठक के लिए आज ऐतिहासिक उपन्यास में विशेष रस नहीं है, इसीलिए ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम लिखा जाते हैं । “अन्ना पासवान” मझे इसलिए विशिष्ट लगता है कि उसमें ऐतिहासिक कथा की इतनी मनोरम प्रस्तुति है कि वह अन्त तक अपने पाठक को बाँधे रखता है । उसमें गजब की पठनीयता और रम्यता है । उसकी दृश्य नियोजन क्षमता अद्भुत है, चाहे वह “दीवान‘खाने में चिलमन को मरमरी हाथों में उठाता एक गोरा स्वस्थ पाँव है । “चाहे शहजादा के नेतृत्व में बढ़ती फौज है, चाहे खनाबदोश राजपूतों के खेमें के पड़ाव हैं ।, चाहे जोधपुर रनिवास का अन्तपुर कोई भी दृश्य क्यों न हो उपन्यासकारने उस स्थिति का ऐसा चित्रात्मक और बिम्बाग्रही वर्णन प्रस्तुत किया है कि पाठक सहज ही उपन्यास के पृष्ठ पर पृष्ठ पलटता चले जाता है । हिन्दी के बहुत ही कम ऐतिहासिक उपन्यासों में यह गुण इतनी प्रचूर मात्रा में प्राप्त होता है ।”<sup>७</sup>

जिन्दगी और जिन्दगी हो पर अर्थव्यंजक, कथ्य को स्पष्ट करनेवाला उक्त शीर्षक से हम यह समक्ष सकते हैं कि जिन्दगी के दो पहलू हैं – सामाजिक और व्यक्तिगत । सामाजिक जिन्दगी में व्यक्तिवादी जिन्दगी का क्या स्थान है – उसमें सामाजिक औचित्य का निर्वाह कहाँ तक किया जा सकता है । अन्यथा ऐसे शीर्षक अस्पष्ट होंगे । उपन्यास के दूसरे खण्ड का नाम है— जिन्दगी और आदमी । इस शीर्षक से भी यही अभिप्राय

संभवतः प्रतीत होता है । कि सामाजिक जिन्दगी में आदमी की जिन्दगी की क्या भूमिका है ? अथवा जिन्दगी को आदमी किस प्रकार जिए अपने प्रकृत नग्न रूपमें अथवा नैतिकता, आदर्शवाद आदि का मुखोटा लगाकर ।<sup>६</sup>

लेखक ने दीपक के व्यक्तिगत और सामाजिक द्वन्द्व एक अजब कश्मकश दिखलाकर व्यक्ति-मन के उन सूक्ष्म तंत्रों को पकड़ने का प्रयास किया है, जहाँ व्यक्ति एक साथ अपने आप के और समाज के समक्ष खड़ा होता है । वो स्वयं जो चाहता है, उसे समाज की दृष्टि से देखकर प्राप्त करने या अस्वीकार करने के लिये विवश है और यह स्थिति अकेले दीपक की ही नहीं है -कहीं न कहीं हम सभी की ही, बल्कि कहना चाहिए कि “दीपक के जीवन का यह दोहरा पन कहीं हम सभी के दोहरेपन को उघाड़ने लगता है और यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता है ।”<sup>७</sup>

‘जिन्दगी और आदमी’ परिवार के आदर्शवादी अध्यापक की कहानी है जो अपने प्रोफेशन के प्रति ईमानदार न होकर अपनी शिष्याओं के मोहपाश में बँधकर अपना और अपनी शिष्याओं का भविष्य अंधकारमय कर देता है शायद कथाकार का उद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति में कथाकार ने जिस शैली को अपनाया है वह जटिल से जटिल मनोवैज्ञानिक प्रसंगों को सरलता से अभिव्यक्त देने वाली है ।

एक ही गर्भ से जन्म लेनेवाले दो बालकों में एक केश रख लेता है और दूसरा नहीं रखता - इससे क्या वे भाई नहीं रह जाते बहस धीरे-धीरे आगे बढ़ती है इन्दर सिंह कर्मचन्द्र को उत्तर देते हुए कहता है: ये हिन्दु सिक्ख और जाट झगड़े हमारी संकीर्णता के नहीं हमारे कूटनीतिक नेताओं की स्वार्थधता का द्योतक है ।

आज इस उपन्यास की अर्थवत्ता और भी बढ़ जाती है क्योंकि आज जो सामयिक हैं, आज जो ज्वलंत हैं, आज जो भ्रामित हैं, आज जो दुश्मन है उसको बहुत पहले ही लेखक की पैनी दृष्टिने उतार लिया था । वह



आनेवाला इतिहास और कालखण्ड हो गया है, उत्पीड़ित लोगों का मासिज का, एक प्रश्नचिन्ह का उत्तर माँगता हुआ, पूरा आजके युग में प्रासंगिक, पंजाबियत लिये हुए मानवमूल्यों को साकार रूप देता हुआ, सामाजिक परिवर्तन और मानवीय सरोकार की भूमिका निभाता हुआ, वर्तमान व भविष्य को आँकता हुआ, रेखांकित करता हुआ समय के अनुसार करवटें बदलता हुआ मानव का मानसरूपी यह उपन्यास इसी कालखण्ड के लोगों का जीवंत दस्तावेज बन गया है, जिसमें न कोई जाट है, न कोई सिक्ख, न मराठी, न बंगाली, न हिन्दु “सभी तो प्रभु के बनाए जीव है, यह मातृ धरती हम सबकी एक हैं हम सब हिन्दुस्तानी हैं ।”<sup>१०</sup>

सिक्खमत् के अनुसार चमत्कारों अथवा करामातों का प्रदर्शन निषिद्ध है, तथापि यत्र तत्र कुछ चमत्कारी वर्णन भी उपन्यास में परिलक्षित होते हैं ।

“इतना कहते-कहते मक्खनशाह की वाणी गद्गद हो उठी, नेत्रों से अश्रुधारा बह चली और उसी अवस्थामें उठकर अपनी सफलता का शंखनाद करने के लिए वह भुगर्भ से भागता हुआ मकान की छत पर चढ़ा और “गुरु लाधा रे” “गुरु लाधा रे” पुकारने लगा ।

“गुरु लाधा रे” का सामान्य अर्थ है गुरु मिल गया । और सही अर्थों में गुरु तेगबहादुर को नौवें गुरु की पद प्राप्ति हुई ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास अत्यंत रोचक एवं प्रेरक है । इसमें न तो कहीं सस्ती भावुकता दिखाई देती है और न ही छिछली वासना । वस्तुतः “गुरु लाधा रे” उपन्यास का हिन्दी (आधुनिक) उपन्यासों में अपना एक अलग स्थान है ।<sup>११</sup>

उपन्यास का वातावरण वस्तुतः एक समूचे युगको पाने में समर्थ तो हुआ ही है । उसके समसामयिक बोध से भी इन्कार नहीं किया जा सकता । आज के संदर्भों में यह रचना देशमें रहकर भी अन्यत्र विश्वास

रखनेवालों और अपनी उग्रतामें प्रथकता का स्वर मुखरित करनेवालों के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण, प्रेरणादायक एवं पथ-प्रदर्शक हो सकती है - भारतीय समन्वय साधना की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही - मानी जा सकती है ।<sup>१२</sup>

“मानव छला गया” उपन्यासकी सबसे बड़ी सफलता है दार्शनिक तत्त्वों, मानव मूल्यों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर उघाड़कर, संकल्प और विकल्प रूप के आघात-प्रतिघात को उभारना, लेखक का विश्वास प्रिय लगता है कि मानव के अनित्य, क्षणिक सम्बन्ध परिणाम में चाहे कष्टकर हो पर फिर भी देवलोक के नित्य सम्बन्धों से श्रेष्ठ है । तभी तो देवता सदा इस धरती पर अवतरित होने को तरसते हैं । मानव अपने त्याग, तपस्या और नैतिक मूल्यों के कारण महान है यह तो साधना का लोक है फिर भला मानव क्यों हारे हारने की मानसिकता से उसे छूटना होगा और फिर से साधना द्वारा दैवत्व को पाना भी होगा । हर पल, हर युग का अपना सत्य है जो हमें परखना है और मानव हो जाने की कामना में मानव ही हो जाना है ताकि फिर कोई छल न कर पाये ।”<sup>१३</sup>

### संदर्भ ग्रन्थ सूची

- (१) भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ. २२.
- (२) साहित्य, शिक्षा एवं संस्कृति, आचार्य नरेन्द्र देव, पृ. १५०.
- (३) मानववाद और साहित्य, नवलकिशोर, पृ. ६३.
- (४) “पोस्टर” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्रथम वर्ष १९९०, पृ. २९६.
- (५) “खजुराहों की शिल्पी” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष : १९९० पृ. ८८.
- (६) “बाढ का पानी” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष १९९०. पृ. ११७.
- (७) “एक और द्रौणाचार्य” शंकरशेष रचनावली, खण्ड-दो, सं. डॉ. विनय, प्र. वर्ष : १९९० पृ. १३०.
- (८) “कालजयी” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, प्र वर्ष. १९९०, पृ. १३०
- (९) “मूर्तिकार” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-दो, सं. डॉ. विनय, पृ. ६८.
- (१०) “चेहरे” शंकर शेष रचनावली, खण्ड-तीन, सं. डॉ. विनय, पृ. २६८.
- (११) “नयी सभ्यता : नये नमूने”, शंकर शेष रचनावली, खण्ड-चार, सं. डॉ. विनय, पृ. १५.
- (१२) माक्सवादी दर्शन, अफनास्येर, पृ. ३४३.
- (१३) भारतभूमि और निवासी, पं. जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ. १९७



उपसंहार

## उपसंहार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है । समाज से बाहर रहकर उसका अपना कोई अस्तित्व एवं महत्व नहीं है । मानव जन्म से मृत्यु पर्यन्त समाज की ही छत्र छाया में पलता-बढ़ता है । परिणामतः उसमें निरन्तर परिवर्तन आते रहते हैं मनुष्यों से ही समाज का निर्माण होता है और समाज से मनुष्यो का । परन्तु कभी कभी ऐसी परिस्थितियाँ भी पैदा हो जाती है कि समाज और व्यक्ति में विरोध की स्थिति आरम्भ हो जाती है । व्यक्ति की अपनी सहज इच्छाएँ, संवेदना एवं अनुभूति है । दूसरी तरफ समाज, व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत सोच के अनुसार छूट देगा तो समाज बिखर जाएगा । इसीलिए मर्यादाओं, नैतिकताओं, नितियों, मूल्य निर्धारण के मापदण्डों को आधार बनाकर चलता है और यही पर आकर कभी कभी व्यक्ति और समाज एक दूसरे से कटने लगते हैं । व्यक्ति चाहकर भी समाज की परिधि में बँधना नहीं चाहता और समाज सब कुछ समझते हुए भी व्यक्ति को उच्छृंखल होने की अनुमति नहीं दे पाता ।

पंजाब में जन्मे तथा यही रहकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने वाली प्रतिभाओं में मनमोहन सहगल का अपना विशिष्ट स्थान है । पंजाब के मध्यवर्गीय जीवन एवं समाज की उपज मनमोहन सहगल की बाल्यावस्था एवं युवावस्था पंजाब की समस्याओं को झेलते हुए बीती, उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों में मिलती है । उन्होंने आर्थिक संघर्ष झेला है । परम्परागत नैतिक मान्यताओं एवं युगीन परिस्थितियों में परस्पर विरोध देखा है । विभाजन के दर्द को झेला है, आतंकवादी प्रवृत्तियों एवं परिवेश को झेला है, सांस्कृतिक परिवर्तन को देखा है, विस्थापितों का दर्द महसूस किया

है । भाई को भाई से घृणा करते हुए देखा है पंजाब के पुनर्विभाजन के दर्द से पुराने जख्म हरे किए हैं, राजनेताओं की षडयन्त्रकारी प्रवृत्तियों से प्रभावित हुए हैं इतना कुछ एक साथ भोगकर सहगल का रचनाकार जैसे बार बार सृजन की तपिश में तपकर द्रवित हुआ तो वह सत्य के धरातल पर इतना कड़वा तथा कठोर था कि जिसके प्रभाव की यूँ ही उपेक्षा नहीं की जा सकती । उन्होंने हर समस्या, स्थिति एवं मानसिक वेग को बड़ी ही संवेदना से झेला है, उसकी आवश्यकताओं को पहचाना है, उसकी मांग को महसूस किया है । वस्तुतः उनकी साहित्य साधना इस बात की साक्षी है कि उन्होंने जिन्दगी की चुनौतियों को साहस के साथ स्वीकारा है और समय के एक एक तेवर को पहचानते हुए उन्हें अपनी रचनाओं में इस तरह चित्रित किया है कि वे समय और जिन्दगी के प्रमाणिक दस्तावेज के रूप में स्वतन्त्र बनाने में समर्थ सिद्ध हुए हैं ।

डॉ. सहगल से हिन्दी संसार उनके शोधक और समीक्षक रूप से अधिक परिचित हैं किन्तु उनका उतना ही श्रेष्ठ रूप एक उपन्यास सर्जक का है । गुणात्मक और परिमाणात्मक दोनों दृष्टियों से उनका उपन्यासकार हिन्दी में एक चित्रण उनके अपने अनुभव के आधार पर किया गया है । उनके अधिकतर उपन्यास समाज, उसकी व्यवस्था, समस्याओं और समाज एवं व्यक्ति के द्वन्द्व पर आधारित हैं । उनके उपन्यास और व्यक्ति का सही और सच्चा ब्यौरा प्रस्तुत करते हैं । उनके उपन्यासों में जहाँ पुराने रूढ़िवादी परम्पराओं का उल्लेख मिलता है वहीं वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का वास्तविक चित्र भी मिलता है । उनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्र उभरकर सामने आते हैं और उन्हीं के माध्यम से युवा पीढ़ी को जागरूक होने का सन्देश भी देते हैं ।

साहित्यकार की रचनात्मक या सर्जनात्मक उपलब्धियों से अभिप्राय उसकी समाज और साहित्य की देन से हैं । बहुमुखी प्रतिभा के धनी

मनमोहन सहगल ने समीक्षात्मक, रचनात्मक अनुवाद तथा सम्पादन के क्षेत्रों में अपनी व्यापक चेतना शक्ति को प्रदान की है। समीक्षात्मक साहित्य के अन्तर्गत साहित्य में शोध के नये आयाम उद्घाटित किये हैं। तथा रचनात्मक साहित्य में वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करते हुए उनकी तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

पंजाब की कर्मव्यता साहित्यिक क्षेत्र में डॉ. सहगल के माध्यम से रूपायित हुई है यदि यह कहा जाए, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। दर्शन की आधारभूमि लेकर भी साहित्य के क्षेत्र में यह निष्क्रिय नहीं हुए। उन्होंने दर्शन के चिन्तन को व्यक्ति आचरण और अपने समग्र साहित्य के माध्यम से सहज, सरल एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति दी है। दर्शन का अध्ययन करते हुए जिस मनोवैज्ञानिक चेतना को उन्होंने अपनाया है, वह आधुनिक मानव को समझने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

डॉ. सहगल के उपन्यासों में साम्प्रदायिक एकता का स्वर देखने को मिलता है। सहगल साहित्य में साम्प्रदायिकता से तात्पर्य हिन्दु मुसलमानों और हिन्दु सिक्खों के आपसी टकराव, द्वेष, वैमनस्य और धृणा से हैं। इन्हीं जातियों की पारस्परिक धार्मिक साम्प्रदायिक संकीर्णता को भारतीय जनमानस से समूल उखाड़ फेंककर साम्प्रदायिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता की पुनर्स्थापना हेतु उन्होंने “बदलती करवटे” की रचना की है। सहगल के अनेक उपन्यासों में इस विचारधारा को अभिव्यक्ति मिली है कि समाज के स्वस्थ विकास के लिए, जातिपाँति के बन्धों को कम करना होगा, वर्ग भेद को मिटाना होगा और विभिन्न सम्प्रदायों में सदभावना स्थापित करना होगा। इसके लिए व्यवहारिक रूप यह है कि हमारा युवा वर्ग ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाकर अपनी पसन्द के जीवन साथी का चयन करे तथा परिणय सूत्र में बंध जाएँ। “एक और रक्तबीज” में निम्नजाति की रानी और गाँव के जमींदार के बेटे सुधेश का अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न करवाकर

लेखक ने समाज को अप्रत्यक्ष रूप से दिशा निर्देश देते हुए अपने साम्प्रदायिक सदभाव को प्रकट किया है ।”

अपने उपन्यासों के माध्य से मनमोहन सहगल वर्तमान राजनीतिक भ्रष्टाचार पर भी कटाक्ष किया है । “एक और रक्बीज” में समाज के अन्य क्षेत्रों से जूझती युवा पीढ़ी तथा अत्याधुनिकता का वास्तविक रूप प्रस्तुत किया गया है । इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार राजनीतिक दलों ने अपनी विषैली राजनीति से विश्वविद्यालय में शिक्षा पाकर भी हमारी गलत आर्थिक नीतियों के कारण बेकारी की चक्की में पिसते हैं । हमारी शिक्षा नीति पाठ्य पुस्तकों को पढ़ाने तक सीमित है । उपन्यास में लेखक ने आरक्षण की समस्या को एक पात्र की मानसिकता के प्रतिफलन के तौर पर विवेचित नहीं किया है बल्कि उसने कई पात्रों की मानसिकताओं को आधार बनाकर इस समस्या को विभिन्न कोणों से विभिन्न धरातलों पर समझने और चित्रित करने का प्रयास किया है । लेखक ने इस समस्या को पात्रों की मानसिकता के बीच से उभारा है और उसके समाधान की ओर प्रवृत्त हुआ है । एक गाँव के विभिन्न वर्गों और जातियों में से उठे हुए पात्रों को समस्या की गिरफ्त में लडते, उससे जूझते हुए लेखक ने दर्शाया है । मनमोहन सहगल की सफलता इस बात में है कि उन्होंने आरक्षण के विरोध को अबौधिक ढंग से नहीं बल्कि विचारपूर्ण ढंग से उठाया है । उन्होंने इस विरोध को पात्रों की मानसिक पृष्ठभूमियों सहित उभारा है ।

सहगल का उपन्यास-साहित्य जिस विशिष्ट भूमि पर निर्मित हुआ, वह भूमि यथार्थ की है । उन्होंने सामाजिक जीवन की धुंधली किरणों को ग्रहण कर उन्हें उज्ज्वल और प्रौढ़ रूप दिया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज, व्यक्ति और जीवन का सही और सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है । सामाजिक जीवन का कोई भी पक्ष उनकी कलम से अछूता नहीं रहा है । सम्पूर्ण सामाजिक जीवन उनके उपन्यासों में उपस्थित हुआ है ।



मनमोहन सहगल के उपन्यासों में शिल्प चातुर्य नहीं है। सीधे सादे वरजन की ताकत से वे समस्या का तार-तार उघेड़ कर के रख देते हैं। वरजन से कोई किस्सा कहानी बटोरने वाले लेखकों की कमी नहीं है पर मनमोहन सहगल के उपन्यासकार की खूबी यह है कि वे वरजन को किस्से से बचाकर समस्या को उघाड़ने में भी इसे देखा जा सकता है।

अपने उपन्यास “बदलती करवटे” के माध्यम से लेखक ने आयतीत विचारों से हटकर अपने ही देश की मिट्टी और अपने ही वतन के लोगों के सुख दुख को एक नयी अभिव्यक्ति, संवेदना एवं मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत देखने की कोशिश की है, वही दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वैश्विक जीवन पद्धतियों, इन्सानियत, ईमानदारी, स्वार्थपन, जात पात, रंगभेद, साम्प्रदायिकता, धर्म और राजनीति के खोखले आदर्शों को भी नया आयाम देने की कोशिश की गई है। यह उपन्यास एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसमें धर्म और जाँत-पाँत से ऊपर उठकर इन्सानी मूल्यों, हृदय परिवर्तन को पैनी दृष्टि से आँका गया है। सामाजिक सम्बन्ध, साम्प्रदायिकता की संकीर्ण मानसिकता, जातिवाद, धर्म, राजनीतिक स्वार्थ आदि पहलू समाज व्यवस्था को बनाने तथा बिगाड़ने में सहायक होते हैं। इन पर लेखक ने अपना विचार प्रकाट कर युवा पीढ़ी को इन समस्याओं को जड़ से समाप्त करने का सन्देश दिया है। अतः यह उपन्यास समाज व्यवस्था की विभिन्न सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने में पूर्णतः सफल रहा है।

“एक और रक्तबीज” में भी पहले उपन्यासकार ने सामाजिक समस्याओं, यथा आरक्षण की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या, जातीय संघर्ष, बेरोजगारी की समस्या को उठाने का प्रयास किया है। फिर इन समस्याओं के प्रति युवकों को जागरूक किया है। मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण लेखक की मान्यता है कि इन समस्याओं का समाधान युवकों में नवजागरण की चेतना जगाकर, रूढ़िवादी मान्यताओं का परित्याग करके, साम्प्रदायिक

एकता लाकर तथा अन्तर्जातीय विवाहो का समर्थन करके खोजा जा सकता है ।

चरित्र सृष्टि के सम्बन्ध में डॉ. सहगल का दृष्टिकोण उनके इस कथन से सर्वथा स्पष्ट हो जाता है “किसी भी भोगे हुए सत्य का कथात्मक विश्लेषण और अपनी समझ के अनुसार दिशा बोध मेरा लक्ष्य रहता है । अपने पात्रों को मैं कठपुतली नहीं बनाता, बल्कि उनके श्वासो के साथ उठता चलता हूँ और उनका पीछा करते हुए केवल इतना ही देखता हूँ कि कहाँ, किस परिस्थिति में सहजता के नाते वे क्या करते हैं या क्या सोचते हैं ।

काला सच उपन्यास का कथानक नारी की तार तार होती अस्मत्, तत्कालीन भ्रष्ट शासन व्यवस्था, नारी द्वारा नारी के शोषण और नारी विमर्ष पर आधारित है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में चित्रण किया गया है । पुरुष को जन्म देने वाली औरत उस पुरुष द्वारा ही शोषित होती है । मध्यकालीन सामंती विलासी वातावरण में नारी शोषित, अपमानित, तिरस्कृत, पददलित और भोग की वस्तु ही समझी जाती रही, जिसका सजीव एवं कारुणिक चित्रण इस उपन्यास में लेखक द्वारा नारी को ही जिल्लत की गर्त में गहरे धकेलते दिखाया गया है और वह सिर्फ इसलिए क्योंकि वह पुरुष पर एकाधिकार बनाए रखना चाहती है जिसके लिए वह पुरुष के हर अनैतिक कार्य में उसका साथ देती है ।

मुस्लिम शासक नारी को भागने के लिए, उसके शोषण के लिए उसका धर्म-परिवर्तन तक कर देते थे और निकाह की आढ में हर शासक केवल नारी का शारीरिक शोषण ही करता है । यहाँ तक कि मुस्लिम संस्कृति हिन्दु संस्कृति को अपने पैरो तले कुचलने का प्रयास करती है परन्तु भारतीय संस्कृति सदा से ही अजर अमर रही है जिस कारण भारतीय नारियों को मुस्लिम बनाने के बाद भी वह उनमें से भारतीय

संस्कारो को नहीं मार पाएं और हमेशा ही उनमें हिन्दु संस्कार जीवित रहते हैं तभी तो निकाह के बाद देवल खिन्न के शासक बनने पर उसे मंदिर तोड़ने और गौ वध की मनाही का हुक्म जारी करवाती है यानि नारी अगर चाहे तो अपने अच्छे संस्कारो से अपनी संस्कृति को बचा सकती है ।

उपन्यासकार सामाजिक यथार्थ को उद्घाटित करते हुए अपने इस ऐतिहासिक घटना पर आधारित उपन्यास “काला सच” में नारी का पुरुष से और नारी से संघर्ष दिखा रहा है । उपन्यास की कथा का आधार चाहे गुजरात की पाटण रियासत के राजा रायकरण के द्वारा अपने मंत्री माधव की रूपावती पत्नी रूपसुन्दरी के बलात शारीरिक शोषण तथा उसके द्वारा दिए गए शाप के परिणाम स्वरूप उस रियासत और रायकरण व उसके परिवार की बरबादी है । इसको हम गौर से देखें तो रूपसुन्दरी एक पतिव्रता नारी है यानि सती स्त्री के मुँह से निकले शब्द सच्चे होते हैं किसी को भी दुखी करने पर उसकी आह हमेशा लगती है, इसको अगर सच माने तो आज तक जो भी किसी मजबूर या लाचार नारी को दुखी करता है उसका सर्वनाश निश्चित है भगवान किसी न किसी माध्यम से उसको सजा जरूर देते हैं । रामायण में रावण का अन्त इसका सबसे बड़ा उदाहरण है ।

वास्तव में इसके कथ्य को गौर से देखे तो इस उपन्यास का कथ्य बहुत सी समस्याओं व स्थिति को उजागर करता है । इसकी घटनाएँ अतीत में ही नहीं विचरण करती, बलिक आज की स्थितियों में भी देखने को मिलती है । देखा जाए तो भारतीय उपमहाद्वीप की दुर्दशा, मन्दिरों की तोड़फोड़, लूट, नारी की दुर्दशा उसके लिए मुस्लिम शासन या बाहरी ताकत उतनी जिम्मेवार नहीं, जितनी हमारी अपनी जनता और हम स्वयं है । यहाँ की जनता एक जुट होकर जुल्म का सामना करने की हिम्मत ही नहीं रखती और न ही हम स्वयं हिम्मत करते हैं । वास्तव में हम चाहते हैं

कि हमे भगवान या कोई ताकतवर बचाएँ। जब अगर हम अपने आप पर विश्वास कर हिम्मत से मुश्किल का सामना करे तो भगवान भी हमारा साथ देंगे। इसके अतिरिक्त जहां के शासक जो मिथ्याभिमान में एक दूसरे से ही लड़ते झगड़ते रहते हैं, हिन्दुओं की आपसी शत्रुता एक दूसरे से बदले की भावना, रिश्तों की इज्जत न करना आदि भी ऐसे कारण हैं जो हमें ऊपर उठने नहीं देते। अगर शासक चाहते तो सब एकजुट होकर भारत के गौरव को बचा सकते थे लेकिन तब भी सब अलग अपने अपने स्वार्थ में ही लगे थे और आज भी अगर हम देखें तो शासक अपने अपने स्वार्थ में आम जनता को भुल जाते हैं। यह शासक स्वयं ही जनता पर जुल्म करते हैं। श्री राम जी ने जैसे एक पत्नी-धर्म को निभाया अगर हमारे संस्कार इन सबको मानें और शासक ताकत, धन आदि के नशे में विलासितापूर्ण आचरण न करें तो कोई समस्या ही न हो परन्तु ऐसा करने के कारण ही हम सब अंधेरे की गर्त में और गहरे गिरते जाते हैं और हमें बचाने वाला कोई नहीं है। इस उपन्यास में भी बदले की भावना ही राज्य व राज परिवार को बरबाद कर देती है साथ ही सोमनाथ मंदिर की तोड़ फोड़ और लूट होती है। इसी तरह यह ऐतिहासिक उपन्यास नारी की दयनीय स्थिति के साथ साथ उसकी रुग्ण मानसिकता को भी दर्शाता है। यह नारी की अपनी कमजोरी है वह अपने सौन्दर्य का उपयोग पुरुष को लुभाने के लिए करती है, इसी लिए यह सौन्दर्य ही उसके लिए शाप बन जाता है। पुरुष पर अधिपत्य स्थापित करने के लिए नारी को ही पुरुष के आगे शोषण के लिए फेंक देती है। जब कि पुरुष किसी भी धर्म, जाति का क्यों न हो उसके लिए स्त्री मात्र भोग की ही वस्तु रही है। स्त्री अपने अंदर की हिम्मत को पुरुष के अधीन रहकर भूल ही गई और उसकी छत्रछाया में सुरक्षा की तलाश में वह उसके हाथ का खिलौना बनती गई यही कारण है कि नारी आज भी किसी न किसी तर शोषित,

अपमानित, प्रताडित हो रही है। अगर नारी, नारी का शोषण करना, उससे ईर्ष्या करना और अपने आप पर अहंकार करना छोड़ दे तो नारी की आधी से ज्यादा समस्याओं का हल आसानी से हो सकता है। जैसा कि इस उपन्यास में अपने सौन्दर्याभिमान से मुक्त होकर देवल कामुक शासको के चुंगल से मुक्ति के लिए जागृत होती है और विपरीत परिस्थितियों से अपनी हिम्मत, सूझबूझ व साहस से निकल पाती है।

उपन्यासकार नारी की स्थिति के साथ साथ उस समय की शासन व्यवस्था का भी यथार्थ चित्रण करता है। ऐसा शासन तंत्र आज भी है यहाँ नारी की दखलअंदाजी पसन्द नहीं की जाती और ज्यादातर नारी को बाहर के हालातो का पता ही नहीं होता, इसके प्रति नारी को स्वयं भी सजग होने की जरूरत है।

यह उपन्यास इस बात का भी बड़े अच्छे ढंग से ज्ञान करवाता है कि जैसा हम किसी के साथ करते हैं। वैसा ही हमारे साथ होता है। शक्ति हथियाने के लिए जिस जिस ने जैसा षडयन्त्र रचा उसे भी वैसा ही स्थिति का सामना करना पड़ा भाव महत्वाकांक्षा का अंत बुरा ही होता है इससे दबी हुई जनता विद्रोह के लिए जरूर उठती है। आज भी सबसे विश्वसनीय आदमी ही आपको डसता है। इसलिए आज किसी पर विश्वास करना अपने आप को धोखा देना है। इसलिए अपने आप पर विश्वास कर अत्याचारी शासक के जुल्मों का विरोध करने के लिए शासक के जुल्मों का विरोध करने लिए सबको एक साथ मिलकर प्रयत्न करना चाहिए तभी समस्या का हल संभव है। इस उपन्यास में भी जनता के विद्रोह के सामने खुसरो टिक नहीं पाता वैसे भी जब तक मूक बन कर किसी के जुल्म सहे जाए तब तक जुल्म करने वाला परेशान करता रहता है वह शक्ति के नशे में अपने बुरे अंत की प्रवाह नहीं, जब कि अंत बुरे का बुरा ही होता है।

समूह रूप में देखे तो “काला सच” उपन्यास का कथ्य इतिहास की उन बुराईयों का यथार्थ अंकन करता है जो समाज को अंधेरे में धकेलती है । स्वस्थ समाज के लिए इन बुराईयों को खत्म करना जरूरी है । आदर्श, मर्यादित जीवन सब को सही दिशा दे सकता है । नारी विमर्श का यह उपन्यास नारी को उसकी स्थिति से अवगत करवा जाग्रत होने की प्रेरणा दे रहा है । जिन सबका वर्णन इस अध्याय में उदाहरण सहित किया है ।

मनमोहन सहगल के उपन्यास “काला सच” में शिल्प विधान को ही विवेचन और शोधपरक समीक्षा का आधार बनाया गया है । इस उपन्यास की भाषा काव्यमयी होने के साथ साथ सशक्त, रोचक और प्रभावशाली है । प्रत्येक घटना के वर्णन में लेखक के सम्पूर्ण ज्ञान और परिश्रम की झलक भी मिलती है । मनमोहन सहगल ने संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के साथ-साथ उर्दू भाषा का सफल प्रयोग किया मुहावरों, लोकोक्तियों, कहावतों, दार्शनिक उक्तियों, व्यंग्यात्मकता आदि के माध्यम से मनमोहन सहगल ने भाषा को बहुत ही सुन्दर, प्रभावशाली ढंग से पाठको के समक्ष रखा है । उन्होंने प्रसंगानुकूल, पात्रानुकूल, देशकाल की स्थिति के अनुरूप अर्थपूर्ण भाषा का सफल प्रयोग किया है ।

लेखक ने पात्रों का चरित्र-चित्रण कथावस्तु के अनुकूल सार्थक व सजीव रूप से किया है । उन्होंने सशक्त, संक्षिप्त एवं प्रभावोत्पादक कथानक, प्रभावशाली वातावरण, सजीव चरित्र चित्रण, सवेदनशील, औचित्यपूर्ण संवाद, अर्थपूर्ण भाषा शैली और यथार्थ उद्देश्य के माध्यम से अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया है, जिनका विस्तार से वर्णन उदाहरण सहित किया गया है ।

उक्त विवेचन के आधार पर जहाँ तक मनमोहन सहगल के उपन्यासों में उनकी विचारधारा का सम्बन्ध है ... उनके समस्त औपन्यासिक कृतित्व

का विवेचन करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचें हैं कि कहीं तो वह परम्परागत बन्धनों को स्वीकारते हुए आदर्शवादी हैं तो कहीं जीवन की सत्यता को स्वीकारते हुए यथार्थवादी, कहीं नैतिकता का आवरण ओढ़े हैं तो कहीं भावात्मक होकर मानव दुःख देखकर पसीज उठते हैं तो कहीं जीवन की कटुता को विष के समान उगल देते हैं । यही कारण है कि चाहे व्यक्ति की सहज इच्छाओं की बात हो या युवा वर्ग की भौतिक आवश्यकताओं की, राजनेताओं की षडयन्त्रकारी प्रवृत्तियों की बात हो या धर्म के ठेकेदारों की कूटनीति – उसकी पैनी दृष्टि सबको सूक्ष्मता से देखती है, महसूस करती है । यही उसकी उपलब्धि है ।



परिशिष्ट



## परिशिष्ट

### ➤ आधारभूत ग्रन्थः

- (१) डॉ. सहगल : 'जिन्दगी और जिन्दगी' उपन्यास सन् १९६५
- (२) डॉ. सहगल : 'जिन्दगी और आदमी' उपन्यास सन् १९६६
- (३) डॉ. सहगल : 'बदलती करवटें' उपन्यास सन् १९६७
- (४) डॉ. सहगल : 'कश्मीर की कसक' उपन्यास सन् १९७३
- (५) डॉ. सहगल : 'गुरु लाधा रे' उपन्यास सन् १९७५
- (६) डॉ. सहगल : 'मानव छला गया' उपन्यास सन् १९७९
- (७) डॉ. सहगल : 'एक और रक्तबीज' उपन्यास सन् १९८४
- (८) डॉ. सहगल : 'अन्ना पासवान' उपन्यास सन् १९८६
- (९) डॉ. सहगल : 'रचनावली' भाग १,२,३,४ सन् २००४©
- (१०) डॉ. सहगल : 'नरमेध' - सन् १९८६
- (११) डॉ. सहगल : 'घटता बढता चाँद' - सन् १९९८
- (१२) डॉ. सहगल : 'अथ कॉलेज कथा' सन् २००२
- (१३) डॉ. सहगल : 'समझौते से पहले' सन् २००३
- (१४) डॉ. सहगल : 'काला सच' - सन् २००७
- (१५) डॉ. सहगल : 'सुर मिले मेरा तुम्हारा' सन् २००८

### ➤ प्रकाशित पुस्तकें

- (१) घर से बाहर तक । (कहानी संग्रह )
- (२) नागरी लिपि और उसकी समस्याएँ ।
- (३) हिन्दी शब्द समूह का विकास ।
- (४) शब्द प्रयोग ।
- (५) भाषाविज्ञान और मानक हिन्दी ।

- (६) हिन्दी भाषा और लिपि ।
- (७) कालिदासीय नाटकेषु सामाजिक जीवनम् (पुरस्कृत) ।
- (८) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनकी अँधैर नगरी ।
- (९) अनुप्रयुक्त हिन्दीभाषा चिन्तन ।
- (१०) नागरी लिपि ।
- (११) भाषा और भाषाविज्ञान ।
- (१२) अलंकार दर्पण ।

➤ **सम्पादित पुस्तकें**

- (१) स्मृति ।
- (२) आधुनिक हिन्दी काव्य ।
- (३) डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल “तरुण”

➤ **सम्मान पुरस्कार**

- (१) पुस्तक, शोध आलेख, कविता, कहानी, लघुकथा के लिए विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत ।

➤ **विशेष अध्ययन :**

भाषाविज्ञान, मध्ययुगीनकाव्य

➤ **सहायक ग्रन्थ**

- (१) अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता ।
- (२) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के साहित्येतिहास ग्रन्थों में चेतना का अनुशीलन ।
- (३) आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव ।
- (४) आठवें दशक की हिन्दी कहानी ।
- (५) आधुनिक हिन्दी काव्य और संस्कृति ।

- (६) आधुनिक हिन्दी पद्य नाटकों का संरचनात्मक अनुशीलन ।
- (७) आधुनिक खण्डकाव्यों में युग चेतना ।
- (८) आधुनिक हिन्दी उपन्यास व्यक्तित्व विघटन के निकष पर ।
- (९) आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास ।
- (१०) आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में काम मूलक सम्वेदना ।
- (११) आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना ।
- (१२) आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन ।
- (१३) उपन्यास का ऑचलिक वातायन ।
- (१४) कथा लेखिका मन्नूभण्डारी ।
- (१५) कबीर के काव्य पर समसामयिक परिस्थितियों का प्रभाव ।
- (१६) कविता का सामाजिक संदर्भ ।
- (१७) कुँवरनारायण कृत आत्मजयी स्त्रोत और समकालीन प्रासंगिकता ।
- (१८) छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ ।
- (१९) जगदीशचन्द्रमाथुर की नाट्य सृष्टि ।
- (२०) जयशंकर प्रसाद के नाटकोंमें इतिहास और संस्कृति ।
- (२१) दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता ।
- (२२) धर्मवीर भारती और शंकरशेष के नाट्यों का रंग चिन्तन ।
- (२३) नया नाटक : आज कल ।
- (२४) नयी कहानी, मीरा सीकरी ।
- (२५) नयी कहानी और अमरकान्त ।
- (२६) नयी कविता : मूल्य सीमांसा ।
- (२७) नवीन भावबोध के प्रबन्ध काव्यों में सांस्कृतिक चेतना ।
- (२८) नाटकनामा, डॉ.नरनारायण राय ।
- (२९) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल ।
- (३०) नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा ।

- (३१) निराला और दिनकर के काव्य में भारतीय संस्कृति ।
- (३२) पारसी रंगमंच और ख्याल परम्परा ।
- (३३) प्रभाकर माचवे का कथा साहित्य ।
- (३४) प्रेमचन्द्र कथा साहित्य : समीक्षा और मूल्यांकन ।
- (३५) प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना ।
- (३६) प्रेमचन्द्र के कथा साहित्य में मध्यवर्ग ।
- (३७) प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में समकालीनता ।
- (३८) प्रेमचन्द्र : भारतीय साहित्य सन्दर्भ ।
- (३९) प्रसाद के काव्य और नाटक ।
- (४०) प्रसाद साहित्य में अतीत चिन्तन ।
- (४१) प्रसाद के नाटक : रचना और प्रक्रिया ।
- (४२) प्रसाद साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन ।
- (४३) फणीश्वरनाथ रेणु : व्यक्तित्व एवं चेतना ।
- (४४) बीसवीं सदी की सामाजिक चेतना ।
- (४५) बीसवीं शताब्दी का हिन्दी रंग मंच ।
- (४६) भगवती चरण वर्मा का गद्यसाहित्य ।
- (४७) भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना ।
- (४८) भारतीय संस्कृति का विकास ।
- (४९) भीष्म साहनी के साहित्य का अनुशीलन ।
- (५०) मन्नू भण्डारी की कहानियों में आधुनिकता ।
- (५१) मूल्य और मूल्य संक्रमण ।
- (५२) मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और अभिव्यक्ति ।
- (५३) मैथिलीशरण गुप्त का सांस्कृतिक अध्ययन ।
- (५४) मोहन राकेश का साहित्य : पारिवारिक सम्बंधों के विघटन की स्थितियाँ ।

- (५५) मोहन राकेश की कहानियों में आधुनिक बोध ।
- (५६) मोहन राकेश : व्यक्ति एवं कृतित्व ।
- (५७) यशपाल के उपन्यासों में सामयिक चेतना ।
- (५८) यशपाल के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना ।
- (५९) राष्ट्रीय नवजागरण और प्रसाद के नाटक ।
- (६०) राहुल सांकृत्यायन और प्रगतिशील साहित्य ।
- (६१) रंगधर्मी नाटककार शंकरशेष ।
- (६२) डॉ. रांगेय राघव के कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन ।
- (६३) लक्ष्मीनारायण लाल और उनके नाटक ।
- (६४) लक्ष्मीनारायण लाल का रंगदर्शन ।
- (६५) वर्तमान परिवेश में भक्ति काव्य की प्रासंगिकता ।
- (६६) वर्तमान हिन्दी महिला कथालेखन और दाम्पत्य जीवन ।
- (६७) विष्णुप्रभाकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व ।
- (६८) व्यक्तित्व विघटन के विविध आयाम ।
- (६९) शंकरशेष के नाटको का रंगमंचीय अनुशीलन ।
- (७०) शंकरशेष का नाटक – संसार ।
- (७१) डॉ. शंकर शेष का नाटक साहित्य ।
- (७२) शंकरशेष का रचना संसार ।
- (७३) शुक्रनीति में राजतन्त्र ।
- (७४) समकालीन कविता के बदलते सरोकार ।
- (७५) समकालीन कविता के सरोवर ।
- (७६) समकालीन कविों और कविता ।
- (७७) समकालीन कहानी के रचनात्मक आशय ।
- (७८) समकालीन नाटक-विवेचन ।
- (७९) समकालीन लम्बी कविता की पहचान ।

- (८०) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्य ।
- (८१) समकालीन संवेदना और हिन्दी नाटक ।
- (८२) समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच ।
- (८३) समसामयिक हिन्दी नाटकोंमें खण्डित व्यक्तित्व अंकन ।
- (८४) समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी ।
- (८५) समकालीन हिन्दी कहानी डॉ. अमसिंह वधान ।
- (८६) सामकालीन हिन्दी व्यंग, एक परिदृश्य ।
- (८७) समकालीन हिन्दी साहित्य: आलोचना और चुनौती ।
- (८८) समकालीन हिन्दी साहित्य : विविध परिदृश्य ।
- (८९) साठोत्तर कहानी और परिवर्तित मूल्य ।
- (९०) साठोत्तरी हिन्दी नाटको का रंगमंचीय अध्ययन ।
- (९१) साठोत्तरी हिन्दी नाटक ।
- (९२) साठोत्तर हिन्दी नाटको की सामाजिक चेतना ।
- (९३) साठोत्तर हिन्दी नाटक, डॉ. नीलम राठी ।
- (९४) साठोत्तर हिन्दी नाटको में नारी ।
- (९५) साठोत्तर हिन्दी काव्य में राजनीतिक चेतना ।
- (९६) साठोत्तर हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना ।
- (९७) साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासोंमें भारतीय युवा का स्वरूप ।
- (९८) साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास में नारी ।
- (९९) साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्प विकास ।
- (१००) साठोत्तरी हिन्दी कहानियों में पुरुष चरित्र ।
- (१०१) सृजन के विविध आयाम ।
- (१०२) पंजाब का आधुनिक हिन्दी साहित्य : जितेन्द्र सुधा
- (१०३) गुरुमुखी लिपि में हिन्दी साहित्य एवं इतिहास दर्शन : तिवारी जे. पी.
- (१०४) भाषाविज्ञान : भोलानाथ तिवारी

- (१०५) भारतीय भाषाविज्ञान की भूमिका : भोलानाथ तिवारी
- (१०६) हिन्दी साहित्य : हजारीप्रसाद द्विवेदी
- (१०७) उपन्यास का स्वरूप : शशिभूषण सिंहल
- (१०८) ऐतिहासिक उपन्यास : शशिभूषण सिंहल
- (१०९) हिन्दी उपन्यास : शिल्प और प्रयोग : त्रिभुवन सिंह
- (११०) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : गणपतिचन्द गुप्त
- (१११) प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प विधान : कमलकिशोर गोयन्का
- (११२) हिन्दी उपन्यास : महेन्द्रचतुर्वेदी
- (११३) हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र
- (११४) मध्यकाल भारत में राज्य : कुन्दा बावा
- (११५) हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक इतिहास : कृष्ण भावुक
- (११६) मध्यकालीन भारत का इतिहास : एस. एम. मान
- (११७) ऐतिहासिक उपन्यास : पुष्प मल्होत्रा
- (११८) हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास : लक्ष्मीनारायणलाल
- (११९) साठोतरी हिन्दी उपन्यासों का शिल्पविकास : शोभा वेरेकर
- (१२०) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : शिवकुमार शर्मा
- (१२१) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र : कृष्णदेव शर्मा
- (१२२) हिन्दी उपन्यासों का शिल्पविधान : प्रदीप शर्मा
- (१२३) साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा
- (१२४) हिन्दी साहित्य का विकास : बासुदेव शर्मा
- (१२५) भाषाविज्ञान समीक्षा : हेमदेव शर्मा
- (१२६) हिन्दी उपन्यास : सुषमा प्रियदर्शिनी
- (१२७) हिन्दी उपन्यास : सुषमा पवन
- (१२८) मानवतावादी उपन्यासकार : डॉ. सहगल
- (१२९) हिन्दी उपन्यास साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन : चण्डीप्रसाद जोषी

- (१३०) प्रेमचन्द और उनका युग : रामविलास शर्मा  
 (१३१) हिन्दी साहित्य पीरवर्तन के सौ वर्ष : औंकारनाथ श्रीवास्तव  
 (१३२) हिन्दी उपन्यास के पदचिह्न : डॉ. सहगल

➤ **पत्रिकाएँ :**

- (१) आलोचना, नाटक विशेषांक ।  
 (२) कल्पना ।  
 (३) धर्मयुग ।  
 (४) नटरंग ।  
 (५) योजना ।  
 (६) सारिका ।  
 (७) पंजाब सौरभ विशेषांक सं. डॉ. सहगल  
 (८) शब्द सरोवर पत्रिका सं. राजपाल हुकुमचन्द  
 (९) पथिक सन्देश सं. वैद, बालकृष्ण (मासिक पत्रिका)  
 (१०) प्राधिकृत शोध पत्रिका सं. जितेन्द्र

➤ **कोश :**

- (१) मानक हिन्दी कोश : रामचन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग वर्ष २०१६ वि.  
 (२) बृहत हिन्दी कोश : कालिका प्रसाद वाराणसी  
 (३) हिन्दी शब्द सागर : श्यामसुन्दरदास नागरीप्रचारिणी सभा काशी  
 (४) हिन्दी शब्दकोश : हरदेव बाहरी राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली  
 (५) हिन्दी विश्वकोश : नगन्द्र वसु बी. आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन दिल्ली  
 (६) हिन्दी संक्षिप्त शब्दसागर : रामचन्द्र वर्मा नागरीप्रचारिणी सभा काशी



- (७) लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश : रामचन्द्रवर्मा लोकभारती प्रकाशन  
इलाहाबाद

➤ **साक्षात्कार :**

- (१) डॉ. सहगल साहब से साक्षात्कार, अनीतनगर, पटियाला, अगस्त  
१६-१७ २००६ । विशेष: साथ में विडीयो डी.वी.डी. सामिल है ।

